ISSN 2456-4818

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद
संस्थापित-1968

जुलाई - सितंबर 2026

वर्ष: 58 अंक: 3

₹ 50

वैज्ञानिक

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका

शांतिपूर्ण और प्रगतिशील विश्व में भारत की भूमिका

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद - कार्यकारिणी समिति 2025-27

अध्यक्ष
डॉ. कुलवंत सिंह

उपाध्यक्ष
श्री दीनानाथ सिंह

सचिव
श्री शैलेन्द्र कुमार सिंह

कोपाध्यक्ष
श्री राकेश कुमार सिंह

सह-सचिव
डॉ. डेझी जोसेफ

संयुक्त कोपाध्यक्ष
डॉ. धनकुमार महिलांग

सदस्य
श्री धर्मराज मौर्य

सदस्य
श्री विनोद कुमार

सदस्य
श्रीमती ज्योति दिवान

सदस्य
श्री संजय कुमार जैन

सदस्य
डा. मनप्रीत वसन

सदस्य
श्री पी के मिश्रा

सदस्य
श्री शिवदास महतो

सदस्य
डॉ. पीयूष गोयल

सहयोजित सदस्य
श्री नरेंद्र करनानी

सहयोजित सदस्य
श्री सत्य बाबू सेट्टी

परिचय: वैज्ञानिक परामर्श मंडल

डॉ. आनंद कुमार शर्मा: डॉ. आनंद कुमार शर्मा इसरो के पूर्व विशिष्ट वैज्ञानिक हैं. 1984 में दिल्ली विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट प्राप्त की. 1985 में इसरो उपग्रह केंद्र में शामिल हुए और 31 अगस्त, 2019 को सेवानिवृत्त हुए. 2016 से 2019 तक वर्ल्ड एसोसिएशन ऑफ न्यूक्लियर ऑपरेटर्स-WANO, लंदन की वाह्य सलाहकार समिति में सदस्य के रूप में कार्य किया है. कई अकादमिक निकायों के फेलो हैं और अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कारों से सम्मानित हैं. श्री वीरभद्र नगर, मारातहल्ली, बैंगलोर-560037.

प्रोफेसर रमेश सोमवंशी: पूर्व इमेरिटस प्रोफेसर, भाकृअप-भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, बरेली. एमवीएससी, पीएचडी, एफआरसीवीएस (उप्साला, स्वीडन), डीआईसीवीपी, पशु रोग विशेषज्ञ, मानद सचिव, डॉ. सी.एम. सिंह एंडोमेंट ट्रस्ट, पूर्व कार्यवाहक संयुक्त निदेशक, CADRAD, पूर्व प्रमुख, पैथोलॉजी विभाग, भूतपूर्व आईसीएआर-नेशनल फेलो, भूतपूर्व आईसीएआर-एमेरिटस प्रोफेसर, भूतपूर्व आईसीएआर-एमेरिटस वैज्ञानिक और भूतपूर्व अध्यक्ष, आईएवीपी, भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर, बरेली- 243122.

डॉ. राघवेंद्र तिवारी: पूर्व निदेशक, पदार्थ ग्रुप, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई. ज़िरकोनियम और नायोबियम मिश्र धातुओं में फेज़-परिवर्तन, उच्च तापमान पर संरचनात्मक अनुप्रयोगों के लिए नए मिश्र धातुओं का विकास, मिश्र धातुओं में संरचना-गुण संबंध, संरचना संबंधी फेज़-परिवर्तन; विशेष रूप से ओमेगा फेज़-परिवर्तन.

डॉ. प्रेमचंद्र स्वर्णकार: पेशे से एक चिकित्सक (एम.बी.बी.एस., एम.डी.), समाजसेवी. विगत 35 वर्षों से जनोपयोगी चिकित्सा विज्ञान के विभिन्न विषयों पर हिंदी में लेखन. वैज्ञानिक एवं स्वास्थ्य संबंधी 2000 से अधिक आलेख प्रकाशित. 45 पुस्तकें प्रकाशित. लेखन कार्य के लिए डॉ. मेघनाद साहा, आर्यभट, विज्ञान-भूषण, राजभाषा-गौरव सहित 14 राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित. तीन सम्मान भारत के राष्ट्रपति द्वारा प्रदत्त.

डॉ. श्रीमती अर्चना शर्मा: पूर्व निदेशक, बीटीडीजी, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई
विशेषज्ञता - उच्च वोल्टेज, स्पंदित शक्ति प्रौद्योगिकी, इन्सुलेशन इंजीनियरिंग, चुंबकीय पल्स संपीडन, विद्युत चुम्बकीय पल्स वेडिंग। वोल्टेज, करंट और चुंबकीय क्षेत्र माप के लिए माइक्रोसेकंड से नैनोसेकंड शासन में स्पंदित निदान। एक्सेल, कोएक्सियल और रिफ्लेक्स ट्रायोड प्रकार के वायरैक्टर और बैकवर्ड वेव ऑसिलेटर उपयोग करके उच्च शक्ति वाले माइक्रोवेव स्रोत।

डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र: पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर, होमी भाभा सेंटर फॉर साइंस एजुकेशन, टीआईएफआर, मुंबई. सदस्य, राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी. 12 से अधिक हिंदी में लोकप्रिय विज्ञान पुस्तकें प्रकाशित. शिक्षा भूषण सम्मान, होमी जहांगीर भाभा पुरस्कार, आत्माराम पुरस्कार, के.एन. भाल नमित पुरस्कार, राजभाषा गौरव पुरस्कार, शताब्दी सम्मान इत्यादि अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कारों से सम्मानित.

डॉ. सूर्यकांत गुप्ता: औद्योगिक प्लाज्मा प्रौद्योगिकी- सुविधा केंद्र, प्लाज्मा अनुसंधान संस्थान, गांधीनगर, गुजरात. विशेषज्ञ: जल उपचार के लिए पर्यावरण अनुकूल प्रौद्योगिकी, प्लाज्मा प्रौद्योगिकी, इलेक्ट्रिकल और इलेक्ट्रॉनिक्स इंजीनियरिंग, उच्च वोल्टेज इंजीनियरिंग, इंस्ट्रुमेंटेशन और नियंत्रण इंजीनियरिंग, सिस्टम ऑटोमेशन, स्पंदित पावर सप्लाई. एमएस [इलेक्ट्रॉनिक्स और संचार]- डीएवीवी इंदौर; पीएचडी- जल उपचार हेतु प्लाज्मा प्रौद्योगिकी, KIT, जर्मनी; शिक्षा उत्कृष्टता पुरस्कार, हिंदीसेवी पुरस्कार, सर्वश्रेष्ठ पेपर प्रस्तुति पुरस्कार.

वैज्ञानिक : सम्पादन मंडल

डॉ. कुलवंत सिंह (मुख्य संपादक)
वैज्ञानिक अधिकारी H, पदार्थ विज्ञान प्रभाग,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई-400085
प्रोफेसर, होमी भाभा राष्ट्रीय संस्थान, मुंबई – 400094

डॉ. प्रदीप कुमार मुख़र्जी
डॉ. मुख़र्जी दिल्ली यूनिवर्सिटी में भौतिकी के प्रोफेसर रहे हैं,
तथा एक वरिष्ठ विज्ञान संचारक हैं।

श्रीमती ज्योति दिवान
वैज्ञानिक अधिकारी G, अपशिष्ट प्रबंधन प्रभाग,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई-400085

डॉ. अतुल कुमार अग्रवाल
पूर्व मुख्य वैज्ञानिक, सीएसआईआर- केंद्रीय भवन अनुसंधान संस्थान, रुड़की
समन्वयक, 'जिज्ञासा: विद्यार्थी-वैज्ञानिक संयोजन कार्यक्रम'
अध्यक्ष, सीबीआरआई प्रकाशन समूह

श्री नरेंद्र कुमार करनानी
सेवानिवृत्त वरिष्ठ वैज्ञानिक, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई
फैलो, इंस्टीट्यूट ऑफ इलेक्ट्रॉनिक्स एंड टेलीकम्युनिकेशन इंजीनियर
गोवंडी, मुंबई - 400088

डॉ. पीयूष गोयल
पूर्व वैज्ञानिक, जैव प्रौद्योगिकी विभाग, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय, नई दिल्ली
जैवप्रौद्योगिकी अनुसंधान क्षेत्रों एवं गतिविधियों में सहयोग। विभिन्न वैज्ञानिक समुदायों के सदस्य, वैज्ञानिक वार्ताओं के साथ प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में हिंदी और अंग्रेजी में अनेक शोध और वैज्ञानिक लेख प्रकाशित।

डॉ. श्यामाश्री घोष
वैज्ञानिक अधिकारी G, स्कूल ऑफ बायोलॉजिकल साइंसेज,
नैशनल इंस्टिट्यूट ऑफ़ साइंस एडुकेशन रिसर्च (NISER), भुबनेश्वर,
ओडिशा 752050

वैज्ञानिक

वर्ष - 58 अंक - 3

जुलाई - सितंबर 2026

♦ मुख्य संपादक ♦
डॉ. कुलवंत सिंह

♦ सम्पादन मंडल ♦
डॉ. प्रदीप कु. मुख़र्जी
श्रीमती ज्योति दिवान
डॉ. पीयूष गोयल
डॉ. अतुल कुमार अग्रवाल
श्री नरेंद्र करनानी
डॉ. श्यामाश्री घोष

♦मुख्य व्यवस्थापक♦
श्री संजय कुमार जैन

♦व्यवस्थापन मंडल♦
श्री धर्मराज मौर्य,
श्री प्रमोद कुमार मिश्र,
डॉ. मनप्रीत कौर बसन,
श्री सत्य बाबू सेट्टी,
श्री विनोद कुमार,
डॉ. धनकुमार महिलांग

सदस्यता शुल्क आजीवन
व्यक्तिगत : रु 1000
संस्थागत : रु 2000

पत्राचार: 2601, विंग-3,
लोढ़ा अमारा, कोलशेट रोड,
ठाणे – 400607 महाराष्ट्र
hvsp.sachiv@gmail.com
सभी पद अवैतनिक हैं.

वैज्ञानिक में छपी रचनाओं का दायित्व लेखकों का है.

मूल्य रु 50/-

अनुक्रमणिका

संपादकीय - 7

लेख

1. चारधाम क्षेत्र में ट्रैफिक ... - डॉ. प्रदीप कु. मुख़र्जी - 9
2. एथेनॉल ईंधन ... - डॉ. प्रीति सिंह - 13
3. जिज्ञासा से नवाचार ... - डॉ. रामानुज पाठक - 20
4. पीसीआर तकनीक ... - डॉ. इरफ़ान ह्यूमन - 28
5. डिजिटल भविष्य ... - डॉ. दीपक कोहली - 31
6. नवीन वलित पर्वत ... - सुनील कुमार महला - 35
7. मौत की फैक्ट्री बनते ... - योगेश कुमार गोयल - 40
8. आईएसीएस ... - डॉ. जयंत स्थानपति - 43
9. चार विज्ञान लघुकथाएं ... - सुभाष चंद्र लखेड़ा - 46
10. वर्तमान वैश्विक नेतृत्व ... - प्रहलाद सबनानी - 49
11. वर्मीफिल्ट्रेशन ... - डॉ. श्यामाश्री घोष - 51
12. गुरुत्वाकर्षण क्या है? - डॉ. राजीव अग्रवाल - 55
13. विज्ञान के आलोक पथ ... - प्रज्ञा गौतम - 59
14. जलवायु परिवर्तन ... - कुसुम अग्रवाल - 63
15. जोहड़ जैसे प्राकृतिक ... - सत्यवीर नाहड़िया - 65
16. जंग कैसे लगती है? - डॉ. कमलेन्द्र कुमार - 66
17. विकसित भारत 2047 ... - डॉ. प्रियंका सौरभ - 68
18. बोतलबंद पानी का भारत ... - डॉ. सत्यवान सौरभ - 74
19. ऊर्जा सुरक्षा का नया ... - डॉ. रामानुज पाठक - 81

विज्ञान समाचार - - 87

विज्ञान पुस्तकें/ विज्ञान सम्मान - - 90

विज्ञान कविताएं - कवि हृदय गण - 91

मनोगत - पाठकगण - 95

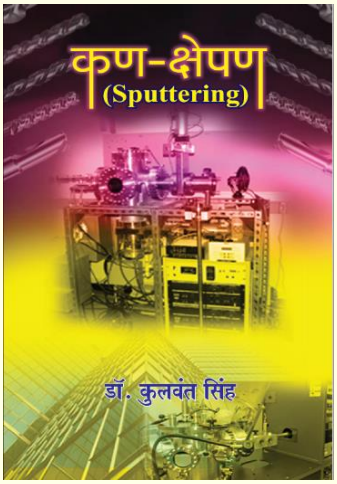

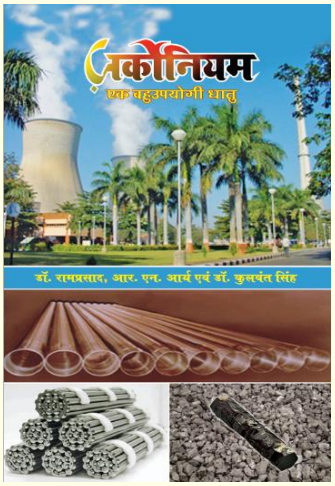

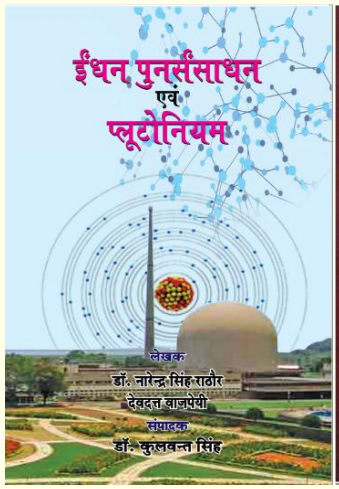

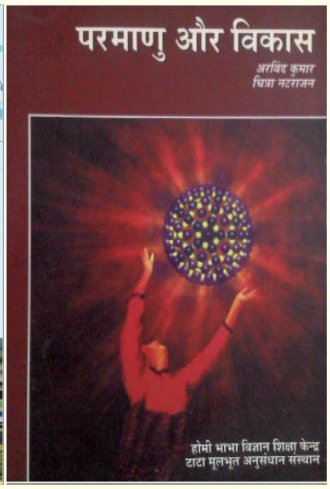

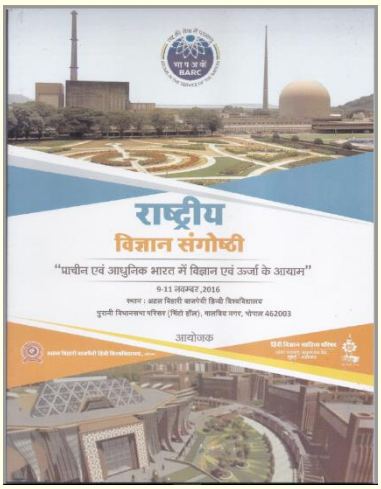

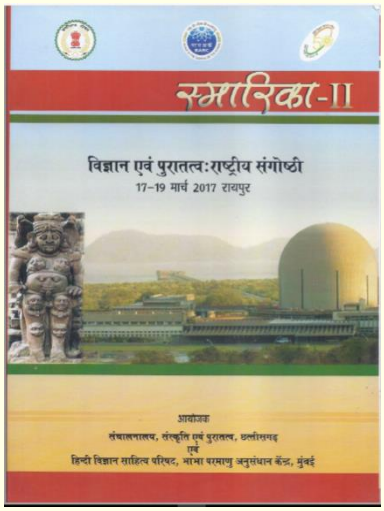

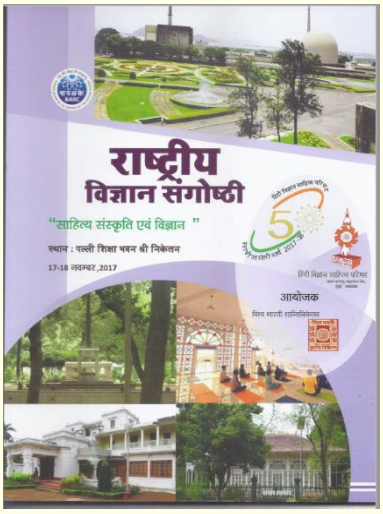

मुख्य पृष्ठ छवि साभार : https://www.baatapnedeshki.in/bharat-ki-bhumika-vishwa-shanti-aur-pragatisheel-vishwa-nirman/

संपादकीय: शांतिपूर्ण और प्रगतिशील विश्व में भारत की भूमिका

विश्व आज एक ऐसे संक्रमणकाल से गुजर रहा है जहाँ एक ओर वैश्वीकरण, तकनीकी प्रगति और आपसी निर्भरता बढ़ रही है, वहीं दूसरी ओर भू-राजनीतिक तनाव, जलवायु संकट, आर्थिक असमानता और सामाजिक विभाजन भी तेज़ी से उभर रहे हैं। ऐसे जटिल परिदृश्य में भारत की भूमिका केवल एक उभरती हुई आर्थिक शक्ति की नहीं, बल्कि एक संतुलनकारी, संवाद-आधारित और मानव-केंद्रित वैश्विक शक्ति की भी बनती है। एक शांतिपूर्ण और प्रगतिशील विश्व व्यवस्था में भारत की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और बहुआयामी रही है।

भारत की ऐतिहासिक और दार्शनिक पृष्ठभूमि

भारत की विदेश नीति और वैश्विक दृष्टि की जड़ें उसकी प्राचीन सभ्यता में निहित हैं। "वसुधैव कुटुम्बकम्" की अवधारणा—अर्थात पूरी पृथ्वी एक परिवार है—भारत के विश्व दृष्टिकोण की आधारशिला रही है। यह विचार केवल दार्शनिक नहीं, बल्कि व्यवहारिक अंतरराष्ट्रीय संबंधों की दिशा भी निर्धारित करता है। यह दर्शन केवल सांस्कृतिक विचार नहीं, बल्कि वैश्विक शांति, सह-अस्तित्व और सहयोग की एक सुदृढ़ आधारशिला है। आज की जटिल वैश्विक परिस्थितियों में भारत इसी दृष्टि को आधुनिक कूटनीति, विकास मॉडल और तकनीकी प्रगति के माध्यम से आगे बढ़ा रहा है।

महात्मा गांधी का अहिंसा और सत्याग्रह का सिद्धांत, और बाद में पंडित नेहरू की गुटनिरपेक्षता नीति, भारत की उस सोच को दर्शाती है जिसमें शक्ति का उपयोग प्रभुत्व के लिए नहीं, बल्कि संतुलन और शांति के लिए किया जाता है।

वैश्विक शांति में भारत की भूमिका

भारत ने सदैव अंतरराष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण समाधान का समर्थन किया है। संयुक्त राष्ट्र शांति मिशनों में भारतीय सैनिकों की सक्रिय भागीदारी इसका प्रमाण है। भारत ने कई संघर्ष क्षेत्रों में शांति स्थापना के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

भारत की नीति "रणनीतिक स्वायत्तता" (strategic autonomy) पर आधारित है, जो उसे किसी एक गुट तक सीमित रहने के बजाय स्वतंत्र और संतुलित निर्णय लेने की क्षमता देती है।

भारत वैश्विक कूटनीति में एक संतुलनकारी शक्ति के रूप में उभर रहा है। वह न तो किसी एक ध्रुवीय शक्ति व्यवस्था का समर्थन करता है और न ही टकराव की राजनीति को बढ़ावा देता है। संयुक्त राष्ट्र, G20, BRICS, SCO जैसे अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भारत बहुपक्षीयता (multilateralism), संवाद और सहयोग का समर्थन करता है। भारत का दृष्टिकोण यह है कि वैश्विक समस्याओं—जैसे युद्ध, आतंकवाद और आर्थिक असमानता—का समाधान सामूहिक प्रयासों से ही संभव है।

भारत की सांस्कृतिक शक्ति (soft power) भी विश्व शांति में महत्वपूर्ण योगदान देती है। योग, आयुर्वेद, भारतीय दर्शन और आध्यात्मिक परंपराएँ विश्व को आत्म-नियंत्रण, संतुलन और सह-अस्तित्व का संदेश देती हैं। यह सांस्कृतिक प्रभाव देशों के बीच समझ और संवाद को मजबूत करता है।

आर्थिक विकास और वैश्विक प्रगति

भारत दुनिया की सबसे तेज़ी से बढ़ती प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में से एक है। डिजिटल पब्लिक इंफ्रास्ट्रक्चर, जैसे UPI, आधार और डिजिलॉकर, ने भारत को एक अद्वितीय विकास मॉडल प्रदान किया है। यह मॉडल दिखाता है कि कैसे तकनीक को समावेशी विकास के लिए उपयोग किया जा सकता है। भारत का यह अनुभव अन्य विकासशील देशों के लिए एक मार्गदर्शक बन सकता है, विशेषकर ग्लोबल साउथ के देशों के लिए।

जनधन योजना, डिजिटल वित्तीय समावेशन, आधार आधारित सेवाएँ और ग्रामीण विकास कार्यक्रमों ने समाज के अंतिम व्यक्ति तक विकास पहुँचाने का प्रयास किया है। यह मॉडल यह दर्शाता है कि आर्थिक प्रगति और सामाजिक न्याय एक साथ आगे बढ़ सकते हैं।

इसके अलावा, भारत वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है, विशेषकर

सूचना प्रौद्योगिकी, फार्मास्युटिकल्स और सेवा क्षेत्र में।

जलवायु परिवर्तन और सतत विकास

आज का सबसे बड़ा वैश्विक संकट जलवायु परिवर्तन है। भारत ने इस क्षेत्र में नेतृत्वकारी भूमिका निभाने का प्रयास किया है।

अंतरराष्ट्रीय सौर गठबंधन (International Solar Alliance) और "LiFE" (Lifestyle for Environment) जैसी पहलें भारत की उस सोच को दर्शाती हैं जिसमें नवीकरणीय ऊर्जा और पर्यावरण संरक्षण को प्राथमिकता दी जाती है। भारत का लक्ष्य "नेट ज़ीरो" की दिशा में आगे बढ़ना है, साथ ही विकास और पर्यावरण के बीच संतुलन बनाए रखना है। भारत का दृष्टिकोण है कि पर्यावरणीय सुरक्षा केवल राष्ट्रीय मुद्दा नहीं, बल्कि वैश्विक शांति और स्थिरता का आधार है।

भारत का ग्रामीण और पारंपरिक ज्ञान भी सतत विकास में योगदान देता है, जैसे जल संरक्षण की पारंपरिक प्रणालियाँ और प्राकृतिक खेती की अवधारणाएँ।

विज्ञान, तकनीक और नवाचार में भूमिका

भारत आज अंतरिक्ष अनुसंधान (ISRO), डिजिटल तकनीक, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और बायोटेक्नोलॉजी जैसे क्षेत्रों में तेजी से आगे बढ़ रहा है। चंद्रयान और मंगल मिशनों ने भारत को एक विश्वसनीय और किफायती अंतरिक्ष शक्ति के रूप में स्थापित किया है। यह केवल वैज्ञानिक उपलब्धि नहीं, बल्कि वैश्विक सहयोग की संभावना भी प्रस्तुत करता है।

भारत की तकनीकी प्रगति "फ्रुगल इनोवेशन" (कम लागत में प्रभावी नवाचार) का उदाहरण है, जो दुनिया के विकास मॉडल को नई दिशा दे सकती है।

सामाजिक समावेशन और मानव विकास

भा भारत की सबसे बड़ी शक्ति उसकी जनसंख्या विविधता और लोकतांत्रिक व्यवस्था है। शिक्षा, स्वास्थ्य और डिजिटल पहुंच में निरंतर सुधार हो रहा है। आधार और DBT जैसी प्रणालियाँ तकनीक के माध्यम से पारदर्शिता और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करती हैं। साथ ही, भारतीय विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों की वैश्विक साझेदारियाँ ज्ञान-आधारित समाज, नवाचार और अंतरराष्ट्रीय सहयोग को मजबूत कर रही हैं।

सुरक्षा और आतंकवाद

सुरक्षा और आतंकवाद विरोध के क्षेत्र में भारत का रुख स्पष्ट और दृढ़ रहा है। भारत अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद के खिलाफ वैश्विक सहयोग को मजबूत करने की वकालत करता है, जिससे क्षेत्रीय और वैश्विक स्थिरता सुनिश्चित हो सके। शांति तभी संभव है जब सुरक्षा और न्याय दोनों साथ-साथ आगे बढ़ें।

वैश्विक दक्षिण और भारत की नेतृत्व भूमिका

भारत "Global South" के देशों की आवाज़ बनकर उभर रहा है। विकासशील देशों की चिंताओं—जैसे ऋण, जलवायु न्याय और तकनीकी पहुंच—को वैश्विक मंचों पर उठाना भारत की महत्वपूर्ण भूमिका है।

G20 अध्यक्षता के दौरान भारत ने समावेशी विकास और डिजिटल सार्वजनिक अवसंरचना को वैश्विक एजेंडा में शामिल करने का प्रयास किया, जो उसकी नेतृत्व क्षमता को दर्शाता है।

चुनौतियाँ और सीमाएँ

भारत की भूमिका जितनी महत्वपूर्ण है, उतनी ही चुनौतियाँ भी जटिल हैं। भू-राजनीतिक तनाव, पड़ोसी देशों के साथ संबंध, आर्थिक असमानता और आंतरिक विकास अंतराल ऐसे मुद्दे हैं जिन पर निरंतर कार्य की आवश्यकता है।

इसके अलावा, तकनीकी प्रतिस्पर्धा और वैश्विक शक्ति संतुलन में बने रहना भी एक रणनीतिक चुनौती है।

निष्कर्ष

अंततः, भारत का योगदान केवल एक राष्ट्र के रूप में नहीं, बल्कि एक सभ्यता के रूप में भी देखा जाता है। भारत का दृष्टिकोण यह है कि विकास, शांति और पर्यावरण संरक्षण परस्पर विरोधी नहीं बल्कि एक-दूसरे के पूरक हैं। यदि विश्व समुदाय सहयोग, संवाद और पारस्परिक सम्मान के मार्ग पर आगे बढ़े, तो भारत की यह भूमिका एक अधिक शांतिपूर्ण, न्यायपूर्ण और प्रगतिशील विश्व व्यवस्था के निर्माण में निर्णायक सिद्ध हो सकती है।

कुलवंत सिंह

चारधाम क्षेत्र में ट्रैफिक जाम, वनाग्नि और पिघलते ग्लेशियर

डॉ. प्रदीप कुमार मुखर्जी

43, देशबंधु सोसाइटी, 15, पटपड़गंज, दिल्ली – 110092

डॉ. मुखर्जी दिल्ली यूनिवर्सिटी में भौतिकी के प्रोफेसर रहे हैं तथा एक विज्ञान संचारक हैं।

जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग के कारण देश-दुनिया के तापमान में लगातार वृद्धि हो रही है। गर्मियों में लोग पहले से ही पहाड़ों की ओर रुख करते हैं, लेकिन बढ़ते तापमान के कारण यह प्रवृत्ति और तेज हुई है। धार्मिक आस्था से प्रेरित श्रद्धालुओं का एक बड़ा वर्ग तीर्थस्थलों में आध्यात्मिक शांति और मोक्ष की तलाश करता है, जिसके चलते हाल के वर्षों में चारधाम यात्रा के प्रति आकर्षण भी बढ़ा है।

वर्ष 2023 में चारधाम यात्रा करने वाले श्रद्धालुओं की संख्या 50,12,959 थी, जो 2025 में बढ़कर 51,04,975 हो गई। श्रद्धालुओं की बढ़ती संख्या के साथ वाहनों की आवाजाही भी बढ़ी है। पिछले एक दशक में गंगोत्री और यमुनोत्री जाने वाले वाहनों की संख्या दोगुने से अधिक हो गई है।

चारधाम क्षेत्र में बढ़ता ट्रैफिक जाम इस क्षेत्र के तापमान को बढाने में अपना योगदान दे रहा है

श्रद्धालुओं की बढ़ती भीड़ और वाहनों से होने वाले कार्बन तथा अन्य प्रदूषक उत्सर्जन का असर हिमालय के संवेदनशील पर्यावरण पर पड़ रहा है। यह बढ़ता दबाव पहाड़ी क्षेत्रों के पारिस्थितिक संतुलन और स्थानीय जलवायु को प्रभावित कर सकता है।

तापमान बढ़ने के कई अन्य कारण भी हैं। उत्तराखंड के पहाड़ी क्षेत्रों, विशेषकर यात्रा मार्गों और रुद्रप्रयाग जैसे आसपास के जिलों में जंगलों की भीषण आग से वातावरण में धुआँ फैल जाता है। आग और धुएँ के कारण स्थानीय तापमान बढ़ सकता है। सामान्य से कम वर्षा और लंबे समय तक सूखा रहने से भी गर्मी बढ़ती है। कम आर्द्रता के कारण बादल कम बनते हैं और साफ आसमान में सूर्य की किरणें सीधे धरती तक पहुँचती हैं। उत्तर-पश्चिमी हवाएँ और अल नीनो जैसी जलवायु घटनाएँ भी तापमान वृद्धि में योगदान कर सकती हैं।

चारधाम क्षेत्र में वनों में लगती आग भी इस क्षेत्र के बढ़ते तापमान के लिए जिम्मेदार होती है

बढ़ती यात्रियों की संख्या को संभालने के लिए होटल, लॉज और सड़क निर्माण में तेजी आई है। इसके लिए वनों की कटाई और पहाड़ों की अनियंत्रित कटाई हो रही है। सड़कों और अन्य निर्माण में बड़े पैमाने पर कंक्रीट का उपयोग भी स्थानीय तापीय संतुलन को प्रभावित करता है। पहाड़ों की कटाई और भारी मशीनों के इस्तेमाल से मिट्टी का कटाव तथा भूस्खलन का खतरा भी बढ़ रहा है। इस प्रकार अनियोजित निर्माण और बढ़ता पर्यटन हिमालय के नाजुक पर्यावरण पर अतिरिक्त दबाव डाल रहे हैं।

यात्रियों और वाहनों की बढ़ती संख्या के साथ तेज़ी से हो रहे निर्माण कार्य भी पहाड़ों के तापमान में वृद्धि को बढ़ावा दे रहे हैं। मौसम विभाग के अनुसार, चारधाम यात्रा मार्ग के कई शहरों में तापमान सामान्य

से 3–5 डिग्री सेल्सियस अधिक होकर 30–36 डिग्री सेल्सियस तक पहुँच रहा है। केदारनाथ, बद्रीनाथ, गंगोत्री और यमुनोत्री जैसे ऊँचाई वाले तीर्थस्थलों में भी तापमान सामान्य से अधिक दर्ज किया जा रहा है। मई-जून में केदारनाथ का अधिकतम तापमान सामान्यतः 10–12 डिग्री सेल्सियस रहता था, जो अब 15–18 डिग्री तक पहुँच रहा है। बद्रीनाथ में औसत 16–19 डिग्री के बजाय लगभग 22 डिग्री, गंगोत्री में 15–17 डिग्री के बजाय 19 डिग्री और यमुनोत्री में 18–20 डिग्री के बजाय 24 डिग्री सेल्सियस तक तापमान दर्ज किया जा रहा है।

चारधाम क्षेत्र में बढ़ते तापमान के कारण खिसक या सिकुड़ रहे हैं इस क्षेत्र के ग्लेशियर

वैज्ञानिक अध्ययनों के अनुसार, उत्तराखंड के ऊँचाई वाले पहाड़ी क्षेत्रों में भी तापमान तेजी से बढ़ रहा है। फ्रंटियर्स इन मरीन रिसर्च नामक अंतरराष्ट्रीय जर्नल में प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार, दिसंबर 2021 से दिसंबर 2025 के बीच उत्तराखंड का न्यूनतम औसत तापमान 6.3 से बढ़कर 8.3 डिग्री सेल्सियस हो गया। शोध में बांज के जंगलों के घटते घनत्व तथा ट्री-लाइन और स्नो-लाइन के ऊपर की ओर खिसकने को इसके प्रमुख कारणों में बताया गया है।

चारधाम क्षेत्र में बढ़ते तापमान के पीछे यात्रियों और वाहनों की बढ़ती संख्या, तेज़ी से हो रहे निर्माण कार्य, ट्री-लाइन और स्नो-लाइन का ऊपर खिसकना तथा बर्फ से ढके क्षेत्र का लगातार कम होना प्रमुख कारण माने जा रहे हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार, तापमान वृद्धि का सीधा असर केदारनाथ, बद्रीनाथ, गंगोत्री और यमुनोत्री क्षेत्र के ग्लेशियरों पर भी पड़ रहा है।

साइंटिफिक रिपोर्ट्स नामक नेचर पोर्टफोलियो जर्नल में प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार, 1990 से 2020 के आंकड़ों के विश्लेषण से चारधाम क्षेत्र के ग्लेशियरों के लगातार पीछे हटने की पुष्टि हुई है। गंगोत्री ग्लेशियर सबसे तेज़ी से, लगभग 22.3 मीटर प्रति वर्ष की दर से पीछे हट रहा है। इसके बाद यमुनोत्री ग्लेशियर 20 मीटर, बद्रीनाथ ग्लेशियर 17.3 मीटर और केदारनाथ ग्लेशियर 14.1 मीटर प्रति वर्ष की दर से सिकुड़ रहा है।

करेली मिट्टी: विंध्याचल की काली मिट्टी में छिपे विज्ञान और शिल्प की अनोखी कहानी

डॉ. प्रदीप कुमार मुख़र्जी

मिट्टी (clay) का सबसे व्यापक उपयोग कृषि में होता है, लेकिन मानव सभ्यता के विकास में इसका योगदान इससे कहीं अधिक व्यापक है। ईंट, टाइल, बर्तन, खिलौने और मूर्तियों सहित अनेक वस्तुओं के निर्माण में विभिन्न प्रकार की चिकनी मिट्टियों का उपयोग किया जाता है। भारत में मिट्टी की विविधता उसकी भौगोलिक, भूवैज्ञानिक और जलवायु परिस्थितियों से जुड़ी है। अलग-अलग क्षेत्रों की मिट्टियों में खनिज संरचना, कणों का आकार, सुघट्यता (प्लास्टिसिटी), जल-अवशोषण और तापीय व्यवहार अलग-अलग होते हैं, जिसके कारण उनके उपयोग भी भिन्न होते हैं। सामान्यतः चिकनी मिट्टियों में काओलिनाइट, इलाइट और स्मेक्टाइट जैसे मृदा-खनिजों के साथ क्वार्ट्ज तथा फेल्डस्पार जैसे अन्य खनिज भी पाए जा सकते हैं।

इसी विविधता के बीच उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले की चुनार तहसील के अमरौरा क्षेत्र में पाई जाने वाली 'करेली' नाम से स्थानीय रूप से पहचानी जाने वाली काली मिट्टी विशेष आकर्षण का विषय है। स्थानीय परंपरा के अनुसार, इस मिट्टी से मूर्तियाँ, खिलौने और बर्तन बनाए जाते हैं तथा इसके लिए प्लास्टर ऑफ पेरिस की आवश्यकता नहीं पड़ती। स्थानीय स्तर पर इस मिट्टी का उपयोग कृषि में भी किया जाता है और इसमें करेला, कपास, गन्ना तथा गाजर जैसी फसलों की खेती किए जाने की जानकारी मिलती है। इसके गहरे काले रंग के कारण इसे 'करेली' नाम से जाना जाता है। हालांकि, इस नाम की व्युत्पत्ति और मिट्टी की वास्तविक भू-रासायनिक संरचना की पुष्टि के लिए वैज्ञानिक अध्ययन आवश्यक है।

'करेली' मिट्टी की खासियत

इस मिट्टी की सबसे उल्लेखनीय विशेषता इसकी नरमी और प्लास्टिसिटी मानी जाती है। अर्थात्, पानी की उपयुक्त मात्रा मिलाने पर यह आसानी से गूंथी और मनचाहे आकार में ढाली जा सकती है। वैज्ञानिक दृष्टि से किसी मिट्टी की यह क्षमता उसके सूक्ष्म कणों, खनिज संरचना और जल के साथ उनके परस्पर व्यवहार पर निर्भर करती है। मिट्टी में उपस्थित विभिन्न क्ले मिनरल इसकी प्लास्टिसिटी, संकुचन और पकने के दौरान होने वाले संरचनात्मक परिवर्तनों को प्रभावित करते हैं। यही कारण है कि अलग-अलग स्रोतों से प्राप्त मिट्टियाँ समान दिखाई देने के बावजूद शिल्प और सिरेमिक निर्माण में उनका व्यवहार अलग हो सकता है।

करेली मिट्टी से बनी वस्तुओं के बारे में स्थानीय अनुभव यह बताता है कि वे कच्ची अवस्था में आसानी से आकार ग्रहण करती हैं, जबकि भट्टी में पकने के बाद उनकी मजबूती बढ़ जाती है। सिरेमिक विज्ञान में इसका संबंध सिंटरिंग (sintering) प्रक्रिया से है। ताप देने पर मिट्टी के कणों के बीच संपर्क बढ़ता है और एक सघन, अधिक मजबूत संरचना विकसित होती है। हालांकि, अंतिम मजबूती और टिकाऊपन केवल मिट्टी के प्रकार पर निर्भर नहीं करता; पकाने का तापमान, तापमान वृद्धि की दर, पकाने की अवधि और शीतलन की प्रक्रिया भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

क्या 'करेली' मिट्टी का काला रंग वैज्ञानिक रूप से महत्वपूर्ण है?

किसी मिट्टी का रंग उसके खनिजीय और जैविक घटकों से प्रभावित हो सकता है। मिट्टी में लौह-युक्त खनिज, मैंगनीज, कार्बनिक पदार्थ और अन्य सूक्ष्म घटक उसके रंग को प्रभावित कर सकते हैं। इसलिए केवल काला रंग देखकर मिट्टी की खनिज संरचना निर्धारित नहीं की जा सकती। उदाहरण के लिए, विभिन्न भारतीय मिट्टियों में लौह-युक्त खनिजों तथा अन्य क्ले मिनरल की उपस्थिति रंग और अन्य भौतिक गुणों को प्रभावित करती है। 'करेली' मिट्टी के विशिष्ट काले रंग के वास्तविक कारण का पता लगाने के लिए एक्स रे विवर्तन (XRD), एक्स रे प्रतिदीप्ति (XRF), फूरियर ट्रांसफॉर्म इंफ्रारेड स्पेक्ट्रोस्कोपी और थर्मल विश्लेषण तकनीकों से विस्तृत अध्ययन किया जाना उपयोगी होगा।

बिना प्लास्टर ऑफ पेरिस के मूर्तियाँ: एक विशेषता

करेली मिट्टी से स्थानीय स्तर पर मूर्तियों और खिलौनों का निर्माण बिना प्लास्टर ऑफ पेरिस (POP) के किए जाने की बात इसकी एक महत्वपूर्ण विशेषता है। हालांकि, वैज्ञानिक रूप से यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि POP का उपयोग न करने का अर्थ अपने-आप में यह सिद्ध नहीं करता कि उत्पाद अधिक पर्यावरण-अनुकूल हैं। पर्यावरणीय प्रभाव का आकलन कच्चे माल के स्रोत, मिट्टी की खुदाई, भट्टी में प्रयुक्त ईंधन, पकाने के तापमान, रंगों और अंतिम उत्पाद के जीवन-चक्र को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

फिर भी, यदि स्थानीय मिट्टी से सीधे उत्पाद तैयार किए जाते हैं और उनमें अतिरिक्त सिंथेटिक पदार्थों का उपयोग कम होता है, तो यह पारंपरिक शिल्प की दृष्टि से एक सकारात्मक विशेषता हो सकती है। विशेष रूप से प्राकृतिक मिट्टी से बने उत्पादों के जीवन-चक्र और पुनर्चक्रण की संभावनाओं का अध्ययन आधुनिक सतत सिरेमिक (sustainable ceramics) के संदर्भ में महत्वपूर्ण हो सकता है।

वैज्ञानिक अध्ययन की संभावनाएँ

'करेली' मिट्टी को वैज्ञानिक दृष्टि से समझने के लिए एक व्यापक मल्टी-टेक्निक कैरेक्टराइजेशन किया जा सकता है। XRD से इसमें मौजूद क्ले मिनरल और अन्य क्रिस्टलीय चरणों की पहचान की जा सकती है। XRF से सिलिका (SiO_2), एल्युमिना (Al_2O_3), आयरन ऑक्साइड (Fe_2O_3), कैल्शियम, मैग्नीशियम और अन्य प्रमुख तत्वों की मात्रा निर्धारित की जा सकती है। FTIR से सिलिकेट तथा हाइड्रॉक्सिल समूहों की जानकारी मिल सकती है, जबकि क्रमवीक्षण इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी (SEM) से कणों की आकृति और सूक्ष्म संरचना का अध्ययन संभव है।

इसके अलावा, कण-आकार वितरण, Atterberg limits, प्लास्टिसिटी इंडेक्स, सूखने और पकने के बाद संकुचन, जल-अवशोषण, स्पष्ट घनत्व, छिद्रता और फ्लेक्सरल स्ट्रेंथ जैसे परीक्षण यह निर्धारित कर सकते हैं कि यह मिट्टी खिलौनों, मूर्तियों और बर्तनों के लिए तकनीकी रूप से कितनी उपयुक्त है। सिरेमिक कच्चे माल के मूल्यांकन में ये परीक्षण व्यापक रूप से उपयोग किए जाते हैं।

विंध्याचल की करेली मिट्टी से मूर्तियां, खिलौने आदि बनाने की तैयारी करता एक कलाकार। इस मिट्टी से बने उत्पादों, खासकए मूर्तियों की विदेशों में भी खासी मांग है

इस प्रकार 'करेली' मिट्टी केवल एक स्थानीय प्राकृतिक संसाधन नहीं, बल्कि भूविज्ञान, मृदा-विज्ञान, सिरेमिक विज्ञान और पारंपरिक शिल्प के संगम का एक रोचक उदाहरण बन सकती है। यदि इसके खनिजीय और भौतिक गुणों का व्यवस्थित वैज्ञानिक अध्ययन किया जाए, तो यह पता लगाया जा सकता है कि इसकी विशिष्ट प्लास्टिसिटी, पकने के बाद मजबूती और रंग-ग्रहण क्षमता के पीछे कौन-से खनिज और सूक्ष्म संरचनात्मक गुण जिम्मेदार हैं।

स्थानीय शिल्प से वैश्विक बाजार तक

इससे बने उत्पादों, विशेषकर मूर्तियों और खिलौनों की मांग देश के विभिन्न हिस्सों में होने की बात कही जाती है। नेपाल, श्रीलंका और इंडोनेशिया जैसे देशों में भी इन उत्पादों की लोकप्रियता का उल्लेख मिलता है। विशेष रूप से गणेश प्रतिमाओं और मुखौटों के साथ-साथ पारंपरिक बर्तन और खिलौने भी आकर्षण का केंद्र बताए जाते हैं।

यदि इन दावों का व्यवस्थित दस्तावेजीकरण और बाजार अध्ययन किया जाए, तो 'करेली' मिट्टी से जुड़ा शिल्प स्थानीय आजीविका, ग्रामीण उद्यमिता और सांस्कृतिक पर्यटन का महत्वपूर्ण आधार बन सकता है। इसके लिए मिट्टी के स्रोत का संरक्षण, कारीगरों का प्रशिक्षण, वैज्ञानिक गुणवत्ता परीक्षण, डिजाइन में नवाचार और उत्पादों की ब्रांडिंग जैसे कदम उपयोगी हो सकते हैं।

आवश्यकता इस अनोखी मिट्टी के वैज्ञानिक दस्तावेजीकरण और संरक्षण की है। यदि इसके भंडार का अनियंत्रित दोहन होता है, तो भविष्य में कारीगरों के सामने कच्चे माल की उपलब्धता का संकट उत्पन्न हो सकता है। इसलिए मिट्टी के स्रोतों का भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण, सतत खनन की व्यवस्था और स्थानीय समुदाय की भागीदारी आवश्यक है।

'करेली' मिट्टी इस बात का सुंदर उदाहरण है कि प्रकृति और पारंपरिक ज्ञान मिलकर किस प्रकार एक विशिष्ट स्थानीय अर्थव्यवस्था और सांस्कृतिक पहचान को जन्म दे सकते हैं। आवश्यकता है कि इस पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकों से जोड़ा जाए। करेली मिट्टी न केवल मिर्जापुर की स्थानीय पहचान बन सकती है, बल्कि सतत सिरेमिक, पर्यावरण-अनुकूल हस्तशिल्प और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में भी नई संभावनाओं के द्वार खोल सकती है।

प्रपत्र IV
(नियम-8 देखें)

स्वामित्व के बारे में विवरण और प्रकाशित होने वाले समाचार पत्र (वैज्ञानिक) के बारे में अन्य विवरण

1. प्रकाशन का स्थान: 2601, विंग-3, लोढ़ा अमारा, कोलशेट रोड, ठाणे-7, महाराष्ट्र (ऑनलाइन)
2. प्रकाशन की आवधिकता: त्रैमासिक
3. मुद्रक का नाम: श्री संजय कु. जैन (ऑनलाइन)
राष्ट्रीयता: भारतीय
पता: B-701, टियावा काम्प्लेक्स, सेक्टर - 13, खारघर, नवी मुंबई.
4. प्रकाशक का नाम: डॉ. कुलवंत सिंह
राष्ट्रीयता: भारतीय
पता: 2601, विंग-3, लोढ़ा अमारा, कोलशेट रोड, ठाणे-400607 (मुंबई), महाराष्ट्र.
5. संपादक का नाम: डॉ. कुलवंत सिंह
राष्ट्रीयता: भारतीय
पता: 2601, विंग-3, लोढ़ा अमारा, कोलशेट रोड, ठाणे-400607 (मुंबई), महाराष्ट्र.
6. उन व्यक्तियों के नाम और पते जो अखबार के मालिक हैं और कुल पूंजी का एक प्रतिशत से अधिक साझेदारों या शेयरधारकों के पास हैं: हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, C/o 2601, विंग-3, लोढ़ा अमारा, कोलशेट रोड, ठाणे, महाराष्ट्र.

मैं, कुलवंत सिंह, एतद्द्वारा घोषणा करता हूं कि ऊपर दिए गए विवरण मेरी सर्वोत्तम जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य हैं.

दिनांक - 15 जुलाई 2026
प्रकाशक के हस्ताक्षर

एथेनॉल ईंधन: हरित ऊर्जा का एक प्रभावी विकल्प

डॉ. प्रीति सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, रवींद्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल

डॉ. कुलवंत सिंह

प्रोफ़ेसर, होमी भाभा राष्ट्रीय संस्थान अणुशक्ति नगर, मुंबई

भारत के दिल्ली, मुंबई, बेंगलुरु, चेन्नई, कोलकाता और हैदराबाद जैसे महानगरों के साथ-साथ अनेक अन्य शहर भी आज बढ़ते वायु प्रदूषण, यातायात, तेजी से फैलते शहरीकरण और घटते हरित क्षेत्रों की चुनौती से जूझ रहे हैं। व्यस्त सड़कों पर वाहनों की बढ़ती संख्या, निर्माण कार्यों से उड़ती धूल, औद्योगिक धुआँ और लगातार बढ़ता तापमान देश के शहरी पर्यावरण की बदलती तस्वीर को स्पष्ट करते हैं। औद्योगीकरण और शहरीकरण ने जहाँ आर्थिक विकास को गति दी है, वहीं जीवाश्म ईंधनों पर बढ़ती निर्भरता ने पर्यावरण और जनस्वास्थ्य के लिए गंभीर चुनौतियाँ भी खड़ी कर दी हैं।

भारत का परिवहन क्षेत्र अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत विश्व का तीसरा सबसे बड़ा तेल आयातक और उपभोक्ता देश है, जो अपनी कच्चे तेल की जरूरतों का लगभग 85% से 90% आयात करता है। भारत हर साल लगभग 24 करोड़ (240 मिलियन) टन कच्चा तेल आयात करता है।

भारत अपने विशाल स्थानीय रिफाइनिंग नेटवर्क के माध्यम से अपने आयातित और घरेलू कच्चे तेल का 100% प्रसंस्करण करता है। इसके बाद यह उस संसाधित मात्रा का लगभग 25% परिष्कृत पेट्रोलियम उत्पादों के रूप में पुनः निर्यात करता है। भारत के पास दुनिया की चौथी सबसे बड़ी रिफाइनिंग क्षमता है, जो सालाना लगभग 258 मिलियन मीट्रिक टन है।

आज विश्व जलवायु परिवर्तन, वायु प्रदूषण और ऊर्जा सुरक्षा जैसी गंभीर चुनौतियों से जूझ रहा है। ऐसे में पर्यावरण संरक्षण और जीवाश्म ईंधनों पर निर्भरता कम करने वाली हर तकनीक उम्मीद की एक नई किरण बनकर उभरती है। इन्हीं प्रयासों में एथेनॉल-मिश्रित पेट्रोल (Ethanol Blended Petrol—EBP) भी एक महत्वपूर्ण विकल्प है। भारत सहित कई देश परिवहन क्षेत्र में जैव ईंधनों का उपयोग बढ़ाकर पेट्रोलियम आयात पर निर्भरता घटाने और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन कम करने की दिशा में प्रयासरत हैं।

प्रमुख देशों में पेट्रोल और डीज़ल मिश्रण

पेट्रोल में एथेनॉल (E-blends) और डीज़ल में बायोडीज़ल (B-blends) का उपयोग कई देशों में होता है। आइए प्रमुख देशों पर एक नजर डालते हैं -

भारत:

- E20- 20% एथेनॉल + 80% पेट्रोल
- बायोडीज़ल का सीमित उपयोग
- E20 को राष्ट्रीय स्तर पर अपनाया गया

ब्राज़ील:

- E27- 27% एथेनॉल + 73% पेट्रोल;
- फ्लेक्स-फ्यूल वाहनों में इससे अधिक
- बायोडीज़ल मिश्रण भी व्यापक
- दुनिया के सबसे बड़े एथेनॉल बाजारों में से एक

अमेरिका:

- E10 व्यापक रूप से; E15 का विस्तार;

- फ्लेक्स-फ्यूल वाहनों में E85 तक
- बायोडीज़ल/नवीकरणीय डीज़ल का उपयोग
- मक्का-आधारित एथेनॉल प्रमुख

जापान:

- E10 की दिशा में चरणबद्ध उपयोग
- बायोडीज़ल सीमित
- कार्बन उत्सर्जन घटाने की रणनीति का हिस्सा

थाईलैंड:

- E10, E20 और कुछ मामलों में E85 पेट्रोल
- B7 आदि बायोडीज़ल मिश्रण
- गन्ना और कसावा आधारित एथेनॉल

कनाडा:

- कई क्षेत्रों में E5–E10पेट्रोल
- बायोडीज़ल मिश्रण

यूरोपीय देश:

- सामान्यतः E5–E10 पेट्रोल
- प्रायः B7 बायोडीज़ल; कुछ देशों में अधिक
- EU में नवीकरणीय ईंधन को बढ़ावा

इंडोनेशिया:

- एथेनॉल का उपयोग सीमित/विकासशील
- B35-35% पाम-आधारित बायो+ 65% डीज़ल
- सबसे अधिक अनिवार्य बायोडीज़ल मिश्रण

मलेशिया:

- एथेनॉल मिश्रण सीमित B10–B20 पेट्रोल
- पाम तेल आधारित बायोडीज़ल

अर्जेंटीना:

- एथेनॉल मिश्रण
- बायोडीज़ल मिश्रण
- गन्ना और मक्का आधारित एथेनॉल;
- सोयाबीन आधारित बायोडीज़ल

कोलंबिया:

- सामान्यतः E10 पेट्रोल
- B10 बायोडीज़ल जैव ईंधन

इसे समझने का आसान तरीका

E10 = 10% एथेनॉल + 90% पेट्रोल
E20 = 20% एथेनॉल + 80% पेट्रोल
E27 = 27% एथेनॉल + 73% पेट्रोल
E85 = लगभग 85% एथेनॉल + 15% पेट्रोल
B7 = 7% बायोडीज़ल + 93% डीज़ल
B20 = 20% बायोडीज़ल + 80% डीज़ल
B35 = 35% बायोडीज़ल + 65% डीज़ल

फ्लेक्स-फ्यूल वाहन

ब्राज़ील दुनिया का एकमात्र ऐसा देश है जहाँ फ्लेक्स-फ्यूल वाहन (FFV) E27 मानक वाले ईंधन से लेकर E100 (शुद्ध/हाइड्रस एथेनॉल) तक किसी भी मिश्रण पर सफलतापूर्वक चलते हैं। इसके अलावा, संयुक्त राज्य अमेरिका में भी फ्लेक्स-फ्यूल वाहन (E85) काफी लोकप्रिय हैं। दुनिया में फ्लेक्स-फ्यूल तकनीक को अपनाने वाले मुख्य देश हैं -

ब्राज़ील: यहाँ पेट्रोल में E27 (27% एथेनॉल) मिलाना अनिवार्य है। ब्राज़ील में अधिकांश गाड़ियां फ्लेक्स-फ्यूल तकनीक पर आधारित हैं, जो पेट्रोल के अलावा सीधे हाइड्रस एथेनॉल (E100) पर भी चलती हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका: अमेरिका (विशेषकर मक्का उत्पादक राज्यों जैसे आयोवा और इलिनॉय में) E85 (85% एथेनॉल और 15% पेट्रोल) का उपयोग फ्लेक्स-फ्यूल वाहनों के लिए व्यापक रूप से किया जाता है।

अन्य देश: पराग्वे (Paraguay) में E30 और भारत में E20 (20% एथेनॉल) अनिवार्य मानक है। भारत में अब फ्लेक्स-फ्यूल (E85 और E100 तक) वाहनों और ईंधन (E85) को भी लॉन्च किया जा रहा है।

भारत में एथेनॉल-मिश्रित पेट्रोल कार्यक्रम

भारत में एथेनॉल-मिश्रित पेट्रोल कार्यक्रम की शुरुआत वर्ष 2003 में हुई थी और बाद के वर्षों में इसे चरणबद्ध तरीके से देश के अधिक हिस्सों तक विस्तार दिया गया। सरकार ने 20% एथेनॉल मिश्रण (E20) के लक्ष्य को निर्धारित समय से पहले हासिल करने की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति की है और देशभर में E20 पेट्रोल की उपलब्धता बढ़ी है। इसका उद्देश्य कच्चे तेल के आयात पर निर्भरता कम करना, घरेलू कृषि क्षेत्र के लिए अतिरिक्त बाजार तैयार करना और परिवहन क्षेत्र के कार्बन उत्सर्जन को कम करना है।

ब्राज़ील भारत के लिए सबसे महत्वपूर्ण तुलना है। वहाँ पेट्रोल में लगभग 27% एथेनॉल (E27) का मिश्रण है और बड़ी संख्या में फ्लेक्स-फ्यूल वाहन E27 से लेकर उच्च एथेनॉल मिश्रणों और हाइड्रस एथेनॉल पर चलते हैं। इसके विपरीत, भारत में E20 का व्यापक उपयोग ऐसे समय में हुआ है जब देश के वाहनों का बड़ा हिस्सा पहले के कम एथेनॉल मिश्रणों के लिए डिजाइन किया गया था। इसलिए भारत में वाहन अनुकूलता, ईंधन दक्षता और पुराने वाहनों पर प्रभाव जैसे प्रश्न महत्वपूर्ण हैं।

अमेरिका में E10 सबसे सामान्य मिश्रण है, जबकि E15 का विस्तार हो रहा है और फ्लेक्स-फ्यूल वाहन E85 तक इस्तेमाल कर सकते हैं। इंडोनेशिया का उदाहरण डीज़ल के क्षेत्र में उल्लेखनीय है, जहाँ B35 मिश्रण का उपयोग किया जा रहा है।

एथेनॉल को एक हरित और पर्यावरण-अनुकूल ईंधन के रूप में देखा जाता है, जो जीवाश्म ईंधनों पर निर्भरता कम करने और कार्बन उत्सर्जन घटाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इसके उपयोग से पेट्रोलियम आयात में कमी, ऊर्जा सुरक्षा को बढ़ावा और कृषि क्षेत्र को अतिरिक्त बाजार मिल सकता है। गन्ने, मक्का और अन्य जैविक स्रोतों से उत्पादित एथेनॉल एक नवीकरणीय ऊर्जा विकल्प है, इसलिए यह भविष्य की स्वच्छ ऊर्जा व्यवस्था की दिशा में महत्वपूर्ण कदम माना जाता है। हालांकि, इसके पर्यावरणीय लाभ को अधिकतम करने के लिए जल, भूमि, उर्वरक और ऊर्जा के विवेकपूर्ण उपयोग तथा उत्पादन और परिवहन की प्रक्रियाओं को अधिक टिकाऊ बनाना आवश्यक है।

एथेनॉल को केवल एक वैकल्पिक ईंधन नहीं, बल्कि स्वच्छ ऊर्जा, ऊर्जा आत्मनिर्भरता और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण अवसर के रूप में देखा जा सकता है। इसके वास्तविक लाभों को समझने के लिए हमें उन खेतों, गन्ने के क्षेत्रों और ग्रामीण समुदायों तक पहुँचना होगा, जहाँ से इस हरित ईंधन की यात्रा शुरू होती है। आइए, शहरों से गाँवों की ओर चलें और जानें कि एथेनॉल किस प्रकार पर्यावरण संरक्षण, किसानों की आय, ग्रामीण रोजगार और देश की ऊर्जा सुरक्षा को नई दिशा दे सकता है।

एथेनॉल क्या है?

एथेनॉल (C_2H_5OH) एक रंगहीन, ज्वलनशील और नवीकरणीय जैव ईंधन है, जिसे एथिल एल्कोहॉल भी कहा जाता है। इसका उत्पादन मुख्यतः गन्ने, मक्का, चावल, जौ तथा अन्य शर्करा और स्टार्चयुक्त फसलों से किण्वन (Fermentation) प्रक्रिया द्वारा किया जाता है।

इसे 'ग्रीन फ्यूल' कहा जाता है क्योंकि यह नवीकरणीय जैविक स्रोतों से प्राप्त होता है। इसके जीवन-चक्र में पौधे वायुमंडल से कार्बन डाइऑक्साइड अवशोषित करते हैं, जिससे जीवाश्म ईंधनों की तुलना में इसके शुद्ध ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करने में मदद मिल सकती है।

भारत में E20 ईंधन को बढ़ावा दिया जा रहा है, जिसमें 20% एथेनॉल और 80% पेट्रोल होता है। इसका प्रमुख उद्देश्य पेट्रोलियम आयात पर निर्भरता कम करना, ऊर्जा सुरक्षा बढ़ाना और परिवहन क्षेत्र के कार्बन उत्सर्जन को घटाने में योगदान देना है।

एथेनॉल कैसे बनता है?

थेनॉल का उत्पादन मुख्यतः एक जैव-रासायनिक प्रक्रिया के माध्यम से किया जाता है। सबसे पहले गन्ने, मक्का या अन्य कृषि स्रोतों से प्राप्त शर्करा या स्टार्च को किण्वन योग्य शर्करा में बदला जाता है। इसके बाद यीस्ट जैसे सूक्ष्मजीवों की सहायता से किण्वन (Fermentation) कराया जाता है, जिससे एथेनॉल का निर्माण होता है। अंत में आसवन (Distillation) और निर्जलीकरण (Dehydration) जैसी प्रक्रियाओं द्वारा एथेनॉल को आवश्यक शुद्धता तक पहुँचाया जाता है।

अब द्वितीय पीढ़ी (2G) एथेनॉल तकनीक भी विकसित हो रही है, जिसमें धान की पराली, गेहूँ का भूसा, गन्ने की खोई और अन्य कृषि अवशेषों में मौजूद सेल्यूलोज एवं हेमीसेल्यूलोज का उपयोग किया जाता है। इस तकनीक से कृषि अपशिष्ट को उपयोगी जैव ईंधन में बदला जा सकता है और पराली जलाने जैसी पर्यावरणीय समस्याओं को कम करने में भी मदद मिल सकती है।

एथेनॉल मिश्रित पेट्रोल के प्रमुख लाभ

1. ऊर्जा सुरक्षा और आयात निर्भरता में कमी

भारत अपनी पेट्रोलियम आवश्यकताओं के एक बड़े हिस्से के लिए आयात पर निर्भर है। पेट्रोल में एथेनॉल मिलाने से पेट्रोल की कुल आवश्यकता का एक हिस्सा घरेलू रूप से उत्पादित जैव ईंधन से पूरा किया जा सकता है। इससे कच्चे तेल के आयात पर निर्भरता और विदेशी मुद्रा व्यय कम करने में सहायता मिलती है तथा देश की ऊर्जा सुरक्षा मजबूत होती है। भारत का एथेनॉल ब्लेंडिंग कार्यक्रम इसी उद्देश्य से घरेलू एथेनॉल उत्पादन को बढ़ावा दे रहा है।

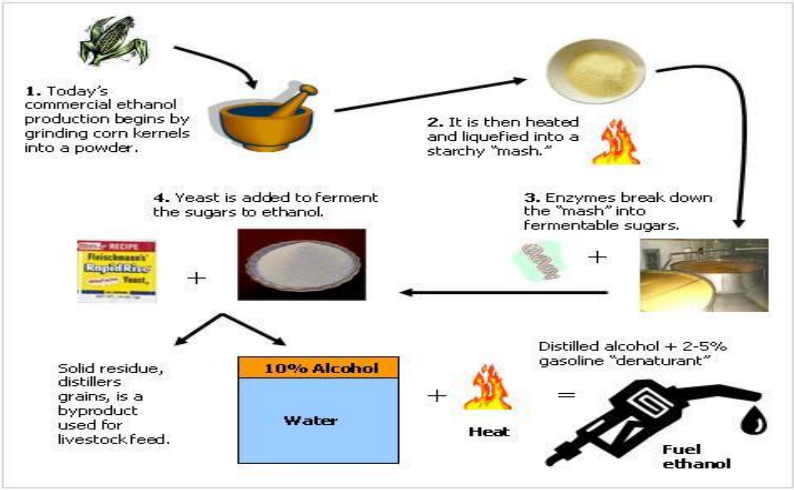

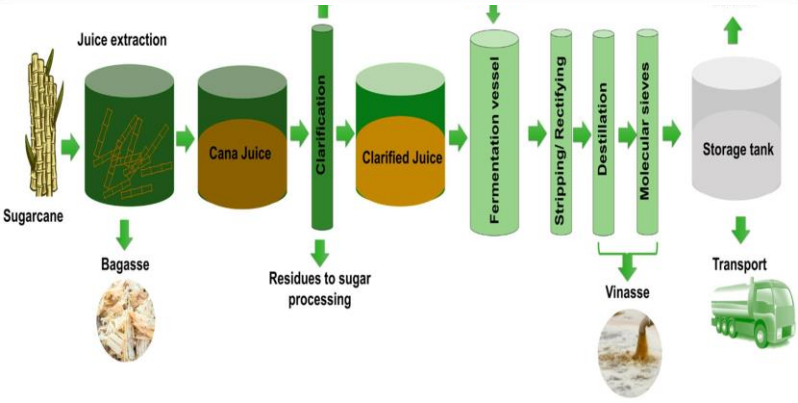

2. वायु प्रदूषण और कार्बन उत्सर्जन को कम करने की संभावना

एथेनॉल एक ऑक्सीजनयुक्त ईंधन है, जो इंजन में ईंधन के दहन की प्रक्रिया को प्रभावित करता है। भारत के E20 संबंधी परीक्षणों में सामान्य पेट्रोल की तुलना में कार्बन मोनोऑक्साइड (CO) और हाइड्रोकार्बन (HC) उत्सर्जन में कमी देखी गई। NITI Aayog के आकलन के अनुसार, E20 के उपयोग से दोपहिया वाहनों में CO उत्सर्जन लगभग 50% और चौपहिया वाहनों में लगभग 30% कम हो सकता है, जबकि HC उत्सर्जन में लगभग 20% कमी देखी गई। हालांकि, NOx पर प्रभाव वाहन और इंजन की परिस्थितियों के अनुसार अलग-अलग हो सकता है। इसलिए एथेनॉल मिश्रण को वायु प्रदूषण कम करने की दिशा में उपयोगी उपाय माना जा सकता है, लेकिन इसके लाभ वाहन तकनीक और ईंधन की गुणवत्ता पर भी निर्भर करते हैं।

3. अर्थव्यवस्था के नए अवसर

एथेनॉल उत्पादन से गन्ना, मक्का और अन्य उपयुक्त कृषि स्रोतों के लिए अतिरिक्त बाजार विकसित होता है। इससे किसानों के लिए आय के नए अवसर पैदा हो सकते हैं और ग्रामीण क्षेत्रों में डिस्टिलरी तथा संबंधित उद्योगों के विकास से रोजगार भी बढ़ सकता है। भारत की नीति में गन्ने के विभिन्न उत्पादों के साथ-साथ कुछ अन्य फीडस्टॉक और अनुपयुक्त या क्षतिग्रस्त खाद्यान्नों से एथेनॉल उत्पादन को भी बढ़ावा दिया गया है।

4. उच्च ऑक्टेन संख्या से इंजन के प्रदर्शन में संभावित लाभ

एथेनॉल की ऑक्टेन संख्या सामान्य पेट्रोल की तुलना में अधिक होती है। इसलिए पेट्रोल में एथेनॉल मिलाने से मिश्रित ईंधन की ऑक्टेन रेटिंग बढ़ सकती है, जिससे इंजन में नॉकिंग (knocking) की प्रवृत्ति कम करने में मदद मिलती है [1]। आधुनिक E20-अनुकूल इंजनों में उचित कैलिब्रेशन और आवश्यक तकनीकी बदलावों के साथ इसका बेहतर लाभ उठाया जा सकता है। एथेनॉल की ऊर्जा पेट्रोल से कम होने के कारण पुराने या E20 के लिए अनुकूलित न किए गए वाहनों में ईंधन दक्षता कुछ कम हो सकती है; NITI Aayog के परीक्षणों में वाहन के डिजाइन और कैलिब्रेशन के आधार पर यह कमी अलग-अलग पाई गई। हालांकि, आधुनिक फ्लेक्स-फ्यूल और एथेनॉल-अनुकूल इंजनों में इस प्रभाव को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

ईंधन में एथेनॉल मिश्रण के सकारात्मक प्रभाव

- पेट्रोलियम आयात पर निर्भरता और विदेशी मुद्रा व्यय में कमी।
- जीवाश्म ईंधन की खपत घटाकर ऊर्जा सुरक्षा को मजबूत करना।
- कार्बन उत्सर्जन और ग्रीनहाउस गैसों में संभावित कमी।
- गन्ना, मक्का और कृषि अवशेषों जैसे घरेलू संसाधनों का बेहतर उपयोग।
- किसानों की आय और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बढ़ावा।
- कृषि अवशेषों से 2G एथेनॉल उत्पादन द्वारा पराली जलाने में कमी की संभावना।
- स्थानीय स्तर पर रोजगार और जैव-ईंधन उद्योग को प्रोत्साहन।
- स्वच्छ ऊर्जा की दिशा में संक्रमण और सतत विकास को बढ़ावा।
- पेट्रोल में एथेनॉल मिश्रण से ईंधन के ऑक्टेन स्तर में सुधार।
- भारत को ऊर्जा आत्मनिर्भर और कम-कार्बन अर्थव्यवस्था की ओर ले जाने में योगदान।

एक लीटर एथेनॉल

एथेनॉल संयंत्र में वास्तविक औद्योगिक जल खपत आधुनिक संयंत्रों में सामान्यतः लगभग 3–5 लीटर प्रति लीटर एथेनॉल होती है। हालांकि, यदि एथेनॉल के लिए उपयोग किए जाने वाले गन्ने, मक्का या चावल की खेती में लगे वर्षाजल और सिंचाई जल को भी शामिल किया जाए, तो इसका समग्र जल पदचिह्न कई गुना बढ़ सकता है। इसलिए एथेनॉल के जल प्रभाव का आकलन करते समय 'फैक्ट्री में प्रत्यक्ष जल खपत' और 'पूरे कृषि-आधारित जल पदचिह्न' के बीच अंतर करना आवश्यक है।

आधुनिक एथेनॉल संयंत्रों में जल का बड़े पैमाने पर पुनर्चक्रण और पुनः उपयोग किया जाता है। कूलिंग सिस्टम, कंडेनसेट और प्रक्रिया जल को उपचारित कर दोबारा उपयोग में लाया जाता है, जिससे ताजे पानी की आवश्यकता काफी कम हो जाती है। हालांकि, वाष्पीकरण, ब्लोडाउन, सफाई और अन्य प्रक्रियाओं के कारण कुछ जल की वास्तविक खपत बनी रहती है। अत्याधुनिक संयंत्रों में जल पुनर्चक्रण और Zero Liquid Discharge (ZLD) जैसी तकनीकों के माध्यम से इस खपत को और कम करने का प्रयास किया जाता है।

एथेनॉल एवं अन्य उत्पादों का जल पदचिह्न अनुमान

उत्पाद	अनुमानित जल पदचिह्न
बीफ- 1 किग्रा	~15,400 लीटर
मटन (गोश्त)- 1 किग्रा	~9,000 लीटर
जीन्स– 1 जोड़ी	~10,850 लीटर
भेड़ मांस– 1 किग्रा	~10,400 लीटर
पोर्क– 1 किग्रा	~6,000 लीटर
चिकन– 1 किग्रा	~4,300 लीटर
कॉटन टी-शर्ट – 1	~2,720 लीटर
चीनी-1 किलो	~1,800 लीटर
गेहूं -1 किग्रा	~1,400 लीटर
एथेनॉल-1 लीटर (गन्ना से)	~2,855 लीटर
एथेनॉल-1 लीटर (मक्का से)	~1,910 लीटर
एथेनॉल-1 लीटर (चुकंदर से)	~1,355 लीटर

यह तुलना एक महत्वपूर्ण बात दिखाती है: किसी उत्पाद का पर्यावरणीय प्रभाव केवल उसके अंतिम रूप से नहीं, बल्कि उसकी पूरी उत्पादन श्रृंखला से तय होता है। जैसे बीफ में चारे के लिए पानी और जीन्स में कपास की खेती का जल उपयोग महत्वपूर्ण है, वैसे ही एथेनॉल का जल पदचिह्न भी इस बात पर निर्भर करता है कि वह गन्ने, मक्का या अन्य फीडस्टॉक से बना है और उसे किस क्षेत्र एवं तकनीक से उत्पादित किया गया है। इसलिए एथेनॉल की पर्यावरणीय समीक्षा में जल पदचिह्न, भूमि उपयोग, कार्बन उत्सर्जन और ऊर्जा संतुलन—इन सभी पहलुओं को साथ देखना वैज्ञानिक होगा।

यदि आप जल पदचिह्न (Water Footprint) की तुलना करना चाहते हैं, तो यह समझना जरूरी है कि इसमें केवल किसी वस्तु को बनाने में सीधे इस्तेमाल हुआ पानी नहीं, बल्कि पूरी आपूर्ति श्रृंखला में खपत संबंधित जल शामिल हो सकता है।

एथेनॉल, खाद्य सुरक्षा और वैकल्पिक फीडस्टॉक

एथेनॉल की चर्चा केवल ऊर्जा और पर्यावरण तक सीमित नहीं है; इसका संबंध खाद्य सुरक्षा और कृषि संसाधनों से भी जुड़ा हुआ है। भारत विश्व के प्रमुख चीनी उत्पादक देशों में शामिल है और गन्ना देश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था तथा लाखों किसानों की

आजीविका का महत्वपूर्ण आधार है। ऐसे में खाद्य और ईंधन के बीच संतुलन बनाए रखना नीति-निर्माताओं के लिए महत्वपूर्ण है।

यदि खाद्य फसलों जैसे मक्का और चावल का बड़ा हिस्सा एथेनॉल उत्पादन की ओर जाने लगे, तो कुछ परिस्थितियों में खाद्य उपलब्धता और कीमतों पर दबाव पड़ सकता है। इसी प्रकार, गन्ने से एथेनॉल उत्पादन बढ़ने पर चीनी उत्पादन और एथेनॉल के बीच संसाधनों के आवंटन का प्रश्न उठता है। हालांकि, इसका प्रभाव उत्पादन की मात्रा, कृषि उपज, वैश्विक बाजार, सरकारी नीतियों और उपलब्ध भंडार जैसे अनेक कारकों पर निर्भर करता है। इसलिए यह कहना उचित नहीं होगा कि एथेनॉल उत्पादन अनिवार्य रूप से खाद्य संकट पैदा करता है; बल्कि खाद्य सुरक्षा और ऊर्जा सुरक्षा के बीच संतुलित नीति आवश्यक है।

इसी कारण भविष्य की एथेनॉल नीति में 'Food vs Fuel' की चुनौती को कम करने के लिए गैर-खाद्य और अपशिष्ट आधारित फीडस्टॉक को प्राथमिकता देना महत्वपूर्ण हो सकता है। द्वितीय पीढ़ी (2G) एथेनॉल तकनीक में धान की पराली, गेहूँ का भूसा, गन्ने की खोई (bagasse), मक्का के डंठल और अन्य कृषि अवशेषों में मौजूद सेलुलोज एवं हेमीसेलुलोज को तोड़कर एथेनॉल बनाया जाता है। इससे खाद्य फसलों पर निर्भरता कम करने के साथ कृषि अवशेषों के बेहतर उपयोग और पराली जलाने जैसी समस्याओं को कम करने की संभावना है।

इसके अलावा, टूटी या क्षतिग्रस्त अनाज की खेप, अनुपयुक्त खाद्यान्न, शीरा (molasses), गन्ने का रस, शुगर सिरप, तथा भविष्य में नगरपालिका के जैविक कचरे और औद्योगिक जैविक अपशिष्ट भी उपयुक्त तकनीक के माध्यम से एथेनॉल उत्पादन के संभावित स्रोत बन सकते हैं।

क्या हम ऐसी एथेनॉल अर्थव्यवस्था विकसित कर सकते हैं, जिसमें ऊर्जा सुरक्षा, खाद्य सुरक्षा, किसानों की आय और पर्यावरण संरक्षण—चारों के बीच संतुलन बना रहे? इसका समाधान संभवतः खाद्य फसलों पर अत्यधिक निर्भरता के बजाय 2G एथेनॉल, कृषि अवशेषों, अपशिष्ट-आधारित फीडस्टॉक, बेहतर कृषि उत्पादकता और जल-कुशल फसलों के व्यापक उपयोग में निहित है। यही दृष्टिकोण भारत के एथेनॉल मिश्रण कार्यक्रम को अधिक टिकाऊ और दीर्घकालिक बना सकता है।

EBP से वाहन प्रदर्शन पर प्रभाव

E20 (20% एथेनॉल और 80% पेट्रोल) के उपयोग का वाहन के प्रदर्शन पर प्रभाव मुख्यतः इंजन डिजाइन, ईंधन प्रणाली और इंजन कैलिब्रेशन पर निर्भर करता है। एथेनॉल की ऑक्टेन संख्या पेट्रोल से अधिक होने के कारण यह इंजन की नॉकिंग प्रवृत्ति को कम कर सकता है और उपयुक्त रूप से डिजाइन किए गए इंजन में बेहतर दहन तथा उच्च कम्प्रेशन अनुपात का लाभ लेने की संभावना प्रदान करता है।

विभिन्न शोधों और वाहन-परीक्षणों से संकेत मिलता है कि E20-अनुकूलित इंजन में प्रदर्शन और उत्सर्जन के मामले में सकारात्मक परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। हालांकि, एथेनॉल की ऊर्जा प्रति लीटर पेट्रोल से कम होने के कारण समान दूरी तय करने के लिए ईंधन की खपत कुछ बढ़ सकती है और कुछ वाहनों में माइलेज में कमी देखी जा सकती है। इसका वास्तविक प्रभाव वाहन के मॉडल, इंजन तकनीक और कैलिब्रेशन पर निर्भर करता है।

इसलिए E20 के व्यापक उपयोग के साथ वाहन प्रौद्योगिकी में भी समानांतर सुधार आवश्यक है। ईंधन इंजेक्शन प्रणाली, इंजन कैलिब्रेशन, ईंधन-संगत सामग्री और उत्सर्जन नियंत्रण प्रणाली को E20 के अनुरूप विकसित करना महत्वपूर्ण होगा। पुराने वाहनों में लंबे समय तक उच्च एथेनॉल मिश्रण के उपयोग से कुछ रबर, प्लास्टिक और सील जैसे घटकों पर अतिरिक्त प्रभाव पड़ने की संभावना को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। इस संक्रमण के कारण E20-अनुकूल वाहनों के विकास और उत्पादन पर वाहन निर्माताओं को अतिरिक्त तकनीकी लागत उठानी पड़ सकती है, जिसका कुछ प्रभाव वाहन की कीमत पर पड़ सकता है। हालांकि, यह कहना अधिक उचित होगा कि लागत का प्रभाव केवल E20 के कारण नहीं, बल्कि आवश्यक इंजन उन्नयन, उत्सर्जन मानकों और वाहन प्रौद्योगिकी में होने वाले व्यापक बदलावों पर निर्भर करेगा।

E20 को सफलतापूर्वक अपनाने के लिए केवल ईंधन बदलना पर्याप्त नहीं है। उपयुक्त इंजन तकनीक, वाहन अनुकूलन, ईंधन गुणवत्ता और उपभोक्ता जागरूकता—इन सभी का समानांतर विकास आवश्यक है। सही तकनीकी अनुकूलन के साथ E20 भारत की ऊर्जा सुरक्षा और उत्सर्जन-कमी के लक्ष्यों में योगदान दे सकता है, जबकि वाहन प्रदर्शन और विश्वसनीयता को भी प्रभावी रूप से बनाए रखा जा सकता है।

क्या एथेनॉल ही अंतिम समाधान है?

ऊर्जा विशेषज्ञों के अनुसार, भविष्य की ऊर्जा व्यवस्था किसी एक ईंधन पर निर्भर नहीं होगी, बल्कि बहुआयामी ऊर्जा प्रणाली पर आधारित होगी। इसमें एथेनॉल, विद्युत वाहन, हरित हाइड्रोजन, जैव-सीएनजी और अन्य नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत अपनी-अपनी भूमिका निभाएंगे। अर्थात्, एथेनॉल ऊर्जा संकट या जलवायु परिवर्तन का अकेला समाधान नहीं है, बल्कि स्वच्छ और टिकाऊ ऊर्जा की ओर बढ़ते भारत के संक्रमण में एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

समाधान की राह: क्या हरित ईंधन को और अधिक हरित बनाया जा सकता है?

यदि एथेनॉल कार्यक्रम को दीर्घकाल तक टिकाऊ बनाना है, तो जल संरक्षण, संसाधन दक्षता और कम-कार्बन उत्पादन को इसकी नीति का अभिन्न हिस्सा बनाना होगा। इसके लिए ऐसे फीडस्टॉक को बढ़ावा देना उपयोगी हो सकता है, जिनकी जल और भूमि पर अपेक्षाकृत कम निर्भरता हो। मक्का, ज्वार और बाजरा जैसे अनाज कुछ क्षेत्रों में कम जल में उगाए जा सकते हैं, हालांकि इनके उपयोग का निर्णय स्थानीय जल उपलब्धता, खाद्य सुरक्षा और कृषि अर्थव्यवस्था को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

भविष्य में द्वितीय पीढ़ी (2G) एथेनॉल अधिक टिकाऊ विकल्प बन सकता है। इसमें धान की पराली, गेहूँ का भूसा, गन्ने की खोई और अन्य कृषि अवशेषों में मौजूद सेलुलोज एवं हेमीसेलुलोज से एथेनॉल बनाया जाता है। इससे खाद्य फसलों पर दबाव कम करने के साथ-साथ कृषि अवशेषों के बेहतर उपयोग और पराली जलाने से होने वाले वायु प्रदूषण को कम करने में भी सहायता मिल सकती है। इसी प्रकार, शैवाल-आधारित जैव ईंधन भविष्य की उभरती तकनीकों में शामिल है, क्योंकि कुछ प्रणालियों में इसके लिए उपजाऊ कृषि भूमि की आवश्यकता कम हो सकती है। हालांकि, इसकी व्यावसायिक लागत, ऊर्जा दक्षता और बड़े पैमाने पर उत्पादन की व्यवहार्यता पर अभी और अनुसंधान आवश्यक है।

भविष्य: संतुलित ऊर्जा नीति की आवश्यकता

भारत के लिए एथेनॉल मिश्रण कार्यक्रम ऊर्जा सुरक्षा, घरेलू जैव ईंधन उत्पादन और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करने का महत्वपूर्ण अवसर है। इसकी दीर्घकालिक सफलता के लिए जल-कुशल कृषि, ड्रिप सिंचाई, उन्नत फीडस्टॉक, 2G एथेनॉल, ऊर्जा-कुशल डिस्टिलरी, जल पुनर्चक्रण और अपशिष्ट प्रबंधन को समान महत्व देना होगा।

एथेनॉल के जीवन-चक्र में होने वाले कार्बन उत्सर्जन को कम करना भारत के राष्ट्रीय जलवायु लक्ष्यों और पेरिस समझौते के तहत निर्धारित प्रतिबद्धताओं के अनुरूप जलवायु कार्रवाई में योगदान दे सकता है। हालांकि, इसका वास्तविक लाभ फीडस्टॉक, कृषि पद्धति, प्रसंस्करण तकनीक और ऊर्जा स्रोत पर निर्भर करेगा। इसलिए एथेनॉल को एक व्यापक कम-कार्बन ऊर्जा संक्रमण रणनीति का हिस्सा मानना अधिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण होगा।

निष्कर्ष: हरित ईंधन कितना हरित?

एथेनॉल मिश्रित पेट्रोल भारत की ऊर्जा सुरक्षा, आयात निर्भरता में कमी, ग्रामीण अर्थव्यवस्था और कार्बन उत्सर्जन न्यूनीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। लेकिन इसकी स्थिरता का आकलन केवल टेलपाइप उत्सर्जन से नहीं, बल्कि पूरे जीवन-चक्र—कृषि से लेकर प्रसंस्करण, परिवहन और अंतिम उपयोग तक—के पर्यावरणीय प्रभाव को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

वास्तविक सतत विकास वही है, जिसमें ऊर्जा सुरक्षा के साथ जल, मिट्टी, खाद्य सुरक्षा और जैव विविधता का भी संरक्षण हो। यही दृष्टिकोण एथेनॉल को एक उपयोगी जैव ईंधन से आगे बढ़ाकर भारत के टिकाऊ ऊर्जा संक्रमण का प्रभावी हिस्सा बना सकता है।

[1] Anderson, J.E. et.al, Octane Numbers of Ethanol− and Methanol− Gasoline Blends Estimated from Molar Concentrations, Energy & Fuels, 24(12), 0887-0624.

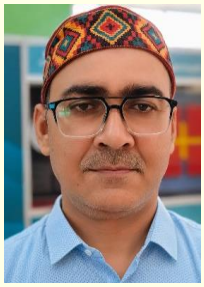

जिज्ञासा से नवाचार तक: विज्ञान मंथन यात्रा

डॉ. रामानुज पाठक

बिल्डिंग पैरामाउंट स्कूल के पास, उमरी गली नंबर 4, सतना, मध्यप्रदेश

लेखक रसायन विज्ञान विषय में स्नातकोत्तर एवं पीएचडी हैं तथा शासकीय उत्कृष्ट उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में रसायन शास्त्र के व्याख्याता है एवं विज्ञान विषयों का स्वतंत्र लेखन कार्य करते हैं।

मध्यप्रदेश में विज्ञान-आधारित शिक्षा को नई दिशा देने के उद्देश्य से मध्यप्रदेश शासन की मध्यप्रदेश विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद (MPCST) ने वर्ष 2007 में 'विज्ञान मंथन यात्रा' प्रारंभ की। यह पहल आज केवल एक शैक्षणिक गतिविधि न रहकर एक दूरदर्शी और परिवर्तनकारी कार्यक्रम के रूप में स्थापित हो चुकी है। यह कार्यक्रम इस मूल शैक्षिक सिद्धांत को पुनः स्थापित करता है कि वास्तविक ज्ञान अनुभव से प्राप्त होता है।

जब विद्यार्थी प्रयोगशालाओं, अंतरिक्ष केंद्रों और वैज्ञानिक संस्थानों का प्रत्यक्ष अवलोकन करते हैं, तो विज्ञान केवल पाठ्यपुस्तकों तक सीमित न रहकर एक जीवंत और सृजनात्मक प्रक्रिया के रूप में समझ आता है।

'मिशन एक्सीलेंस' के अंतर्गत यह पहल विद्यार्थियों को कक्षा की सीमाओं से बाहर वास्तविक वैज्ञानिक दुनिया से जोड़ती है। इसका उद्देश्य केवल जानकारी देना नहीं, बल्कि जिज्ञासा जगाना, प्रश्न पूछने की प्रवृत्ति विकसित करना और नवाचार के लिए प्रेरित करना है।

इसके पश्चात विज्ञान मंथन यात्रा में भाग लेने वाले विद्यार्थियों की परीक्षा होती है, जिसके आधार पर उन्हें अगले पाँच वर्षों तक छात्रवृत्ति दी जाती है। इस प्रकार यह यात्रा एक सुदृढ़ शैक्षिक परंपरा बन चुकी है, जो प्रतिभाशाली विद्यार्थियों की पहचान कर उन्हें मार्गदर्शन और प्रोत्साहन प्रदान करती है।

आँकड़ों से इस पहल की व्यापकता और प्रभाव स्पष्ट होता है। 2007 से 2026 के बीच भौतिक (फिजिकल) मोड में 1,25,845 आवेदन प्राप्त हुए, जो विद्यार्थियों के उत्साह और विश्वास को दर्शाते हैं। इनमें से 8,183 विद्यार्थियों का चयन हुआ, जिन्होंने देश के प्रतिष्ठित वैज्ञानिक संस्थानों का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त किया।

इसके अतिरिक्त, डिजिटल युग की आवश्यकताओं को देखते हुए वर्चुअल मोड भी शुरू किया गया, जिसमें पिछले तीन वर्षों में 4,010 आवेदन प्राप्त हुए और 1,594 विद्यार्थियों ने ऑनलाइन सहभागिता की। इस प्रक्रिया में 26 विद्यार्थियों को उत्कृष्ट प्रदर्शन के लिए पुरस्कार राशि प्रदान की गई, जो इस कार्यक्रम की सुदृढ़ मूल्यांकन और प्रोत्साहन प्रणाली को दर्शाता है।

वर्ष 2025–26 में आयोजित 18वीं विज्ञान मंथन यात्रा, जिसे विशेष रूप से "इसरो यात्रा" कहा गया, कार्यक्रम का एक उन्नत संस्करण रही। इस वर्ष 1,860 विद्यार्थियों में से 375 का चयन हुआ और 344 विद्यार्थियों ने वास्तविक यात्रा में सहभागिता की।

शिक्षक स्तर पर 180 आवेदन प्राप्त हुए, जिनमें से 27 का चयन हुआ और 26 शिक्षकों ने यात्रा में भाग लिया। ये आँकड़े कार्यक्रम की व्यापक लोकप्रियता के साथ-साथ इसकी गुणवत्ता, चयन प्रक्रिया की कठोरता और बढ़ती प्रतिस्पर्धात्मकता को भी दर्शाते हैं।

विज्ञान मंथन यात्रा एक सुव्यवस्थित और बहुआयामी शैक्षणिक कार्यक्रम है, जो केवल भ्रमण नहीं बल्कि समग्र सीखने का अनुभव प्रदान करता है। इसके अंतर्गत विद्यार्थियों को अंतरिक्ष अनुसंधान केंद्र, मिशन कंट्रोल कॉम्प्लेक्स, टेलीमेट्री ट्रैकिंग नेटवर्क,

डीप स्पेस नेटवर्क, प्लैनेटेरियम और विज्ञान संग्रहालय जैसे प्रमुख वैज्ञानिक संस्थानों का प्रत्यक्ष अनुभव कराया जाता है।

बेंगलुरु स्थित अंतरिक्ष केंद्रों में विद्यार्थियों ने मिशन ऑपरेशन कॉम्प्लेक्स (MOC) और टेलीमेट्री ट्रैकिंग सिस्टम की कार्यप्रणाली को नज़दीक से समझा, जहाँ से उपग्रहों का नियंत्रण और निगरानी की जाती है।

डीप स्पेस नेटवर्क में लगभग 32 मीटर व्यास वाले उच्च-संवेदनशील एंटीना के माध्यम से उन्होंने जाना कि किस प्रकार लाखों किलोमीटर दूर स्थित अंतरिक्ष यानों से आने वाले अत्यंत कमजोर संकेतों को ग्रहण किया जाता है। यह अनुभव विज्ञान की उस सूक्ष्म और सटीक प्रकृति को उजागर करता है, जहाँ हर गणना और प्रक्रिया अत्यंत महत्वपूर्ण होती है।

चेन्नई के प्लैनेटेरियम में 360-डिग्री डोम तकनीक से प्रस्तुत स्काई शो ने ब्रह्मांड विज्ञान को नए दृष्टिकोण से समझाया। तारों का जीवन चक्र, ग्रहों की गति, ब्लैक होल और अन्य अंतरिक्षीय घटनाएँ दृश्य-श्रव्य माध्यम से अत्यंत प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत की गईं। वैज्ञानिक दीर्घाओं में ऊर्जा, नाभिकीय विज्ञान और समय-प्रणाली जैसी अवधारणाएँ सरल और व्यावहारिक रूप में समझाई गईं, जिससे विद्यार्थियों की वैज्ञानिक समझ और सुदृढ़ हुई।

श्रीहरिकोटा स्थित सतीश धवन अंतरिक्ष केंद्र, जो लगभग 145 वर्ग किलोमीटर में फैला है, यात्रा का सबसे प्रेरणादायक पड़ाव रहा। यहाँ विद्यार्थियों ने लॉन्च पैड, रॉकेट प्रक्षेपण प्रक्रिया और मिशन कंट्रोल सेंटर का प्रत्यक्ष अवलोकन किया। भूमध्य रेखा के निकट स्थित यह केंद्र प्रक्षेपण के लिए अधिक उपयुक्त माना जाता है, जिससे ईंधन की बचत और पेलोड क्षमता में वृद्धि होती है। इस अनुभव ने विद्यार्थियों को यह समझने में मदद की कि विज्ञान केवल सिद्धांत नहीं, बल्कि एक जटिल और समन्वित प्रक्रिया है।

इस यात्रा की प्रमुख विशेषता इसकी सक्रिय शिक्षण पद्धति है। विद्यार्थियों को केवल अवलोकन तक सीमित नहीं रखा जाता, बल्कि उन्हें समूह चर्चा, प्रश्नोत्तर सत्र, वैज्ञानिकों से संवाद, दैनिक डी-ब्रीफिंग और अनुभव लेखन जैसी गतिविधियों में शामिल किया जाता है, जिससे उनकी विश्लेषणात्मक क्षमता, तर्कशक्ति और अभिव्यक्ति कौशल विकसित होते हैं।

यात्रा के बाद आयोजित स्कॉलरशिप टेस्ट इस कार्यक्रम का महत्वपूर्ण चरण है, जिसमें रटंत ज्ञान के बजाय अनुभव और समझ को प्राथमिकता दी जाती है। प्रश्न जैसे—मिशन कंट्रोल सेंटर की भूमिका, डीप स्पेस नेटवर्क की कार्यप्रणाली, अवलोकित वैज्ञानिक प्रक्रियाओं का सिद्धांत से संबंध, या संभावित वैज्ञानिक प्रोजेक्ट की रूपरेखा—विद्यार्थियों की अवधारणात्मक समझ और रचनात्मक सोच का मूल्यांकन करते हैं। यही इस कार्यक्रम की विशिष्टता है कि यह केवल ज्ञान नहीं देता, बल्कि सोचने और समझने की क्षमता को भी विकसित करता है।

इस यात्रा के परिणाम बहुआयामी हैं। यह विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करती है, जिससे वे तथ्यों को केवल स्वीकारने के बजाय समझने और परखने की प्रवृत्ति अपनाते हैं। साथ ही यह करियर मार्गदर्शन देकर उन्हें विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है, तथा उनके आत्मविश्वास और जिज्ञासा को भी सुदृढ़ करती है। यह कार्यक्रम राष्ट्रीय गौरव और वैज्ञानिक चेतना को भी मजबूत करता है, विशेषकर जब विद्यार्थी देश के अंतरिक्ष कार्यक्रम को प्रत्यक्ष रूप से देखते हैं।

समापन समारोह इस यात्रा का वैचारिक शिखर होता है। 18वीं विज्ञान मंथन यात्रा के समापन पर मुख्य अतिथि डॉ. शिवकुमार शर्मा ने 'विज्ञान' और 'मंथन' को स्पष्ट करते हुए कहा कि विज्ञान सत्य की खोज है और मंथन उस खोज की निरंतर प्रक्रिया। उन्होंने स्वामी विवेकानंद के विचारों का उल्लेख करते हुए कहा कि वास्तविक शिक्षक वही है जो विद्यार्थियों में जिज्ञासा जगाए और उन्हें स्वयं सीखने के लिए प्रेरित करे, न कि केवल पाठ्यपुस्तक तक सीमित रहे।

डॉ. शिवकुमार शर्मा एक प्रख्यात रसायनविद और स्वाध्यायी चिंतक हैं, जिन्होंने भारतीय ज्ञान परंपरा और आधुनिक विज्ञान के समन्वय को अपना लक्ष्य बनाया है। उनका मानना है कि विज्ञान केवल प्रयोगशालाओं तक सीमित नहीं, बल्कि जीवन, समाज और संस्कृति से जुड़ी एक मानवीय चेतना है।

अपने संबोधन में उन्होंने 'विज्ञान' को सत्य की खोज और 'मंथन' को निरंतर चिंतन की प्रक्रिया बताया,

तथा जिज्ञासा को ज्ञान और नवाचार की आधारशिला माना। वे विज्ञान भारती के राष्ट्रीय संगठन मंत्री के रूप में स्वदेशी विज्ञान के पुनर्स्थापन और प्रसार के लिए कार्यरत हैं, जिसका उद्देश्य भारतीय वैज्ञानिक परंपरा, स्वदेशी ज्ञान और आधुनिक अनुसंधान के बीच सेतु निर्माण करना है।

उन्होंने विशेष रूप से इस बात पर बल दिया कि भारत की प्राचीन वैज्ञानिक परंपराएँ आज भी प्रासंगिक हैं और उन्हें आधुनिक विज्ञान के साथ जोड़कर ही आत्मनिर्भर और नवाचारी भारत का निर्माण संभव है। उनका यह दृष्टिकोण विज्ञान मंथन यात्रा की मूल भावना से पूर्णतः मेल खाता है, जहाँ जिज्ञासा, परंपरा और नवाचार का समन्वित स्वरूप विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत होता है।

डॉ. अनिल कोठारी के नेतृत्व में इस कार्यक्रम को नई दिशा मिली है। वे मानते हैं कि विज्ञान केवल पढ़ाया नहीं, बल्कि अनुभव किया जाना चाहिए। उनका विशेष जोर इसे नवाचार, स्टार्टअप, स्पेस टेक्नोलॉजी और शोध-आधारित करियर से जोड़ने पर है, ताकि विद्यार्थी ज्ञान के साथ सृजन की ओर भी अग्रसर हों। वे भारतीय मनीषियों के वैज्ञानिक योगदान को समझने और आगे बढ़ाने पर भी बल देते हैं।

विदाई के क्षण इस यात्रा के मानवीय पक्ष को उजागर करते हैं, जहाँ शिक्षक और विद्यार्थी एक परिवार की तरह जुड़ जाते हैं। यह अनुभव स्पष्ट करता है कि शिक्षा केवल बौद्धिक नहीं, बल्कि सामाजिक और भावनात्मक विकास का भी माध्यम है।

समग्र रूप से विज्ञान मंथन यात्रा एक समेकित शैक्षिक प्रतिमान है, जिसमें अनुभव, मूल्यांकन, नवाचार और आँकड़ों की विश्वसनीयता एक साथ दिखाई देती है। 18वीं विज्ञान मंथन यात्रा—"इसरो यात्रा"—ने इसे एक नए स्तर पर पहुँचाया, जहाँ विज्ञान केवल विषय नहीं, बल्कि जीवन-दृष्टि बन जाता है।

यह यात्रा अपने पीछे केवल स्मृतियाँ नहीं, बल्कि एक स्थायी जिज्ञासा छोड़ती है—"अब आगे क्या?" यही जिज्ञासा भविष्य के वैज्ञानिक भारत की सबसे बड़ी पूँजी है। यह पहल विद्यार्थियों को सूचना के उपभोक्ता से ज्ञान के सृजनकर्ता बनने की दिशा में प्रेरित करती है।

इसका सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव उनकी चिंतन क्षमता का विकास है—वे केवल "क्या है" नहीं, बल्कि "क्यों है" और "कैसे है" भी समझने लगते हैं। यही परिवर्तन उन्हें नवाचार, अनुसंधान और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की ओर अग्रसर करता है।

आज विज्ञान और प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास के दौर में ऐसी पहलें आवश्यक हैं। विज्ञान मंथन यात्रा अनुभव-आधारित शिक्षा को प्रभावी और प्रेरणादायी बनाते हुए विद्यार्थियों को जिज्ञासु, जिम्मेदार और नवाचारी नागरिक बनने के लिए प्रेरित करती है।

यह यात्रा "अब आगे क्या?" जैसा प्रश्न छोड़ती है, जो भविष्य के वैज्ञानिकों और शोधकर्ताओं को जन्म देता है।

वर्ष 2047 के विकसित भारत के लक्ष्य में विज्ञान और अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी की महत्वपूर्ण भूमिका होगी, जिससे भारत आत्मनिर्भर होकर वैश्विक नेतृत्व की दिशा में आगे बढ़ेगा।

मानव शरीर के जैविक मूक संकेत

डॉ. रामानुज पाठक

मानव शरीर प्रकृति की सबसे जटिल जैविक प्रणालियों में से एक है, जो लगभग 370 खरब कोशिकाओं से निर्मित है और निरंतर सक्रिय रहती है। इसमें कोशिकाएँ, ऊतक, अंग और तंत्र—जैसे तंत्रिका, अंतःस्रावी, पाचन और परिसंचरण तंत्र—गहरे समन्वय से कार्य करते हैं।

इस समन्वय का उद्देश्य शरीर का आंतरिक संतुलन बनाए रखना है, जिसे होमियोस्टेसिस कहते हैं। इसमें तापमान, रक्तचाप, हार्मोन स्तर, जल संतुलन और ऊर्जा उपापचय एक निश्चित सीमा में रहते हैं। यही संतुलन स्वास्थ्य का आधार है, और इसके बिगड़ने पर शरीर संकेत देकर हमें सचेत करता है।

मानव शरीर केवल रोग की गंभीर अवस्था में ही नहीं, बल्कि उससे पहले भी सूक्ष्म संकेत देता है—जैसे थकान, नींद में बदलाव, त्वचा की संवेदनशीलता में परिवर्तन या हृदय और पाचन तंत्र की हल्की अनियमितताएँ।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान मानता है कि गंभीर रोगों से पहले शरीर चेतावनी संकेत देता है, जिन्हें समय पर समझकर रोगों की रोकथाम संभव है। लेकिन व्यस्त जीवनशैली, तनाव और जागरूकता की कमी के कारण लोग अक्सर इन संकेतों को सामान्य समझकर नजरअंदाज कर देते हैं।

मांसपेशियों का अचानक फड़कना एक सामान्य अनुभव है, जिसे चिकित्सकीय रूप से मायोकाइमिया कहा जाता है। इसमें विशेषकर पलक, होंठ, हाथ या पैरों की छोटी मांसपेशियों में हल्का कंपन होता है, जो मोटर न्यूरॉन्स द्वारा बार-बार भेजे गए सूक्ष्म विद्युत संकेतों के कारण होता है।

यह स्थिति अक्सर थकान, नींद की कमी, अधिक कैफीन सेवन या लंबे समय तक स्क्रीन देखने से उत्पन्न होती है। तनाव भी इसका प्रमुख कारण है, क्योंकि तनाव के दौरान अधिवृक्क ग्रंथियाँ कॉर्टिसोल और एड्रेनालिन जैसे हार्मोन अधिक मात्रा में स्रावित करती हैं, जिससे तंत्रिका तंत्र की उत्तेजना बढ़ती है और मांसपेशियों में अनैच्छिक फड़कन हो सकती है।

रात में लगभग तीन बजे नींद का बार-बार टूटना शरीर की जैविक घड़ी से जुड़ा एक महत्वपूर्ण संकेत हो सकता है। यह सर्कैडियन रिद्म नामक प्रणाली के कारण होता है, जिसे मस्तिष्क के हाइपोथैलेमस स्थित सुप्राकायस्मैटिक न्यूक्लियस (SCN) नियंत्रित करता है। यह प्रणाली प्रकाश-अंधकार चक्र के अनुसार नींद, हार्मोन स्राव, शरीर का तापमान और उपापचय को नियमित करती है।

रात में मेलाटोनिन बढ़ने से नींद आती है, लेकिन तनाव या चिंता के कारण कॉर्टिसोल का स्तर बढ़ने पर इसका प्रभाव बाधित हो सकता है। इससे नींद बीच में टूट सकती है और पुनः सोना कठिन हो जाता है। लंबे समय तक ऐसी स्थिति रहने पर नींद की गुणवत्ता और समग्र स्वास्थ्य प्रभावित हो सकता है।

दिल की धड़कन का अचानक तेज या अनियमित महसूस होना हृदय अतालता (Arrhythmia) कहलाता है। हृदय एक विद्युत प्रणाली से नियंत्रित होता है, जिसकी नियमित धड़कन साइनोएट्रियल नोड (SA Node) से उत्पन्न संकेतों द्वारा संचालित होती है। इन संकेतों में गड़बड़ी होने पर धड़कन तेज, धीमी या अनियमित हो सकती है। यह स्थिति कभी-कभी तनाव, कैफीन, इलेक्ट्रोलाइट असंतुलन या हार्मोनल बदलाव के कारण अस्थायी होती है, लेकिन बार-बार होने पर चिकित्सकीय जाँच आवश्यक हो सकती है।

भोजन के बाद अत्यधिक सुस्ती या मानसिक धुंध (ब्रेन फॉग) भी उपापचय से जुड़ा संकेत है, जो कई बार इंसुलिन प्रतिरोध से संबंधित हो सकता है। उच्च कार्बोहाइड्रेट भोजन के बाद रक्त में ग्लूकोज़ बढ़ने पर अग्न्याशय से इंसुलिन स्रावित होता है, जो कोशिकाओं को ग्लूकोज़ ग्रहण करने का संकेत देता है।

यदि कोशिकाएँ इंसुलिन के प्रति कम संवेदनशील हो जाएँ, तो ग्लूकोज़ का संतुलन बिगड़ सकता है, जिससे ऊर्जा उपयोग असंतुलित होकर थकान, सुस्ती या ब्रेन फॉग जैसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

इसी तरह, अचानक मीठा खाने की तीव्र इच्छा भी शरीर के ऊर्जा संतुलन से जुड़ी एक जैविक प्रतिक्रिया है। मस्तिष्क, जो शरीर की लगभग 20% ऊर्जा ग्लूकोज़ से प्राप्त करता है, रक्त शर्करा में कमी होने पर त्वरित संकेत देता है, जिससे मीठे या ऊर्जा-समृद्ध भोजन की इच्छा होती है। मैग्नीशियम की कमी और मानसिक तनाव भी इस लालसा को बढ़ा सकते हैं, क्योंकि शरीर ऐसी स्थितियों में तुरंत ऊर्जा की आवश्यकता महसूस करता है।

पाचन तंत्र से जुड़े संकेत शरीर की आंतरिक स्थिति को समझने में महत्वपूर्ण होते हैं। पेट की गड़गड़ाहट सामान्यतः गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल गतिशीलता का हिस्सा है, जो आंतों की मांसपेशियों के संकुचन-शिथिलन से उत्पन्न होकर भोजन को आगे बढ़ाने में मदद करती है। लेकिन यदि यह अधिक हो या इसके साथ जलन, गैस या असहजता हो, तो यह पाचन असंतुलन का संकेत हो सकता है।

बार-बार गला साफ करने की आवश्यकता कई बार गैस्ट्रोएसोफेजियल रिफ्लक्स रोग (GERD) से जुड़ी होती है, जिसमें पेट का अम्ल भोजन नली में ऊपर आकर गले में जलन या असहजता पैदा करता है।

त्वचा भी आंतरिक स्वास्थ्य का संकेत देती है। बिना कारण खुजली होना कई बार पोषण की कमी या तंत्रिका तंत्र की समस्या का संकेत हो सकता है, विशेषकर विटामिन B12 की कमी, जो तंत्रिका कार्य

को प्रभावित कर त्वचा में असामान्य संवेदनाएँ उत्पन्न कर सकती है।

त्वचा में झुनझुनी या सुई चुभने जैसा अनुभव पेरेस्थीसिया (Paresthesia) कहलाता है, जो तंत्रिका पर अस्थायी दबाव या संकेतों के बाधित होने से उत्पन्न होता है। लंबे समय तक एक ही मुद्रा में बैठना, रक्त परिसंचरण में कमी, विटामिन की कमी या मधुमेह से जुड़ी तंत्रिका क्षति इसके कारण हो सकते हैं। यह स्थिति अक्सर अस्थायी होती है, लेकिन लंबे समय तक बनी रहने पर चिकित्सकीय जाँच आवश्यक होती है।

इन सभी उदाहरणों से स्पष्ट है कि मानव शरीर निरंतर जैविक संकेतों के माध्यम से संवाद करता रहता है, जिनके पीछे ठोस वैज्ञानिक कारण होते हैं। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में निवारक स्वास्थ्य देखभाल की अवधारणा इसी समझ पर आधारित है कि यदि इन संकेतों को समय रहते समझा जाए और उचित परामर्श लिया जाए, तो कई गंभीर रोगों को प्रारंभिक अवस्था में ही नियंत्रित किया जा सकता है।

स्वास्थ्य केवल रोग की अनुपस्थिति नहीं, बल्कि शरीर, मन और जैविक संतुलन की समन्वित अवस्था है। मानव शरीर एक संवेदनशील जैविक प्रणाली है, जो निरंतर अपने भीतर और वातावरण के अनुसार प्रतिक्रिया करता है।

इन संकेतों की अनदेखी करने पर छोटी समस्याएँ गंभीर रूप ले सकती हैं, जबकि उन्हें समय रहते समझकर रोगों की पहचान और रोकथाम संभव है। यह समझ ही आधुनिक स्वास्थ्य विज्ञान की मूल भावना है, जो व्यक्ति को अपने शरीर के प्रति अधिक जागरूक और जिम्मेदार बनाती है।

नाड़ी का सनातन विज्ञान: कलाई के स्पंदन में समग्र चिकित्सा का दर्शन

डॉ. रामानुज पाठक

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने जहाँ ईसीजी, अल्ट्रासाउंड और एमआरआई जैसी तकनीकों से शरीर को भीतर से समझना सीखा, वहीं भारतीय आयुर्वेद परंपरा ने सहस्राब्दियों पहले ही शरीर को अनुभव और निरीक्षण के आधार पर समझने की सूक्ष्म पद्धति विकसित कर ली थी। चरक संहिता, सुश्रुत संहिता और अष्टांग हृदयम् जैसे ग्रंथों में इसका शास्त्रीय आधार मिलता है, जिनमें नाड़ी परीक्षा प्रमुख है।

नाड़ी केवल धड़कन नहीं, बल्कि जीवन की लय मानी गई है। आयुर्वेद के अनुसार शरीर पंचमहाभूतों से बना है और इनके संतुलन से वात, पित्त और कफ दोष बनते हैं। संतुलन में स्वास्थ्य और असंतुलन में रोग उत्पन्न होता है। नाड़ी परीक्षा में चिकित्सक कलाई की धमनियों पर उंगलियाँ रखकर इन दोषों की स्थिति का अनुभव करता है।

वात नाड़ी को सर्प गति जैसी तेज, हल्की और अनियमित बताया गया है, जो आधुनिक दृष्टि से तंत्रिका तंत्र और शरीर की गति-प्रतिक्रियाओं से जुड़ी मानी जा सकती है। संतुलन में यह रचनात्मकता देता है, जबकि असंतुलन में चिंता, अनिद्रा और दर्द जैसे लक्षण उत्पन्न कर सकता है।

पित्त नाड़ी मेंढक की तरह उछलती हुई—गर्म, तीव्र और लयबद्ध मानी जाती है। यह अग्नि तत्व का प्रतिनिधित्व करती है और पाचन, उपापचय व जैव-रासायनिक प्रक्रियाओं से जुड़ी है, जिसे आधुनिक रूप में एंजाइम क्रियाओं, हार्मोनल संतुलन और शरीर के ताप नियमन से जोड़ा जा सकता है। संतुलित पित्त बुद्धि और ऊर्जा देता है, जबकि असंतुलन में अम्लता, चिड़चिड़ापन और सूजन जैसे लक्षण हो सकते हैं।

कफ नाड़ी हंस जैसी धीमी, गहरी और स्थिर मानी जाती है। यह संरचना, स्निग्धता और प्रतिरक्षा से संबंधित है, जिसे कोशिकीय निर्माण, द्रव संतुलन और इम्यून सिस्टम की प्रक्रियाओं से जोड़ा जा सकता है। संतुलित कफ स्थिरता देता है, जबकि असंतुलन से सुस्ती, अवसाद और वजन बढ़ने जैसी समस्याएँ हो सकती हैं।

नाड़ी परीक्षा की वैज्ञानिक संभावनाएँ आज फिर चर्चा में हैं। आधुनिक चिकित्सा में हार्ट रेट वेरिएबिलिटी (HRV) को तनाव, स्वायत्त तंत्रिका संतुलन और हृदय स्वास्थ्य का महत्वपूर्ण संकेतक माना जाता है, जो धड़कनों के सूक्ष्म अंतर से शरीर की आंतरिक स्थिति को दर्शाता है। इसी प्रकार, आयुर्वेदिक नाड़ी विज्ञान भी इन सूक्ष्म परिवर्तनों को

समझने की एक पारंपरिक विधि है, यद्यपि उसकी व्याख्या दार्शनिक आधार पर की जाती है।

हालाँकि, नाड़ी परीक्षा को वैज्ञानिक मानकों पर अधिक नियंत्रित, व्यापक और पुनरुत्पादनीय शोध की आवश्यकता है, क्योंकि चिकित्सकों की व्यक्तिगत अनुभूति में भिन्नता इसकी वस्तुनिष्ठता को प्रभावित कर सकती है।

फिर भी, चिकित्सा विज्ञान का बड़ा हिस्सा प्रारंभ में अनुभवजन्य अवलोकनों पर आधारित रहा है, जिन्हें बाद में प्रयोगशाला अनुसंधान और तकनीकी प्रमाणों से पुष्ट किया गया।

नाड़ी परीक्षा का एक महत्वपूर्ण मानवीय पक्ष भी है। इसमें चिकित्सक केवल शरीर को नहीं, बल्कि जीवन-लय को स्पर्श करता है, जिससे रोगी स्वयं को केवल एक "केस" नहीं, बल्कि एक जीवित व्यक्ति के रूप में अनुभव करता है। आधुनिक चिकित्सा में जहाँ कभी-कभी तकनीक और रिपोर्टें दूरी पैदा कर देती हैं, वहीं नाड़ी परीक्षा स्पर्श और संवाद के माध्यम से चिकित्सा के मानवीय आयाम को पुनः सामने लाती है।

यह पद्धति रोग को केवल बाहरी लक्षणों से नहीं, बल्कि उसके मूल कारण—दोषों के असंतुलन—को समझने का प्रयास करती है। आयुर्वेद का लक्ष्य केवल रोग उपचार नहीं, बल्कि "स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणम्" अर्थात स्वास्थ्य की रक्षा भी है। इस दृष्टि से नाड़ी परीक्षा को एक पूर्व-चेतावनी प्रणाली के रूप में देखा जा सकता है, यदि इसे वैज्ञानिक और प्रशिक्षित ढंग से अपनाया जाए।

आज आवश्यकता इस बात की है कि आयुर्वेदिक नाड़ी विज्ञान और आधुनिक बायोमेडिकल अनुसंधान के बीच सार्थक संवाद स्थापित हो। यदि नाड़ी संकेतों को डिजिटल सेंसर, बायोफीडबैक उपकरणों और एल्गोरिदमिक विश्लेषण से जोड़ा जाए, तो दोष-आधारित पैटर्न को मापनीय जैव-चिह्नकों (biomarkers) में बदला जा सकता है। इससे परंपरागत ज्ञान और आधुनिक विज्ञान के बीच प्रभावी समन्वय संभव हो सकता है।

अंधविश्वास और अंधअस्वीकृति—दोनों ही ज्ञान के विकास में बाधक हैं। नाड़ी विज्ञान न तो चमत्कारी उपचार है और न ही बिना अध्ययन के पूरी तरह खारिज करने योग्य। यह सहस्राब्दियों के अनुभव पर आधारित एक परंपरागत ज्ञान-प्रणाली है, जिसे वैज्ञानिक दृष्टि से परखने की आवश्यकता है।

कलाई की सूक्ष्म धड़कन यह संकेत देती है कि जीवन केवल जैव-रासायनिक प्रक्रियाओं का योग नहीं, बल्कि शरीर, मन और चेतना की एक लय है। आयुर्वेद ने इस लय को अनुभव और अवलोकन के माध्यम से समझने का प्रयास किया है।

आज जब विश्व समग्र स्वास्थ्य की ओर बढ़ रहा है, तब नाड़ी विज्ञान की प्रासंगिकता पुनः सामने आती है। परंपरा की संवेदनशीलता और आधुनिक विज्ञान की विश्लेषणात्मकता के समन्वय से भविष्य की चिकित्सा केवल रोग पहचान तक सीमित नहीं रहेगी, बल्कि जीवन की आंतरिक लय को संतुलित करने की दिशा में भी आगे बढ़ सकती है।

मौन प्रजनन संकट की गिरफ्त में दुनिया: जीवन-चक्र पर अदृश्य आघात

डॉ. रामानुज पाठक

धरती पर जीवन का सबसे मूलभूत सत्य प्रजनन है—अर्थात अपने समान संतति उत्पन्न करने की क्षमता, जो जीवन की निरंतरता और जैव विविधता का आधार है।

आज यही प्रक्रिया एक अदृश्य चुनौती की ओर संकेत कर रही है, जिसे वैज्ञानिक 'मौन प्रजनन संकट' (Silent Fertility Crisis) कहते हैं। यह समस्या प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं देती, लेकिन धीरे-धीरे जीवन के जैविक संतुलन को प्रभावित कर रही है।

यह संकट अचानक नहीं उत्पन्न हुआ, बल्कि आधुनिक सभ्यता की उन अदृश्य प्रक्रियाओं का परिणाम है जिन्हें हम प्रगति मान बैठे हैं। औद्योगिकीकरण, रासायनिक कृषि, अत्यधिक कीटनाशक उपयोग और प्लास्टिक-आधारित जीवनशैली ने मिलकर एक ऐसा रासायनिक जाल बना दिया है, जो पूरे जीव-जगत को प्रभावित कर रहा है।

विश्व में लगभग 1.4 लाख कृत्रिम रसायनों का उपयोग होता है, जिनमें से 1000 से अधिक

एंडोक्राइन-डिसरप्टिंग केमिकल्स (EDCs) हैं। ये हार्मोन तंत्र में हस्तक्षेप कर उसकी सूक्ष्म संरचना को बाधित कर सकते हैं—कभी हार्मोन की नकल करके, तो कभी उनके संकेत रोककर।

इसके परिणामस्वरूप उपापचय, वृद्धि और प्रजनन जैसी प्राकृतिक प्रक्रियाएँ असंतुलित हो सकती हैं, जिससे दीर्घकालिक जैविक प्रभावों का जोखिम बढ़ता है।

मानव शरीर में हो रहे परिवर्तन इस संकट के स्पष्ट संकेत हैं। पिछले कुछ दशकों में पुरुषों में शुक्राणुओं की संख्या और गुणवत्ता में लगातार गिरावट दर्ज की गई है; कुछ वैश्विक अध्ययनों के अनुसार, 1970 के बाद से इसमें लगभग 50% तक कमी देखी गई है। यह केवल सांख्यिकीय तथ्य नहीं, बल्कि भविष्य से जुड़ा एक गंभीर संकेत है।

हाल के शोधों में मानव वीर्य और अंडकोष ऊतकों में माइक्रोप्लास्टिक कणों की उपस्थिति भी पाई गई है, जो दर्शाता है कि प्लास्टिक अब शरीर की जैविक संरचना तक पहुँच चुका है। ये सूक्ष्म कण शुक्राणुओं की गतिशीलता और संरचना को प्रभावित कर सकते हैं, जिससे प्रजनन क्षमता पर संभावित असर पड़ता है।

महिलाओं में भी इस संकट के प्रभाव स्पष्ट हैं—हार्मोनल असंतुलन, पीसीओएस, गर्भधारण में कठिनाई और भ्रूण के प्रारंभिक विकास में बाधाएँ तेजी से बढ़ती दिख रही हैं। अल्ट्रा-प्रोसेस्ड फूड्स, जिनमें कृत्रिम रंग, संरक्षक और रासायनिक योजक होते हैं, अंतःस्रावी तंत्र को प्रभावित कर इस समस्या को और गंभीर बना सकते हैं।

यह संकट केवल मनुष्यों तक सीमित नहीं है; प्रकृति में भी इसके संकेत मिलते हैं। उदाहरण के लिए, बढ़ते वैश्विक तापमान के कारण ग्रीन सी टर्टल (Green Sea Turtle) में तापमान-निर्भर लिंग निर्धारण प्रभावित हो रहा है, जिससे संतानों का लिंग अनुपात असंतुलित होकर भविष्य की जनसंख्या स्थिरता पर खतरा उत्पन्न हो सकता है।

इसी प्रकार, 20वीं शताब्दी में व्यापक रूप से प्रयुक्त कीटनाशक DDT ने कई पक्षी प्रजातियों को गंभीर रूप से प्रभावित किया। पेरेग्रिन फाल्कन जैसे पक्षियों में अंडों के छिलके इतने कमजोर हो गए कि वे सेने के दौरान ही टूट जाते थे, जो मानव-जनित रासायनिक हस्तक्षेप से उत्पन्न व्यापक पारिस्थितिक असंतुलन का स्पष्ट उदाहरण है।

जल-जीवों में भी स्थिति चिंताजनक है। कई मछलियों और घोंघों में इंटरसेक्स जैसी असामान्यताएँ देखी गई हैं, जो जल में मौजूद एंडोक्राइन-डिसरप्टिंग केमिकल्स (EDCs) के प्रभाव से जुड़ी मानी जाती हैं। यह केवल व्यक्तिगत जीवों को नहीं, बल्कि दीर्घकाल में पूरी आबादी की प्रजनन क्षमता और स्थिरता को प्रभावित कर सकता है।

इसके साथ ही जलवायु परिवर्तन इस संकट को और जटिल बना रहा है। बढ़ता तापमान न केवल आवासों को बदल रहा है, बल्कि रसायनों की सक्रियता और विषाक्तता को भी बढ़ा सकता है, जिससे उनके जैविक प्रभाव अधिक गंभीर और अप्रत्याशित हो जाते हैं।

विश्व के अनेक देशों में घटती जन्मदर और बढ़ती बांझपन की समस्या यह संकेत देती है कि 'मौन प्रजनन संकट' केवल जैविक या पर्यावरणीय नहीं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और जनसांख्यिकीय चुनौती भी बन चुका है। यूरोप, जापान और दक्षिण कोरिया जैसे देशों में जन्मदर प्रतिस्थापन स्तर (2.1) से नीचे पहुँच चुकी है, जबकि भारत के शहरी क्षेत्रों में भी बांझपन के मामले लगातार बढ़ रहे हैं। अनेक अध्ययनों के अनुसार, महानगरों में लगभग हर छठा दंपत्ति किसी न किसी प्रजनन समस्या का सामना कर रहा है। इसके पीछे पर्यावरणीय प्रदूषण, जीवनशैली में बदलाव और प्रजनन क्षमता में संभावित गिरावट जैसे कारक भूमिका निभाते हैं।

इस संकट का एक महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक पक्ष भी है। संतान प्राप्ति में कठिनाई व्यक्ति के आत्मसम्मान, दांपत्य संबंधों और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकती है, जिससे अवसाद, चिंता और सामाजिक अलगाव जैसी समस्याएँ जन्म लेती हैं। विशेषकर भारतीय समाज में, जहाँ मातृत्व और पितृत्व को सामाजिक पहचान तथा पारिवारिक पूर्णता से जोड़ा जाता है, यह चुनौती और अधिक संवेदनशील एवं जटिल बन जाती है।

विज्ञान ने इस चुनौती से निपटने के लिए IVF, सरोगेसी और अन्य सहायक प्रजनन तकनीकों का

विकास किया है, किंतु ये उपाय महंगे, सीमित पहुँच वाले तथा कई नैतिक और सामाजिक प्रश्नों से जुड़े हैं। ये मूल कारणों को समाप्त करने के बजाय उनके परिणामों का प्रबंधन करते हैं। इसलिए यदि पर्यावरणीय प्रदूषण, अस्वस्थ जीवनशैली और हानिकारक रसायनों के प्रभावों को नियंत्रित नहीं किया गया, तो भविष्य में इन तकनीकों पर निर्भरता और बढ़ सकती है।

यह संकट सभी वर्गों को समान रूप से प्रभावित नहीं करता। गरीब और हाशिए पर रहने वाले समुदाय, जो प्रदूषित वातावरण, असुरक्षित जल स्रोतों और निम्न गुणवत्ता वाले भोजन के अधिक संपर्क में रहते हैं, इसके दुष्प्रभावों का अपेक्षाकृत अधिक सामना करते हैं। इस प्रकार 'मौन प्रजनन संकट' केवल स्वास्थ्य संबंधी नहीं, बल्कि पर्यावरणीय और सामाजिक न्याय का भी एक गंभीर प्रश्न बनता जा रहा है।

यदि इस प्रवृत्ति पर समय रहते नियंत्रण नहीं किया गया, तो आने वाले दशकों में कम जन्मदर, वृद्ध होती आबादी, श्रमशक्ति में कमी और आर्थिक विकास की मंदी जैसी चुनौतियाँ गंभीर रूप ले सकती हैं। यह केवल व्यक्तिगत या पारिवारिक समस्या नहीं, बल्कि वैश्विक स्थिरता और सतत विकास से जुड़ा प्रश्न है।

यह एक प्रकार की 'साइलेंट पैंडेमिक' है—ऐसा संकट जो बिना शोर के धीरे-धीरे मानव समाज को प्रभावित कर रहा है और जिसकी जड़ें मानव की मूल जैविक क्षमता, अर्थात् प्रजनन, से जुड़ी हैं।

इससे निपटने के लिए सबसे पहले व्यापक जागरूकता आवश्यक है। सरकारों को एंडोक्राइन-डिसरप्टिंग रसायनों सहित हानिकारक रासायनिक पदार्थों पर कड़ा नियंत्रण लागू करना होगा, जबकि उद्योगों को सुरक्षित और पर्यावरण-अनुकूल विकल्प अपनाने होंगे। साथ ही, जैविक खेती को बढ़ावा देना, प्लास्टिक का उपयोग कम करना और स्वच्छ ऊर्जा स्रोतों को अपनाना भी महत्वपूर्ण कदम हैं।

व्यक्तिगत स्तर पर संतुलित आहार, कम-प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों का सेवन, नियमित व्यायाम और पर्यावरण के प्रति जिम्मेदार व्यवहार इस दिशा में सकारात्मक योगदान दे सकते हैं। अंततः, यह केवल स्वास्थ्य का नहीं, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के भविष्य और मानव सभ्यता की दीर्घकालिक स्थिरता का प्रश्न है।

इस चुनौती से निपटने में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। नए शोध, उन्नत परीक्षण तकनीकें और सुरक्षित रासायनिक विकल्प इस संकट को समझने तथा इसके प्रभावों को कम करने में सहायक हो सकते हैं। चूँकि यह समस्या वैश्विक है, इसलिए इसके समाधान के लिए अंतरराष्ट्रीय सहयोग और समन्वित नीतियाँ भी आवश्यक हैं।

'मौन प्रजनन संकट' केवल वैज्ञानिक या पर्यावरणीय मुद्दा नहीं, बल्कि एक गहरा नैतिक और अस्तित्वगत प्रश्न है। यह हमें सोचने पर विवश करता है कि क्या विकास की कीमत इतनी अधिक हो सकती है कि वह जीवन की निरंतरता को ही चुनौती देने लगे।

यह संकट विकास और विनाश के बीच की उस सूक्ष्म रेखा की याद दिलाता है, जिसे पहचानना आज पहले से अधिक आवश्यक है। समय की मांग है कि विज्ञान, नीति और मानवीय संवेदना साथ मिलकर ऐसे समाधान खोजें, जो आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित भविष्य सुनिश्चित कर सकें। क्योंकि यदि जीवन की मूल धारा ही बाधित हो जाए, तो प्रगति का सारा शोर अंततः मौन में बदल सकता है।

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, मुंबई हिन्दी में त्रैमासिक पत्रिका 'वैज्ञानिक' का प्रकाशन, पिछले 58 वर्षों से अनवरत करती आ रही है. गत 5 वर्षों से पत्रिका का प्रकाशन सिर्फ ऑनलाइन किया जा रहा है. वैज्ञानिक पत्रिका में विज्ञापनों के प्रकाशन के लिये दरें -

अंतिम पिछला पेज (रंगीन)	रु 20,000
प्रथम पृष्ठ अंदर का पेज (रंगीन)	रु 20,000
अंदर का पूरा पेज (रंगीन)	रु 10,000
अंदर का आधा पेज (रंगीन)	रु 5,000

संपर्क :

श्री शैलेन्द्र कुमार सिंह
sksingh_barc@rediffmail.com

डॉ. पीयूष गोयल
peyushgoyal@gmail.com

पीएसआर तकनीक का चमत्कार

डॉ. इरफ़ान ह्यूमन

एसोसिएट प्रोफ़ेसर, निदेशक, अर्थियन सोसाइटी, 67 अन्टा, शाहजहाँपुर–242 001

इज़राइल की हदास की एक भावुक और चमत्कारी **घटना!** भावुक इसलिए कि उसने अपने मृत प्रेमी से बच्चा पैदा करने का दृढ़ संकल्प लिया और चमत्कारी इसलिए कि विज्ञान ने हदास की इच्छा को साकार कर दिया।

हदास और नेतनेल मंगेतर थे। वे बच्चा पैदा करने की योजना बना रहे थे। नेतनेल की मौत की ख़बर सुनते ही हदास का पहला ख़्याल यही था, "मैं उसका बच्चा चाहती हूं।" हदास डॉक्टर होने के नाते पीएसआर के बारे में जानती थी। उसने नेतनेल की मौत के 20–30 मिनट में ही पीएसआर प्रक्रिया शुरू करवाई। चूंकि शादी नहीं हुई थी, इसलिए जेरूसलम की फैमिली कोर्ट में याचिका दायर करनी पड़ी। कोर्ट ने उन्हें कॉमन–लॉ पार्टनर मान लिया और स्पर्म इस्तेमाल की इजाज़त दी। आईवीएफ उसी मेडिकल सेंटर में हुआ, जहां हदास काम करती है।

इज़राइल में 35 वर्षीय बाल रोग विशेषज्ञ डॉ. हदास लेवी ने 11 जून, 2025 को एक स्वस्थ पुत्र को जन्म दिया, जो पूरी दुनिया में चर्चा का विषय बन गया। बच्चे के पिता 33 वर्षीय कैप्टन (रिजर्व) नेतनेल सिल्बर्ग थे, जिनकी मौत 18 दिसंबर, 2023 को गाजा में हमास के खिलाफ लड़ाई में हो गई थी। यह एक ऐसा रोचक केस है जिसमें इज़राइल में युद्ध में मारे गए व्यक्ति के शुक्राणु से उसकी मंगेतर ने बच्चा पैदा किया। इस तकनीक का नाम है पीएसआर यानी पोस्टमॉर्टम स्पर्म रिट्रीवल।

मृत में जीवन की तलाश

पीएसआर यानी पोस्टमॉर्टम स्पर्म रिट्रीवल एक ऐसी तकनीक है, जिसमें मौत के कुछ घंटों के अंदर (आदर्श रूप से 24 घंटे के भीतर) मृतक पुरूष के वृषण (टेस्टिस) से शुक्राणु निकाले जाते हैं। ज्ञात रहे, मौत के बाद भी पुरुष के शरीर में शुक्राणु 24–36 घंटे (कभी–कभी 72 घंटे तक) तक जीवित रह सकते हैं। इसके लिए टेस्टिकुलर बायोप्सी या पर्क्यूटेनियस एपिडिडाइमल स्पर्म एस्पिरेशन (पीईएसए) के तहत सुई से छोटे–छोटे सैंपल लिए जाते हैं। फिर उनका प्रयोगशाला में सूक्ष्मदर्शी के नीचे परीक्षण किया जाता है कि शुक्राणु जिंदा और **गतिमान हैं** या नहीं। अगर शुक्राणु जिंदा मिल जाते हैं, तो उन्हें फ्रीज करके लिक्विड नाइट्रोजन में स्टोर कर लिया जाता है। बाद में आईवीएफ (इन विट्रो फर्टिलाइजेशन) के ज़रिए महिला के अंडे से गर्भाधान कराया जाता है।

हदास के केस में उनके मंगेतर नेतनेल की मौत के बाद शुक्राणु निकाले गए। शुरू में स्पर्म नॉन–मोटाइल (**यानी गतिमान नहीं**) थे, लेकिन लैब में 9 जिंदा शुक्राणु मिले। इन्हें फ्रीज किया गया। फिर आईवीएफ से हदास का गर्भाधान हुआ। हदास ने कहा था कि डॉक्टरों ने भी सफलता की गारंटी नहीं दी थी, लेकिन वह विश्वास रखती थी कि यह हो जाएगा।

स्पर्म रिट्रीवल प्रक्रिया

स्पर्म रिट्रीवल प्रक्रिया मुख्य रूप से उन पुरुषों में इस्तेमाल होती है जिनमें वीर्य में शुक्राणु नहीं **होते** (एज़ूस्पर्मिया) या पोस्टमॉर्टम स्पर्म रिट्रीवल (पीएसआर) में, यानी मौत के बाद शुक्राणु निकालने के लिए **उपलब्ध नहीं होते**। यह एक छोटी सर्जिकल या नीडल–बेस्ड प्रक्रिया है, जो

यूरोलॉजिस्ट या एंड्रोलॉजिस्ट करते हैं। पीएसआर में सबसे महत्वपूर्ण बात समय है कि इसे मौत के 24 घंटे के अंदर (अधिकतम 36–48 घंटे तक) करना पड़ता है, क्योंकि उसके बाद शुक्राणु मर जाते हैं।

1. पीईएसए तकनीक

पीईएसए (पार्क्यूटेनियस एपिडिडाइमल स्पर्म एस्पिरेशन) सबसे आसान और अल्प व्यापक है। इस तकनीक में स्क्रोटम की त्वचा के बाहर से ही एक पतली सुई एपिडिडाइमिस (शुक्राणु संग्रह करने वाली नली) में घुसाई जाती है और सिरिंज से चूसकर फ्लूइड निकाला जाता है। लोकल एनेस्थीसिया में 10–15 मिनट लगते हैं। पोस्टमॉर्टम में भी इसी का इस्तेमाल होता है।

2. टीईएसए तकनीक

टीईएसए (टेस्टीकुलर स्पर्म एस्पिरेशन) तकनीक में सीधे टेस्टिस में सुई घुसाकर छोटे–छोटे टिश्यू के टुकड़े निकाले जाते हैं। यह पीईएसए से थोड़ा ज़्यादा इनवेसिव है, लेकिन फिर भी नीडल से ही होता है।

3. टीईएसई तकनीक

टीईएसई (टेस्टीकुलर स्पर्म एक्सट्रेक्रेशन) सबसे आम पोस्टमॉर्टम है, जिसमें एक छोटी सर्जरी होती है। स्क्रोटम पर 1–2 सेंटीमीटर का चीरा लगाकर टेस्टिस का टुकड़ा निकाला जाता है। तत्पश्चात माइक्रोस्कोप में शुक्राणु ढूंढे जाते हैं। अगर बहुत कम स्पर्म हों तो यह बेहतर तरीका है।

4. ईबीआर तकनीक

ईबीआर (अन ब्लाक रिसेक्शन) पोस्टमॉर्टम एक विशेष तरीका है। इसमें कुछ केस में पूरा टेस्टिस + एपिडिडाइमिस + वास डिफरेंस का 5 सेंटीमीटर हिस्सा ब्लॉक में निकाल लिया जाता है। फिर लैब में 'मिल्किंग' करके जितना हो सके शुक्राणु निकाले जाते हैं। यह तरीका ज्यादा शुक्राणु दे सकता है।

उत्तरोत्तर प्रक्रिया

1. मौत की पुष्टि (ब्रेन डेड या कार्डियक डेथ) होने पर परिवार की सहमति और कोर्ट ऑर्डर (अगर जरूरी तो) लिया जाता है।

2. शरीर को ठंडे कमरे/ आइस पैक में रखा जाता है।

3. यूरोलॉजिस्ट रोगाणुमुक्त वातावरण में ऑपरेशन थिएटर में यह प्रक्रिया करते हैं।

4. शुक्राणु निकालकर तुरंत प्रयोगशाला भेजते हैं।

5. एंड्रोलॉजिस्ट माइक्रोस्कोप में देखते हैं कि शुक्राणु जिंदा हैं, चल रहे हैं या नहीं।

6. अगर शुक्राणु जिंदा मिल जाते हैं तो क्रायोप्रिजर्वेशन (लिक्विड नाइट्रोजन में फ्रीज) करके सालों तक सुरक्षित रखे जा सकते हैं।

7. बाद में आईवीएफ (इन विट्रो फर्टिलाइज़ेशन) और आईसीएसआई (इंट्रा साइटोप्लाज़्मिक स्पर्म इंजेक्शन) में इस्तेमाल होते हैं।

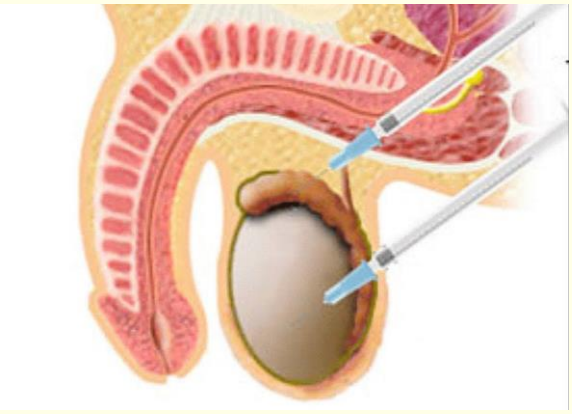

खोज और पहला सफल मामला

प्राचीन समय में पीएसआर यानी पोस्टमॉर्टम स्पर्म रिट्रीवल के लिए केवल स्पर्म बैंक में पहले से फ्रीज किए गए शुक्राणु ही उपलब्ध होते थे। उस समय किसी मृत शरीर से ताज़ा शुक्राणु निकालने की कोई तकनीक मौजूद नहीं थी। 1970 के दशक में डॉ. कैपी रोथमैन पहले से ही इनफर्टिलिटी के मरीजों से शुक्राणु निकालने का कार्य कर रहे थे, जिसके कारण उन्हें पुरुष प्रजनन तंत्र की गहन समझ हो चुकी थी।

पीएसआर की शुरुआत 1980 में हुई। इसे पहली बार लॉस एंजिल्स के यूरोलॉजिस्ट डॉ. कैपी रोथमैन ने सफलतापूर्वक किया। उस समय एक 30 वर्षीय युवक कार दुर्घटना में मस्तिष्क मृत्यु का शिकार हो गया था। उसके परिवार ने डॉ. रोथमैन से संपर्क किया और पूछा कि क्या मृतक के शुक्राणु को संरक्षित किया जा सकता है। उस समय इस विषय पर कोई शोध या स्थापित दिशानिर्देश उपलब्ध नहीं थे। डॉ. रोथमैन ने सोचा कि वे परिवार की मदद करना चाहते हैं

और उनकी जिज्ञासा भी जागृत हुई कि क्या यह संभव है। उनके सामने तीन मुख्य विकल्प थे–

1. दवाएँ देकर शरीर में संवेदनशील ऐंठन (कंवल्शंस) पैदा करके स्खलन (एजाक्युलेशन) करवाना।

2. प्रजनन अंगों (रिप्रोडेक्टिव ऑगर्न्स) को निकालकर शुक्राणु खोजना।

3. हस्त उत्तेजना (मैन्यूअल स्टिमुलेशन)।

हालाँकि, न्यूरोसर्जरी रेजिडेंट ने मैनुअल स्टिमुलेशन को स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया। अंततः सर्जिकल विधि चुनी गई। मृतक के वृषण (टेस्टिस) और महावृषण (एपिडिडाइमिस) को शल्य चिकित्सा द्वारा निकाला गया। फिर प्रयोगशाला में ऊतकों से शुक्राणु अलग किए गए। माइक्रोस्कोप में परीक्षण करने पर जीवित और गतिशील शुक्राणु प्राप्त हुए। बाद में डॉ. रोथमैन ने इस अनुभव के बारे में कहा था, "ऑपरेशन थिएटर में मैं अकेला था। मुझे ऐसा महसूस हुआ जैसे माइकलएंजेलो कोई मूर्ति गढ़ रहा हो। यह मेरे लिए एक बड़ी शिक्षा थी।" यह मामला 1980 में फर्टिलिटी एंड स्टेरिलिटी जर्नल में प्रकाशित हुआ, जिसका शीर्षक था 'ए मैथड फॉर ऑब्टेनिंग वायबल स्पर्म इन द पोस्टमॉर्टम स्टेट''।

हमास अटैक और गाजा युद्ध के बाद वहां पीएसआर की मांग बहुत बढ़ गई। अब तक ज़्यादातर माता–पिता की मांग पर 250 से ज्यादा सैनिकों/नागरिकों के शुक्राणु निकाले जा चुके हैं। इज़राइल में स्वास्थ्य मंत्रालय ने अस्थायी नियम बनाए कि माता–पिता बिना कोर्ट के भी अनुमति दे सकते हैं। आईडीएफ (इज़राइल डिफेंस फोर्स) खुद परिवारों को सूचित करता है और जल्दी से प्रक्रिया करवाता है, क्योंकि समय बहुत कम होता है।

कुल मिलाकर, पीएसआर में सहमति, मृतक की इच्छा, बच्चे का भविष्य और शरीर की गरिमा जैसे मुद्दे सबसे विवादास्पद हैं। इज़राइल जैसे देशों में सांस्कृतिक–धार्मिक मूल्य (वंश की निरंतरता) ने कानून को उदार बनाया, जबकि यूरोप के कई देशों में नैतिक–धार्मिक आपत्ति ने प्रतिबंध लगा दिया।

कानूनी–नैतिक का सवाल

क्या मृत व्यक्ति की सहमति ज़रूरी है? इसका उत्तर ढूंढने के लिए विश्व के कई देशों पर नज़र डालनी पड़ेगी। पीएसआर यानी पोस्टमॉर्टम स्पर्म रिट्रीवल प्रक्रिया कई देशों (फ्रांस, जर्मनी, स्वीडन, हंगरी, स्लोवेनिया, ताइवान, कनाडा आदि) में प्रतिबंधित है। यहां पूर्व लिखित सहमति होने पर भी पीएसआर मना है। इज़राइल में इसे 'जिंदगी का सम्मान' और 'वंश जारी रखना' माना जाता है, ख़ासकर युद्ध के समय। लेकिन कुछ विशेषज्ञ कहते हैं कि शोक में फैसले लेना ग़लत हो सकता है। कुल मिलाकर, पीएसआर में सहमति, मृतक की इच्छा, बच्चे का भविष्य और शरीर की गरिमा जैसे मुद्दे विवादास्पद हैं।

हदास के साथ जो हुआ

हदास के केस में उसके मंगेतर नेतनेल की मौत के बाद शुक्राणु निकाले गए। शुरू में शुक्राणु नॉन–मोटाइल (नहीं चल रहे) थे, लेकिन लैब में 9 जिंदा शुक्राणु मिले। इन्हें फ्रीज किया गया। फिर आईवीएफ तकनीक से गर्भाधान की प्रक्रिया सम्पन्न हुई। हदास ने कहा था कि डॉक्टरों ने भी सफलता की गारंटी नहीं दी थी, लेकिन वह विश्वास रखती थीं कि यह हो जाएगा।

हदास के अनुसार, "यह बच्चा मेरी दुश्मन को जवाब है। उन्होंने हमारी वंशावली खत्म करने की कोशिश की, लेकिन मैंने ऐसा नहीं होने दिया। अब सुबह उठकर मुझे खुशी महसूस होती है।"

महत्वपूर्ण बातें

पीएसआर यानी पोस्टमॉर्टम स्पर्म रिट्रीवल में सफलता दर बहुत ऊंची होती है, अगर 24 घंटे के अंदर यह प्रक्रिया कर ली जाए यानी 80–90 प्रतिशत में मोटाइल शुक्राणु मिल जाते हैं। यह प्रक्रिया में मृत व्यक्ति के शरीर और शक्ल–सूरत पर असर नहीं पड़ता। बाद में सिर्फ आईवीएफ और आईसीएसआई ही इस्तेमाल होता है, क्योंकि ऊतक (टिश्यू) मिश्रित होता है। यह प्रक्रिया विज्ञान और इंसानी भावनाओं का अनोखा मेल है, जो मौत के बाद भी जीवन की उम्मीद जगाती है।

यह **घटना** दुख, प्यार, विज्ञान और दृढ़ संकल्प की मिसाल है। हदास के लिए यह बच्चा सिर्फ उसका बेटा नहीं, बल्कि नेतनेल की याद और उनके सपनों का जीवंत रूप है।

डिजिटल भविष्य की देहरी पर भारत

डॉ. दीपक कोहली

विशेष सचिव, उत्तर प्रदेश सचिवालय, 5 /104, विपुल खंड, गोमती नगर, लखनऊ

भारत में 5G का विस्तार केवल दूरसंचार तकनीक का उन्नयन नहीं, बल्कि आर्थिक, सामाजिक और प्रशासनिक परिवर्तन की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। उच्च डेटा गति, न्यूनतम विलंबता और व्यापक कनेक्टिविटी के कारण 5G संचार को सूचना विनिमय से आगे बढ़ाकर उत्पादन, सेवाओं और सुशासन का आधार बना रहा है। यही कारण है कि इसे भारत के डिजिटल भविष्य की आधारशिला माना जाता है।

हालाँकि, 5G अंतिम लक्ष्य नहीं है। विश्व अब 6G जैसी अगली पीढ़ी की संचार तकनीकों की ओर अग्रसर है। ऐसे में भारत के सामने यह महत्वपूर्ण प्रश्न है कि वह इस तकनीकी परिवर्तन का केवल उपभोक्ता बनेगा या इसके विकास और नेतृत्व में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

5G ने भारत के डिजिटल परिवर्तन को नई गति दी है। कृषि क्षेत्र में ड्रोन, सेंसर, उपग्रह निगरानी और वास्तविक समय मौसम डेटा के उपयोग से सटीक खेती को बढ़ावा मिला है, जिससे उत्पादन बढ़ने के साथ जल, उर्वरक और कीटनाशकों का अधिक कुशल उपयोग संभव हुआ है।

स्वास्थ्य सेवाओं में भी 5G ने दूरियों की बाधा कम कर दी है। टेलीमेडिसिन, रिमोट डायग्नोस्टिक्स और डिजिटल स्वास्थ्य रिकॉर्ड के माध्यम से विशेषज्ञ चिकित्सा सेवाएँ अब ग्रामीण और दूरस्थ क्षेत्रों तक अधिक प्रभावी ढंग से पहुँच रही हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में ऑनलाइन शिक्षण, वर्चुअल प्रयोगशालाएँ और डिजिटल कक्षाएँ सीखने को अधिक सुलभ और प्रभावी बना रही हैं। वहीं उद्योगों में स्मार्ट मैन्युफैक्चरिंग, स्वचालित लॉजिस्टिक्स और डेटा-आधारित प्रणालियाँ उत्पादन दक्षता तथा प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ा रही हैं। इस प्रकार 5G भारत की डिजिटल और समावेशी अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण आधार बन चुका है।

हालाँकि, तकनीकी विकास की यह यात्रा 5G पर समाप्त नहीं होती। 6G को केवल अगली पीढ़ी की संचार तकनीक नहीं, बल्कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता-आधारित डिजिटल पारिस्थितिक तंत्र के रूप में देखा जा रहा है। इसमें नेटवर्क केवल डेटा संचार का माध्यम नहीं रहेगा, बल्कि परिस्थितियों के अनुसार स्वयं निर्णय लेने, संसाधनों का अनुकूलन करने और कार्यप्रणाली को स्वतः संचालित करने में भी सक्षम होगा।

6G की संभावनाओं में होलोग्राफिक संचार, अत्यंत यथार्थपरक आभासी अनुभव, स्वायत्त परिवहन और उन्नत रोबोटिक्स प्रमुख हैं। इसके माध्यम से शिक्षा में शिक्षक और विद्यार्थी साझा आभासी वातावरण में वास्तविक समय में जुड़ सकेंगे, जबकि चिकित्सा क्षेत्र में रिमोट सर्जरी और उच्च-सटीकता वाले रोबोटिक उपचार संभव हो सकते हैं। परिवहन और शहरी प्रबंधन में भी स्वायत्त प्रणालियाँ सुरक्षा, दक्षता और स्थिरता को बढ़ावा देंगी। इस प्रकार 6G केवल तेज़ संचार तकनीक नहीं, बल्कि मानव और मशीनों के संबंधों को नए सिरे से परिभाषित करने वाली परिवर्तनकारी शक्ति बन सकता है।

इसी दृष्टि से भारत ने 'भारत 6G विज़न' प्रस्तुत किया है, जिसका उद्देश्य देश को केवल प्रौद्योगिकी उपभोक्ता नहीं, बल्कि 6G विकास और वैश्विक मानकीकरण में अग्रणी भागीदार बनाना है। इसके केंद्र में स्वदेशी अनुसंधान, बौद्धिक संपदा सृजन और एक सशक्त नवाचार पारिस्थितिक तंत्र का निर्माण है।

भारत 6G विज़न के तहत विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों और उद्योगों के बीच सहयोग को बढ़ावा देकर दीर्घकालिक तकनीकी क्षमता विकसित करने पर विशेष जोर दिया जा रहा है। यह दृष्टिकोण आत्मनिर्भर भारत की उस परिकल्पना से जुड़ा है, जिसमें देश केवल तकनीक का उपभोक्ता नहीं,

बल्कि ज्ञान, नवाचार और प्रौद्योगिकी का निर्माता बने।

हालाँकि, 5G से 6G की यात्रा कई चुनौतियों से घिरी है। नेटवर्क अवसंरचना के विकास के लिए भारी निवेश, स्पेक्ट्रम की उपलब्धता और उसकी लागत प्रमुख नीतिगत प्रश्न हैं। साथ ही, बढ़ती ऊर्जा आवश्यकताओं के कारण ऊर्जा दक्षता और पर्यावरणीय स्थिरता सुनिश्चित करना भी आवश्यक होगा। इसके अतिरिक्त, अधिक एकीकृत और बुद्धिमान नेटवर्क के साथ साइबर सुरक्षा तथा डेटा गोपनीयता की चुनौतियाँ भी पहले से अधिक महत्वपूर्ण हो जाएँगी।

तकनीकी चुनौतियों के साथ सामाजिक आयामों पर ध्यान देना भी आवश्यक है। भारत में डिजिटल विभाजन एक महत्वपूर्ण चुनौती है। यदि उन्नत संचार तकनीकें केवल शहरी और संपन्न वर्गों तक सीमित रहीं, तो वे सामाजिक असमानताओं को कम करने के बजाय बढ़ा सकती हैं। इसलिए 5G से 6G की यात्रा में यह सुनिश्चित करना होगा कि ग्रामीण क्षेत्रों, छोटे उद्यमों और वंचित समुदायों तक भी डिजिटल लाभ समान रूप से पहुँचें। समावेशी डिजिटल विकास ही इस परिवर्तन को वास्तव में सार्थक बना सकता है।

इन चुनौतियों के बावजूद भारत के पास अपार अवसर हैं। युवा तकनीक-सक्षम जनसंख्या, मजबूत आईटी उद्योग और डिजिटल पब्लिक इंफ्रास्ट्रक्चर का अनुभव देश को विशिष्ट बढ़त प्रदान करता है। आधार, यूपीआई और डिजिलॉकर जैसी पहलों ने सिद्ध किया है कि भारत बड़े पैमाने पर सुरक्षित और समावेशी डिजिटल समाधान विकसित करने में सक्षम है। यही अनुभव 6G युग में भारत को वैश्विक नवाचार केंद्र के रूप में स्थापित कर सकता है। साथ ही, स्वदेशी चिप डिज़ाइन, ओपन-स्टैंडर्ड नेटवर्क और सॉफ्टवेयर-आधारित दूरसंचार समाधान भारत की वैश्विक भूमिका को और सुदृढ़ कर सकते हैं।

अंततः, 5G से 6G की यात्रा केवल तकनीकी उन्नयन नहीं, बल्कि आर्थिक विकास, सामाजिक समावेशन और वैश्विक नेतृत्व से जुड़ी एक रणनीतिक प्रक्रिया है। यदि दूरदर्शी नीतियाँ, निरंतर अनुसंधान और नवाचार-आधारित उद्योग एक साथ आगे बढ़ते हैं, तो भारत केवल डिजिटल भविष्य का सहभागी नहीं, बल्कि उसके स्वरूप को निर्धारित करने वाला अग्रणी राष्ट्र बन सकता है।

प्राकृतिक खेती में पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक विज्ञान का समन्वय

डॉ. दीपक कोहली

भारत की कृषि परंपरा हजारों वर्षों पुरानी है, जिसमें प्रकृति के साथ संतुलन बनाए रखते हुए खेती की जाती रही है। गोबर, हरी खाद, फसल चक्र, मिश्रित खेती, वर्षा जल संचयन और जैविक कीट नियंत्रण जैसी पारंपरिक पद्धतियों ने मिट्टी की उर्वरता और पर्यावरणीय संतुलन को लंबे समय तक सुरक्षित रखा। यद्यपि हरित क्रांति ने भारत को खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाया, परंतु रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और भौमजल के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी की गुणवत्ता में गिरावट, जल प्रदूषण, जैव विविधता के क्षरण और खेती की बढ़ती लागत जैसी समस्याएँ उभरकर सामने आईं। ऐसे परिदृश्य में प्राकृतिक खेती एक टिकाऊ विकल्प के रूप में उभर रही है, जो पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक वैज्ञानिक समझ का संतुलित समन्वय प्रस्तुत करती है।

प्राकृतिक खेती का मूल सिद्धांत यह है कि प्रकृति स्वयं एक संतुलित और आत्मनिर्भर व्यवस्था है। उसकी प्रक्रियाओं के अनुरूप खेती करके कम लागत में टिकाऊ और स्वस्थ उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। भारतीय किसान सदियों से मौसम, मिट्टी, जैव विविधता और प्राकृतिक संकेतों के आधार पर कृषि निर्णय लेते रहे हैं। आज आधुनिक विज्ञान इन पारंपरिक अनुभवों के पीछे निहित वैज्ञानिक आधार को प्रमाणित कर रहा है। इसलिए प्राकृतिक खेती केवल परंपरा की ओर वापसी नहीं, बल्कि परंपरागत ज्ञान और वैज्ञानिक समझ का प्रभावी समन्वय है।

भारतीय कृषि परंपरा में गोबर और गोमूत्र का विशेष महत्व रहा है। आधुनिक शोधों से स्पष्ट हुआ है कि गोबर में लाभकारी सूक्ष्मजीव होते हैं, जो मिट्टी की जैविक सक्रियता बढ़ाते हैं, जबकि गोमूत्र में पाए जाने वाले खनिज और जैव सक्रिय तत्व पौधों की

वृद्धि तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता को समर्थन दे सकते हैं। प्राकृतिक खेती में प्रयुक्त जीवामृत और बीजामृत जैसी तैयारियाँ इन्हीं सिद्धांतों पर आधारित हैं। सूक्ष्मजीव विज्ञान के अनुसार ये मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ाकर पोषक तत्वों की उपलब्धता और मिट्टी के स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में सहायक हैं।

मिट्टी केवल खनिज कणों का मिश्रण नहीं, बल्कि एक जीवंत पारिस्थितिक तंत्र है, जिसमें अरबों सूक्ष्मजीव, फफूँद, केंचुए और अन्य जीव सक्रिय रहते हैं। पारंपरिक किसान भले ही इनके वैज्ञानिक स्वरूप से परिचित न रहे हों, लेकिन वे मिट्टी को जीवित बनाए रखने के महत्व को समझते थे। इसलिए वे जैविक पदार्थों का नियमित उपयोग करते थे। आधुनिक मृदा विज्ञान भी पुष्टि करता है कि मिट्टी की उर्वरता केवल रासायनिक पोषक तत्वों पर नहीं, बल्कि उसकी जैविक सक्रियता पर भी निर्भर करती है। जैविक पदार्थ मिट्टी की जल धारण क्षमता, पोषक तत्वों के संरक्षण और पौधों की वृद्धि को बेहतर बनाते हैं।

प्राकृतिक खेती में मल्चिंग (आच्छादन) एक महत्वपूर्ण तकनीक है। फसल अवशेषों, सूखी घास और पत्तियों से मिट्टी को ढकने से नमी संरक्षित रहती है और खरपतवारों का विकास कम होता है। वैज्ञानिक अध्ययनों के अनुसार मल्चिंग मिट्टी का तापमान संतुलित रखती है, जल वाष्पीकरण घटाती है, कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ाती है तथा लाभकारी सूक्ष्मजीवों के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करती है। इस प्रकार यह पारंपरिक तकनीक आधुनिक विज्ञान द्वारा भी प्रभावी सिद्ध हुई है।

फसल चक्र और मिश्रित खेती भारतीय कृषि की वैज्ञानिक एवं टिकाऊ पद्धतियाँ हैं। फसलों के क्रमिक परिवर्तन से मिट्टी की उर्वरता और पोषक संतुलन बना रहता है, जबकि दलहनी फसलें नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सहायक होती हैं। मिश्रित खेती कीट-रोगों तथा उत्पादन जोखिम को कम करती है। जलवायु परिवर्तन के दौर में ये पद्धतियाँ कृषि को अधिक सुरक्षित, उत्पादक और लचीला बनाती हैं।

प्राकृतिक खेती में बीज संरक्षण की परंपरा भी महत्वपूर्ण रही है। किसान अपनी सर्वोत्तम फसल से बीज सुरक्षित रखते थे, जिससे स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप विकसित किस्में संरक्षित रहती थीं। आधुनिक आनुवंशिकी विज्ञान भी स्थानीय बीजों की अनुकूलन क्षमता और जैव विविधता संरक्षण में उनकी भूमिका को स्वीकार करता है।

कीट नियंत्रण के क्षेत्र में भी पारंपरिक ज्ञान और विज्ञान का प्रभावी समन्वय दिखाई देता है। नीम, लहसुन, मिर्च और अन्य वनस्पतियों का उपयोग लंबे समय से प्राकृतिक कीट नियंत्रण के लिए किया जाता रहा है। वैज्ञानिक अध्ययनों ने सिद्ध किया है कि नीम में पाए जाने वाले यौगिक कई हानिकारक कीटों के जीवन चक्र को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार प्राकृतिक खेती रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता कम करके पर्यावरण, मिट्टी और मानव स्वास्थ्य की रक्षा करती है।

जल संरक्षण ऐसा क्षेत्र है जहाँ पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक विज्ञान का प्रभावी समन्वय देखने को मिलता है। भारत की तालाब, जोहड़, बावड़ी और कुंड जैसी पारंपरिक जल संचयन प्रणालियाँ न केवल जल संग्रहण, बल्कि भौमजल पुनर्भरण और स्थानीय पारिस्थितिक संरक्षण में भी महत्वपूर्ण रही हैं। आज रिमोट सेंसिंग, भू-स्थानिक सूचना प्रणाली और आधुनिक जल-विज्ञान तकनीकों की सहायता से इन संरचनाओं का पुनर्जीवन अधिक प्रभावी ढंग से किया जा रहा है, जिससे जल संकटग्रस्त क्षेत्रों में सकारात्मक परिणाम प्राप्त हो रहे हैं।

आधुनिक विज्ञान ने प्राकृतिक खेती की उपयोगिता को भी अनेक अध्ययनों के माध्यम से प्रमाणित किया है। शोध बताते हैं कि इससे मिट्टी में जैविक कार्बन बढ़ता है, जल धारण क्षमता सुधरती है और उत्पादन लागत कम होती है। यद्यपि प्रारंभिक चरण में उत्पादकता में कुछ उतार-चढ़ाव संभव है, परंतु दीर्घकाल में यह प्रणाली अधिक टिकाऊ, पर्यावरण-अनुकूल और आर्थिक रूप से लाभकारी सिद्ध होती है।

डिजिटल प्रौद्योगिकी प्राकृतिक खेती को नई गति प्रदान कर रही है। मोबाइल एप, मौसम पूर्वानुमान, ड्रोन निगरानी और कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित कृषि सलाह किसानों तक समय पर वैज्ञानिक जानकारी पहुँचा रही हैं। इसके माध्यम से किसान वर्षा, तापमान, कीट प्रकोप और बाजार की स्थिति जैसी

महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त कर बेहतर निर्णय ले सकते हैं, जिससे प्राकृतिक खेती अधिक वैज्ञानिक और प्रभावी बन रही है।

जलवायु परिवर्तन के दौर में प्राकृतिक खेती का महत्व और बढ़ गया है। अनियमित वर्षा, सूखा, बाढ़ और बढ़ते तापमान जैसी चुनौतियों के बीच जैविक पदार्थों से समृद्ध मिट्टी अधिक कार्बन संचित कर सकती है तथा जल धारण क्षमता बढ़ाकर फसलों को प्रतिकूल परिस्थितियों से बचाने में मदद करती है। इसी कारण प्राकृतिक खेती को एक टिकाऊ और जलवायु-अनुकूल कृषि प्रणाली के रूप में देखा जा रहा है।

पारंपरिक कृषि ज्ञान स्थानीय समुदायों के सामूहिक अनुभव पर आधारित है। किसान पीढ़ियों से अपने अनुभव साझा करते हुए स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप समाधान विकसित करते रहे हैं। आज कृषि विश्वविद्यालय और अनुसंधान संस्थान इस अनुभवजन्य ज्ञान का वैज्ञानिक अध्ययन कर रहे हैं, जिससे उपयोगी तकनीकों की पहचान के साथ किसानों के ज्ञान को भी मान्यता मिल रही है।

प्राकृतिक खेती से रासायनिक इनपुट पर निर्भरता घटती है, जिससे खेती की लागत कम होती है और छोटे किसानों को लाभ मिलता है। प्राकृतिक उत्पादों की बढ़ती मांग तथा डिजिटल विपणन माध्यम किसानों की आय के अवसरों को और बढ़ा रहे हैं।

हालाँकि, प्राकृतिक खेती के सामने प्रशिक्षण, वैज्ञानिक मार्गदर्शन, बाजार समर्थन और उत्पादकता से जुड़ी कुछ चुनौतियाँ भी हैं। इनका समाधान पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक विज्ञान के समन्वित दृष्टिकोण से ही संभव है। अनुसंधान संस्थानों, कृषि विशेषज्ञों और किसानों के बीच सहयोग इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

वास्तव में, प्राकृतिक खेती का भविष्य परंपरा और विज्ञान के रचनात्मक समन्वय में निहित है। जब किसान का अनुभव और वैज्ञानिक अनुसंधान साथ मिलते हैं, तब ऐसी कृषि प्रणाली विकसित होती है जो उत्पादक, टिकाऊ, पर्यावरण-अनुकूल और सामाजिक रूप से लाभकारी होती है।

प्राकृतिक खेती को केवल विकल्प नहीं, बल्कि टिकाऊ कृषि विकास की रणनीति के रूप में देखा जाना चाहिए। परंपरागत ज्ञान और आधुनिक विज्ञान का समन्वय मिट्टी, जल और किसानों की आय—तीनों को सुदृढ़ कर सकता है तथा आने वाली पीढ़ियों के लिए एक सुरक्षित और सतत भविष्य की नींव रखता है।

लेखकों से अनुरोध

- आप वैज्ञानिक पत्रिका में प्रकाशन के लिए विज्ञान से संबंधित शोध-आलेख, समीक्षात्मक लेख या नवीन प्रयोगात्मक निष्कर्ष किसी भी समय भेज सकते हैं।
- पत्रिका में भौतिकी, रसायन विज्ञान, जीवविज्ञान, पर्यावरण विज्ञान, अभियांत्रिकी तथा अन्य वैज्ञानिक क्षेत्रों में हो रहे नवीनतम विकास और प्रगति आधारित उच्च गुणवत्ता वाली रचनाओं का स्वागत किया जाता है।
- हम विशेष रूप से उन शोध कार्यों को प्राथमिकता देते हैं जो नवाचार, समकालीन वैज्ञानिक चुनौतियों के समाधान तथा ज्ञान-विस्तार में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करते हैं।
- रचनाएं कृपया वर्ड फाइल में किसी यूनिकोड फॉण्ट में ही भेजें।
- रचना के साथ दो पंक्तियों में अपना परिचय एवं अपना फोटो (<100 KB) भी भेजें।
- रचना के साथ रचना से संबंधित आवश्यक फोटोग्राफ एवं चित्र भेजें।
- भेजते समय यह अवश्य उल्लेख करें कि रचना मौलिक एवं अप्रकाशित है, एवं इसे अन्यत्र प्रकाशन के लिए नहीं भेजा गया है।
- रचनाएं निम्न ईमेल पर भेजें: hvsp.sachiv@gmail.com

संपादक

वैज्ञानिक की पुरानी प्रतियां यहाँ उपलब्ध हैं - https://zenodo.org/

https://zenodo.org/search?q=vaigyanik&l=list&p=2&s=10&sort=bestmatch

नवीन वलित पर्वत: दुनिया के सबसे ख़तरनाक भूभाग और नया भूकंप मानचित्र

सुनील कुमार महला

फ्रीलांस राइटर, कालमिस्ट व साहित्यकार, पिथौरागढ़, उत्तराखंड

भूकंप की दृष्टि से भारत एक अत्यंत संवेदनशील भौगोलिक क्षेत्र में स्थित है। इसी संदर्भ में, हाल ही में जारी नए राष्ट्रीय भूकंप जोन मैप में महत्वपूर्ण संशोधन किए गए हैं। इसके अनुसार, संपूर्ण हिमालयी क्षेत्र (जम्मू-कश्मीर से अरुणाचल प्रदेश तक) को पहली बार उच्चतम जोखिम श्रेणी—जोन-VI—में रखा गया है।

भूवैज्ञानिक अध्ययनों और प्लेट टेक्टॉनिक्स के अनुसार, भारतीय प्लेट यूरेशियन प्लेट की ओर लगभग 5 सेंटीमीटर प्रतिवर्ष की दर से निरंतर अग्रसर है और उससे टकरा रही है। यह सतत टकराव हिमालय क्षेत्र में अत्यधिक संपीड़न (compression), तनाव और भूकंपीय ऊर्जा के संचय का कारण बनता है, जिससे इस क्षेत्र में भूकंप और भू-स्खलन की संभावना अत्यधिक बढ़ जाती है। सरल शब्दों में कहा जाए तो हिमालय विश्व का सबसे ऊँचा और सक्रिय नवीन वलित पर्वत है तथा पृथ्वी के सबसे सक्रिय टकराव क्षेत्रों (collision zones) में से एक है।

नवीन वलित पर्वत वे पर्वत होते हैं जो टेक्टॉनिक प्लेटों के अपेक्षाकृत हाल के भूगर्भीय टकराव के परिणामस्वरूप पृथ्वी की परतों के मुड़ने (वलन) और ऊपर उठने से निर्मित होते हैं। ये पर्वत सामान्यतः ऊँचे, तीखे और अत्यधिक अस्थिर भूगर्भीय संरचना वाले होते हैं। भूगर्भीय दृष्टि से ऐसे क्षेत्र अधिक जोखिमपूर्ण माने जाते हैं, क्योंकि यहाँ प्लेटों की निरंतर गति के कारण भूकंपीय गतिविधियाँ अपेक्षाकृत अधिक होती हैं।

विशेषज्ञों का मत है कि यह नया भूकंप जोन मैप केवल एक तकनीकी दस्तावेज नहीं है, बल्कि एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय चेतावनी भी है, जो जोखिम-आधारित योजना और आपदा प्रबंधन की आवश्यकता को रेखांकित करता है। उल्लेखनीय है कि 2025 के संशोधित भूकंप डिज़ाइन कोड में सबसे बड़ा परिवर्तन यह है कि संपूर्ण हिमालयी क्षेत्र को अब ज़ोन-VI में वर्गीकृत किया गया है, जिसे सर्वाधिक भूकंप-संवेदनशील क्षेत्र माना जाता है।

गौरतलब है कि पुराने भूकंप मानचित्रों में हिमालयी क्षेत्र को जोन-IV और जोन-V में विभाजित किया गया था, लेकिन नवीन भू-वैज्ञानिक समझ के अनुसार अब यह स्पष्ट हो चुका है कि संपूर्ण हिमालयी बेल्ट अपेक्षाकृत समान रूप से उच्च भूकंपीय जोखिम वाला क्षेत्र है।

वास्तव में, नए मानचित्र में यह संकेत दिया गया है कि भूकंपीय विक्षोभ (seismic disturbances) हिमालयन फ्रंटल थ्रस्ट के दक्षिणी क्षेत्रों तक भी प्रभाव डाल सकते हैं। उत्तराखंड में मोहंड क्षेत्र के पास से प्रारंभ होने वाला यह संवेदनशील क्षेत्र अब उच्च जोखिम श्रेणी में सम्मिलित किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि गंगा के मैदानी क्षेत्रों के कुछ हिस्से भी पहले की तुलना में अधिक भूकंपीय जोखिम के दायरे में आ सकते हैं।

पहली बार पूरे हिमालय क्षेत्र को एक एकीकृत उच्च जोखिम वाले ज़ोन में शामिल किया गया है, जो यह स्पष्ट करता है कि भविष्य में भवन निर्माण, शहरी नियोजन तथा आधारभूत संरचनाओं—जैसे अस्पताल, विद्यालय, पुल, पाइपलाइन और अन्य महत्वपूर्ण ढाँचों—के लिए अधिक कठोर सुरक्षा मानकों और सुदृढ़ डिज़ाइन की आवश्यकता होगी।

कुछ मीडिया रिपोर्टों, जैसे द टाइम्स ऑफ इंडिया, के अनुसार भारत का लगभग 61% भूभाग मध्यम से अत्यधिक भूकंप-प्रवण श्रेणी में आता है। राहत की बात यह है कि यह नया मानचित्र केवल पुराने आंकड़ों के पुनर्संयोजन पर आधारित नहीं है, बल्कि यह वर्तमान भूवैज्ञानिक डेटा, भूकंपीय गतिविधियों

और आधुनिक अनुसंधान पर आधारित है। इसलिए इसे पिछले कई दशकों में सबसे महत्वपूर्ण और वैज्ञानिक रूप से उन्नत अद्यतन माना जा रहा है।

यह नया भूकंपी क्षेत्र मानचित्र भारतीय मानक ब्यूरो (BIS) द्वारा विकसित प्रोबैबिलिस्टिक सीस्मिक हैज़र्ड असेसमेंट (PSHA) मॉडल पर आधारित है, जिसमें भू-परतों की संरचना, प्लेट टेक्टॉनिक गतिविधियाँ, फॉल्ट लाइनों की सक्रियता, भूकंपीय तरंगों के व्यवहार तथा अधिकतम संभाव्य भूकंप (मैक्सिमम क्रेडिबल अर्थक्वेक) जैसी कई वैज्ञानिक सूचनाओं का समावेश किया गया है। यह मानचित्र पूर्ववर्ती संस्करणों की तुलना में अधिक वैज्ञानिक, यथार्थपरक और विश्वसनीय माना जाता है।

यह तथ्य सही है कि हिमालय बाहरी रूप से शांत प्रतीत होता है, लेकिन भीतर से यह निरंतर सक्रिय भूगर्भीय तनाव का क्षेत्र है। यहाँ भारतीय प्लेट और यूरेशियन प्लेट के टकराव के कारण लंबे समय से अत्यधिक संपीड़न (compression) और ऊर्जा का संचय होता रहा है।

इस क्षेत्र में प्रमुख फॉल्ट प्रणालियाँ—मेन बाउंड्री थ्रस्ट (MBT), मेन सेंट्रल थ्रस्ट (MCT) और मेन फ्रंटल थ्रस्ट (MFT)—हिमालय की संरचना में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इन क्षेत्रों में लंबे समय से अपेक्षाकृत बड़े भूकंपों की अनुपस्थिति को वैज्ञानिक दृष्टि से "स्ट्रेस एक्यूम्युलेशन" (तनाव संचय) के रूप में देखा जाता है, जिससे भविष्य में बड़े भूकंप की संभावना को नकारा नहीं जा सकता। इसी कारण संपूर्ण हिमालयी पट्टी को उच्चतम जोखिम श्रेणी (ज़ोन-VI) में वर्गीकृत किया गया है।

नए भूकंप जोनिंग दृष्टिकोण में यह भी प्रावधान शामिल किया गया है कि यदि कोई नगर दो भूकंपीय जोनों की सीमा पर स्थित है, तो उसे उच्च जोखिम वाले जोन के अनुरूप माना जाएगा। इससे कई ऐसे क्षेत्र, जो पहले अपेक्षाकृत कम जोखिम वाले माने जाते थे, अब अधिक संवेदनशील श्रेणी में आ गए हैं।

2025 के संशोधित भूकंप डिज़ाइन कोड के अनुसार, सभी नई संरचनाओं—विशेषकर अस्पताल, विद्यालय, पुल और महत्वपूर्ण अवसंरचना—को अधिक कठोर भूकंप-रोधी मानकों के अनुरूप डिजाइन और निर्माण करना अनिवार्य होगा। इसमें संरचनात्मक मजबूती, उपकरणों की सुरक्षित स्थापना और आपदा-प्रतिरोध क्षमता पर विशेष ध्यान दिया गया है।

अब भूकंप जोखिम का आकलन केवल भूकंपीय तीव्रता (seismic intensity) पर आधारित नहीं रहेगा, बल्कि इसमें जनसंख्या घनत्व, आर्थिक महत्त्व, भवनों की सघनता, संरचनात्मक गुणवत्ता और क्षेत्रीय संवेदनशीलता जैसे बहु-आयामी कारकों को भी शामिल किया जाएगा। इससे संभावित नुकसान का अधिक यथार्थपरक मूल्यांकन संभव होगा।

भौगोलिक दृष्टि से दक्षिण भारत को अपेक्षाकृत स्थिर प्रायद्वीपीय भूभाग माना जाता है, जहाँ बड़े टेक्टॉनिक आंदोलनों की आवृत्ति कम है।

कुल मिलाकर, उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश तथा संपूर्ण पूर्वोत्तर पर्वतीय क्षेत्र अत्यधिक भूकंपीय जोखिम वाले क्षेत्र बने हुए हैं। इसके अतिरिक्त दिल्ली-एनसीआर, कच्छ (गुजरात) तथा नेपाल सीमा से सटे बिहार के क्षेत्र भी उच्च जोखिम श्रेणी में आते हैं, जबकि दक्षिण भारत के अधिकांश हिस्से अपेक्षाकृत कम जोखिम वाले माने जाते हैं।

भारत के नए भूकंपीय मानचित्र के अनुसार हिमालयी क्षेत्र को अब सर्वाधिक जोखिम वाले जोन-VI में वर्गीकृत किया गया है, जबकि पूर्व में यह क्षेत्र मुख्यतः जोन-IV और जोन-V में आता था। यह परिवर्तन इस बात का संकेत है कि बड़े भूकंपों की संभावना को अब पहले की तुलना में अधिक गंभीरता से आंका जा रहा है।

भूगर्भीय दृष्टि से भारतीय प्लेट लगातार उत्तर दिशा की ओर अग्रसर होकर यूरेशियन प्लेट से टकरा रही है। इस सतत टकराव के परिणामस्वरूप हिमालय का निर्माण हुआ है और आज भी यह प्रक्रिया जारी है। इसी कारण पृथ्वी की सतह के भीतर अत्यधिक संपीड़न (compression) और तनाव (stress) का संचय होता रहता है, जो समय-समय पर ऊर्जा के अचानक मुक्त होने पर भूकंप के रूप में प्रकट होता है।

नए आकलनों के अनुसार, भारत का लगभग 61% भूभाग मध्यम से लेकर गंभीर भूकंपीय जोखिम वाले

क्षेत्रों में आता है। पूर्व में किए गए जोखिम आकलन मुख्यतः ऐतिहासिक भूकंपों और सामान्य भूवैज्ञानिक सूचनाओं पर आधारित थे, जबकि वर्तमान ज़ोनिंग प्रणाली में भूमिगत भ्रंश रेखाओं (fault lines), अधिकतम संभाव्य भूकंप तथा स्थल की वास्तविक भू-वैज्ञानिक स्थिति का अधिक विस्तृत और वैज्ञानिक विश्लेषण शामिल किया गया है।

इसी कारण यह अपेक्षा की जा रही है कि इंजीनियरिंग, नगर नियोजन और अवसंरचना विकास में नवीन भूकंप मानकों (विशेषकर 2025 के डिज़ाइन कोड) का पालन अनिवार्य रूप से किया जाए। इसके अंतर्गत अस्पताल, विद्यालय, पुल, पाइपलाइन और अन्य महत्वपूर्ण संरचनाओं को इस प्रकार डिज़ाइन करने पर बल दिया जा रहा है कि वे बड़े भूकंप की स्थिति में भी कार्यशील बने रहें।

चूँकि भारत की एक बड़ी जनसंख्या भूकंपीय रूप से संवेदनशील क्षेत्रों में निवास करती है, इसलिए शहरी नियोजन, भवन निर्माण मानकों और भूमि उपयोग की रणनीतियों में भी परिवर्तन आवश्यक माना जा रहा है, ताकि भविष्य में संभावित भूकंपीय आपदाओं से जान-माल की क्षति को न्यूनतम किया जा सके।

अंत में कहा जा सकता है कि भूकंप प्रकृति की ऐसी शक्ति है, जिस पर मानव का नियंत्रण नहीं है, लेकिन वैज्ञानिक प्रगति ने पृथ्वी की आंतरिक संरचना को समझने और जोखिम का अधिक सटीक आकलन करने की क्षमता अवश्य विकसित की है। भूकंप कब और कहाँ आएगा, इसका सटीक पूर्वानुमान आज भी संभव नहीं है, किंतु उचित तैयारी और सतर्कता के माध्यम से इसके प्रभाव से होने वाले नुकसान को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

इसीलिए वैज्ञानिक आकलनों पर आधारित मजबूत निर्माण मानकों का पालन, जन-जागरूकता और आपदा-प्रबंधन से जुड़े एहतियाती उपाय ही हमारी सबसे प्रभावी सुरक्षा हैं। प्रकृति के साथ संघर्ष के बजाय उसके नियमों को समझकर और उनके अनुरूप ढलकर ही मानव समाज सुरक्षित, संतुलित और सतत विकास की दिशा में आगे बढ़ सकता है।

दिखता नहीं, पर घातक है: जीवन के हर कण में समाता माइक्रो प्लास्टिक

सुनील कुमार महला

प्लास्टिक आज पर्यावरण का एक “मौन ज़हर” बन चुका है। यह न केवल हवा, पानी और मिट्टी को प्रदूषित करता है, बल्कि धीरे-धीरे जीव-जंतुओं और मानव स्वास्थ्य पर भी गंभीर प्रभाव डाल रहा है। वास्तव में, प्लास्टिक प्रकृति, जीवन और भविष्य—तीनों के लिए एक बड़ी चुनौती बन गया है।

हाल ही में कोलकाता स्थित प्रमुख पर्यावरण संस्थानों के वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट में यह संकेत मिला है कि सब्जियों में भी माइक्रोप्लास्टिक के कण पाए जा रहे हैं। यह समस्या आधुनिक जीवनशैली की एक अदृश्य लेकिन अत्यंत गंभीर पर्यावरणीय चुनौती को उजागर करती है। इसी प्रकार, एक प्रमुख हिंदी दैनिक में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार, डंपिंग ग्राउंड से निकलने वाले प्लास्टिक कण खेतों और अंततः हमारी थाली तक पहुँच रहे हैं।

माइक्रोप्लास्टिक वे अत्यंत सूक्ष्म प्लास्टिक कण होते हैं, जिनका आकार 5 मिलीमीटर से कम होता है। ये बड़े प्लास्टिक के टूटने से भी बनते हैं और कुछ उत्पादों में पहले से ही सूक्ष्म रूप में मौजूद होते हैं। इनमें पॉलीइथिलीन (PE), पॉलीइथिलीन टेरेफ्थेलेट (PET), पॉलीप्रोपिलीन (PP), पॉलीस्टाइरीन (PS) और पॉलीविनाइल क्लोराइड (PVC) जैसे प्रमुख प्लास्टिक शामिल हैं।

वैज्ञानिक अध्ययनों के अनुसार, कई सब्जियों में माइक्रोप्लास्टिक के कण पाए गए हैं—जैसे मिर्च, पत्ता गोभी, बैंगन, पालक और टमाटर में प्रति ग्राम कुछ से लेकर दर्जनों कण तक दर्ज किए गए हैं। यह तथ्य कृषि तंत्र और खाद्य सुरक्षा दोनों के लिए चिंताजनक संकेत देता है।

यह समस्या केवल मिट्टी तक सीमित नहीं है, बल्कि जल, वायु और संपूर्ण खाद्य श्रृंखला में फैल चुकी है। समुद्र, नदियाँ, झीलें, भौमजल और यहाँ तक कि वर्षा जल में भी माइक्रोप्लास्टिक की उपस्थिति दर्ज की गई है। बोतलबंद पानी, नल का पानी और समुद्री नमक तक इससे अछूते नहीं हैं।

शोध यह भी दर्शाते हैं कि माइक्रोप्लास्टिक प्लास्टिक पैकेजिंग, प्रसंस्करण, सिंथेटिक कपड़ों के रेशों, टायर घिसाव और घरेलू उपयोग की वस्तुओं के माध्यम से पर्यावरण में फैलता है और अंततः मानव शरीर तक पहुँच सकता है। कुछ अध्ययनों में मानव रक्त, फेफड़ों, प्लेसेंटा और मल नमूनों में भी इसके कण पाए गए हैं।

स्वास्थ्य की दृष्टि से, लंबे समय तक माइक्रोप्लास्टिक के संपर्क को हार्मोन असंतुलन, पाचन समस्याओं, श्वसन विकारों, प्रतिरक्षा प्रणाली की कमजोरी और संभावित दीर्घकालिक रोगों से जोड़ा जा रहा है, हालांकि इस पर शोध अभी जारी है।

अनेक आकलनों के अनुसार, एक सामान्य व्यक्ति प्रतिवर्ष हजारों से लेकर लाखों तक सूक्ष्म प्लास्टिक कण अनजाने में ग्रहण कर सकता है, विशेषकर जब वह पैकेज्ड या बोतलबंद उत्पादों का अधिक उपयोग करता है।

इन सभी तथ्यों से स्पष्ट है कि माइक्रोप्लास्टिक अब केवल पर्यावरणीय समस्या नहीं, बल्कि एक गंभीर सार्वजनिक स्वास्थ्य चुनौती बन चुका है। इस समस्या के समाधान के लिए प्लास्टिक उपयोग में कमी, पुनर्चक्रण (recycling), सुरक्षित विकल्पों का विकास और पर्यावरण-अनुकूल जीवनशैली को अपनाना अत्यंत आवश्यक है।

संक्षेप में कहा जाए तो माइक्रोप्लास्टिक हमारी बढ़ती प्लास्टिक निर्भरता का परिणाम है, और इसका समाधान भी हमारी आदतों और नीतिगत बदलावों में ही निहित है। यह संकट केवल प्रकृति का नहीं, बल्कि मानव स्वास्थ्य और आने वाली पीढ़ियों के भविष्य से भी सीधे जुड़ा हुआ है।

यूपीएफ की ओर झुकाव: भारतीय आहार में चुपचाप होता बड़ा बदलाव

सुनील कुमार महला

बीसवीं सदी के बाद विशेषकर पश्चिमी देशों, खासकर अमेरिका और यूरोप में अल्ट्रा-प्रोसेस्ड फूड (UPF) की संस्कृति का तीव्र विकास हुआ। बड़े खाद्य उद्योगों ने ऐसे उत्पाद विकसित किए जो लंबे समय तक सुरक्षित रहें, तुरंत खाने योग्य हों और स्वाद व बनावट में आकर्षक हों। धीरे-धीरे यह खाद्य संस्कृति वैश्विक स्तर पर फैल गई और अब भारत में भी इसकी खपत तेजी से बढ़ रही है। The Lancet की एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत सहित कई देशों में अल्ट्रा-प्रोसेस्ड फूड की बिक्री में उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की गई है।

आज भारतीय समाज में पैकेटबंद और अत्यधिक प्रसंस्कृत भोजन का उपयोग बढ़ता जा रहा है, जो मोटापा, मधुमेह, हृदय रोग और पाचन संबंधी समस्याओं जैसी जीवनशैली-जनित बीमारियों से जुड़ा हुआ है। सरल शब्दों में, जितना अधिक लोग रसायनों, शर्करा, नमक और अस्वास्थ्यकर वसा से युक्त पैकेटबंद भोजन का सेवन कर रहे हैं, उतना ही स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव बढ़ रहा है।

पारंपरिक भारतीय आहार व्यवस्था हमेशा ताज़े, मौसमी और प्राकृतिक खाद्य पदार्थों पर आधारित रही है। दाल, अनाज, सब्जियाँ, फल, दही और घरेलू मसालों का संतुलित उपयोग भारतीय भोजन की विशेषता रहा है। इसके विपरीत, अल्ट्रा-प्रोसेस्ड फूड मुख्यतः औद्योगिक खाद्य प्रणाली का उत्पाद है, जिसका उद्देश्य सुविधा और दीर्घकालिक भंडारण है, न कि पोषण संतुलन।

अल्ट्रा-प्रोसेस्ड फूड में चिप्स, इंस्टेंट नूडल्स, कोल्ड ड्रिंक्स, पैकेट जूस, बिस्किट, केक, प्रोसेस्ड मीट और फास्ट फूड जैसे उत्पाद शामिल हैं। इनमें फाइबर की मात्रा कम और चीनी, नमक तथा ट्रांस फैट की मात्रा अधिक होती है, जिससे मोटापा, डायबिटीज, उच्च रक्तचाप और हृदय रोगों का जोखिम बढ़ता है। लंबे समय तक इनके सेवन से शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली भी प्रभावित हो सकती है।

The Lancet में प्रकाशित हालिया शोध के अनुसार, भारत में अल्ट्रा-प्रोसेस्ड फूड का बाजार पिछले कुछ दशकों में कई गुना बढ़ चुका है। यह प्रवृत्ति अब केवल शहरी क्षेत्रों तक सीमित नहीं है, बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों तक भी फैल चुकी है, विशेषकर युवा पीढ़ी के बीच।

बाजार में आसान उपलब्धता, आक्रामक विज्ञापन और तेज़ जीवनशैली ने पारंपरिक भोजन की जगह इन उत्पादों को बढ़ावा दिया है। परिणाम स्वरूप, घर

के बने ताज़ा भोजन की जगह पैकेटबंद भोजन अधिक सामान्य होता जा रहा है।

विशेषज्ञों का मानना है कि यह बदलाव गंभीर सार्वजनिक स्वास्थ्य चुनौती बन सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि सरकारें खाद्य लेबलिंग को सख्त करें, बच्चों के विज्ञापनों पर नियंत्रण लगाएँ और स्वस्थ पारंपरिक आहार को बढ़ावा दें।

अल्ट्रा-प्रोसेस्ड फूड आधुनिक जीवन की सुविधा तो प्रदान करता है, लेकिन दीर्घकालिक स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा भी उत्पन्न करता है। यदि समय रहते संतुलित आहार और पारंपरिक भोजन संस्कृति को पुनः अपनाया जाए, तो इस बढ़ते स्वास्थ्य संकट को काफी हद तक रोका जा सकता है।

क्यों नहीं रुक रहीं सीवर मौतें ?

सुनील कुमार महला

भारत में सीवर और सेप्टिक टैंक की सफाई के दौरान होने वाली मौतें एक अत्यंत गंभीर, संवेदनशील और चिंताजनक समस्या हैं। यह केवल तकनीकी या श्रम-सुरक्षा का मुद्दा नहीं है, बल्कि गहरे सामाजिक, प्रशासनिक और मानवाधिकार संबंधी प्रश्नों से जुड़ा हुआ है। 'हाथ से मैला ढोने वालों के नियोजन का प्रतिषेध और पुनर्वास अधिनियम, 2013' लागू होने के बावजूद यह पूरी तरह समाप्त नहीं हो सकी है।

उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार, वर्ष 2018 से 2023 के बीच सीवर और सेप्टिक टैंक की सफाई के दौरान 400 से अधिक मजदूरों की मृत्यु हुई है। राष्ट्रीय सफाई कर्मचारी आयोग के अनुसार, वर्ष 1993 से 2025 तक 1300 से अधिक मौतें दर्ज की गई हैं।

राज्यवार आंकड़ों में महाराष्ट्र, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, हरियाणा और दिल्ली में ऐसी घटनाएँ अपेक्षाकृत अधिक दर्ज की गई हैं। संसद में प्रस्तुत आंकड़ों के अनुसार भी पिछले वर्षों में सैकड़ों सफाईकर्मियों की मृत्यु हुई है, जिनमें अधिकांश मामले शहरी क्षेत्रों से संबंधित हैं।

यह तथ्य अत्यंत चिंताजनक है कि आज भी कई स्थानों पर सीवर सफाई मैन्युअल रूप से की जाती है, जबकि यह कानूनन प्रतिबंधित है। पर्याप्त सुरक्षा उपकरण जैसे मास्क, ऑक्सीजन सिलेंडर और गैस डिटेक्टर की अनुपस्थिति इन मौतों का प्रमुख कारण बनी हुई है।

सीवर के भीतर मौजूद जहरीली गैसें, विशेष रूप से हाइड्रोजन सल्फाइड और मीथेन, अत्यंत घातक होती हैं। बिना सुरक्षा उपकरणों के संपर्क में आते ही ये गैसें तुरंत जानलेवा साबित हो सकती हैं।

यह समस्या केवल तकनीकी नहीं, बल्कि सामाजिक असमानता से भी जुड़ी है। रिपोर्टों के अनुसार, अधिकांश सफाईकर्मी वंचित समुदायों से आते हैं, जो ठेकेदारी व्यवस्था के तहत अत्यंत जोखिमपूर्ण परिस्थितियों में कार्य करने को मजबूर होते हैं।

सरकार द्वारा इस दिशा में कई प्रयास किए गए हैं। 'नमस्ते (NAMASTE)' योजना और स्वच्छ भारत मिशन 2.0 के तहत सीवर सफाई के मशीनीकरण को बढ़ावा दिया जा रहा है। कई शहरी निकायों में मशीनीकृत सफाई की दिशा में प्रगति दर्ज की गई है। सफाईकर्मियों को प्रशिक्षण, पीपीई किट, स्वास्थ्य बीमा और वित्तीय सहायता सुविधाएँ दी जा रही हैं।

कुछ राज्यों में रोबोटिक मैनहोल सफाई मशीनों का उपयोग शुरू किया गया है, जो एक सकारात्मक कदम है। इसके बावजूद, छोटे शहरों और संकरी गलियों में आज भी मानव हस्तक्षेप जारी है।

सुप्रीम कोर्ट ने भी इस मुद्दे पर सख्त रुख अपनाते हुए सीवर सफाई के दौरान मृत्यु पर मुआवजा बढ़ाने और जिम्मेदार अधिकारियों पर कार्रवाई के निर्देश दिए हैं। यदि मशीनीकरण के बिना किसी व्यक्ति को सीवर में उतारा जाता है, तो इसके लिए संबंधित अधिकारियों को जिम्मेदार ठहराने का प्रावधान भी किया गया है।

निष्कर्षतः, सीवर और सेप्टिक टैंक की सफाई के दौरान होने वाली मौतें दर्शाती हैं कि कानूनी प्रावधानों और नीतिगत प्रयासों के बावजूद जमीनी स्तर पर स्थिति गंभीर है। यह समस्या केवल दुर्घटना नहीं, बल्कि प्रशासनिक लापरवाही, ठेकेदारी व्यवस्था की खामियों और सामाजिक असमानता का परिणाम है। स्थायी समाधान के लिए पूर्ण मशीनीकरण, सख्त निगरानी, जवाबदेही और सफाईकर्मियों के लिए सुरक्षित एवं सम्मानजनक कार्य परिस्थितियाँ सुनिश्चित करना अनिवार्य है।

मौत की फैक्टरी बनते शहर और सोती हुई व्यवस्था

योगेश कुमार गोयल

114, गली नं. 6, गोपाल नगर, एम.डी. मार्ग, नजफगढ़, नई दिल्ली-110043

लखनऊ के अलीगंज स्थित एक कोचिंग सेंटर में आग से 15 छात्रों की दर्दनाक मौत ने उस व्यवस्था की गंभीर खामियों को उजागर कर दिया, जहाँ भ्रष्टाचार, लापरवाही और प्रशासनिक उदासीनता के कारण सुरक्षा मानकों की अनदेखी होती रही। जिन बच्चों को माता-पिता बेहतर भविष्य के सपनों के साथ कोचिंग भेजते हैं, उनका धुएँ से भरे कमरों, बंद दरवाजों और असुरक्षित निर्माण के बीच दम घुटना केवल हादसा नहीं कहा जा सकता। यह ऐसी त्रासदी थी, जिसे उचित सुरक्षा उपायों और प्रभावी निगरानी से टाला जा सकता था।

आग लगने पर छात्रों ने जान बचाने की कोशिश की—कुछ ऊँचाई से कूदे, तो कुछ धुएँ से बचने के लिए बाथरूम में छिप गए, लेकिन दम घुटने से उनकी मौत हो गई। यह किसी प्राकृतिक आपदा का परिणाम नहीं, बल्कि सुरक्षा मानकों की अनदेखी और प्रशासनिक विफलता का भयावह परिणाम था। क्या हमारे शहरों में व्यावसायिक लाभ को मानव जीवन की सुरक्षा से ऊपर रखा जा रहा है?

कुछ ही समय पहले दिल्ली के मालवीय नगर में भीषण आग में 21 लोगों की जान चली गई थी। इससे पहले मुंडका, अनाज मंडी, करोल बाग, अलीपुर और उपहार सिनेमा जैसी अनेक अग्नि-त्रासदियाँ देश देख चुका है। हर बार जाँच में लगभग वही कारण सामने आते हैं—अवैध निर्माण, बंद निकास मार्ग, फायर NOC का अभाव, क्षमता से अधिक लोगों की मौजूदगी, प्रशासनिक लापरवाही और भ्रष्टाचार। यदि कारण बार-बार एक जैसे हैं, तो इन घटनाओं को महज दुर्घटना नहीं, बल्कि व्यवस्था की विफलता का परिणाम माना जाना चाहिए।

लखनऊ अग्निकांड की प्रारंभिक जाँच ने भी कई गंभीर सवाल खड़े किए। जिस भवन में कोचिंग सेंटर चल रहा था, वहाँ स्वीकृत नक्शे के विपरीत निर्माण और सेटबैक क्षेत्र पर भी कब्जे की बात सामने आई। भवन में नीचे पेट शॉप और गेमिंग जोन तथा ऊपर कोचिंग सेंटर और लाइब्रेरी संचालित थे। एक ही भवन में इस तरह की मिश्रित व्यावसायिक गतिविधियाँ सुरक्षा जोखिम बढ़ा सकती हैं। सबसे गंभीर बात यह थी कि छात्रों के लिए उपलब्ध निकास मार्ग प्रभावी रूप से अवरुद्ध था। आग लगने पर सुरक्षित निकासी का रास्ता न होना मानव जीवन के प्रति गंभीर लापरवाही और सुरक्षा व्यवस्था की विफलता को दर्शाता है।

सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि ऐसी असुरक्षित इमारतें अस्तित्व में आती कैसे हैं? क्या नगर निगम, विकास प्राधिकरण, अग्निशमन विभाग, बिजली विभाग और स्थानीय प्रशासन को इनकी जानकारी नहीं होती? कोई भी अवैध निर्माण रातोंरात नहीं खड़ा होता। उसकी नींव पड़ती है, मंजिलें बनती हैं, बिजली-पानी के कनेक्शन मिलते हैं और फिर वहाँ व्यावसायिक गतिविधियाँ शुरू होती हैं। इस पूरी प्रक्रिया में कई विभाग शामिल होते हैं। फिर भी भ्रष्टाचार, मिलीभगत और कमजोर निगरानी के कारण नियम अक्सर फाइलों तक सीमित रह जाते हैं, जबकि जमीन पर अवैध निर्माण फलता-फूलता रहता है।

देश का शहरी विकास मॉडल भी इस समस्या के लिए जिम्मेदार है। अधिक मुनाफे की होड़ में अतिरिक्त मंजिलें बनाना, सेटबैक क्षेत्र को घेरना, बेसमेंट का अवैध व्यावसायिक उपयोग करना और आपातकालीन निकास को बंद कर देना आम होता जा रहा है। जब नियमों की अनदेखी और प्रशासनिक मिलीभगत को बढ़ावा मिलता है, तो पूरी इमारत धीरे-धीरे 'मौत के जाल' में बदल जाती है और एक छोटी चिंगारी कई परिवारों की खुशियाँ छीन लेती है।

उपहार सिनेमा अग्निकांड को लगभग तीन दशक बीत चुके हैं। बंद निकास द्वारों के कारण उस त्रासदी

में 59 लोगों की जान चली गई थी। तब देश ने कड़े कानून और सख्त निगरानी की माँग की थी। लेकिन क्या पर्याप्त बदलाव हुआ? यदि हुआ होता, तो मुंडका, अनाज मंडी, करोल बाग, मालवीय नगर और लखनऊ जैसी त्रासदियाँ बार-बार नहीं दोहराई जातीं।

हर बड़े हादसे के बाद जाँच समितियाँ बनती हैं, मुआवजे घोषित होते हैं, कुछ अधिकारियों पर कार्रवाई होती है और कुछ दिनों तक बहस चलती है। फिर मामला ठंडा पड़ जाता है और व्यवस्था अगले हादसे की प्रतीक्षा करने लगती है।

आज भी अनेक शहरों में असुरक्षित इमारतें मौजूद हैं, जहाँ सीमित निकास, अवैध निर्माण और कमजोर अग्नि-सुरक्षा व्यवस्था के कारण आग से अधिक मौतें धुएँ में दम घुटने से होती हैं। लखनऊ की त्रासदी ने दिखाया कि सुरक्षित निकास, सुरक्षा मानकों और समय पर निरीक्षण की कमी कितनी घातक हो सकती है। ऐसी घटनाओं के लिए प्रशासनिक विफलता और जवाबदेही के अभाव को भी जिम्मेदार माना जाना चाहिए।

अब सभी व्यावसायिक भवनों, कोचिंग सेंटरों, अस्पतालों, होटलों और मॉल्स का नियमित डिजिटल सुरक्षा ऑडिट अनिवार्य होना चाहिए। Fire NOC प्रक्रिया पारदर्शी और ऑनलाइन हो, अवैध निर्माण पर कठोर कार्रवाई की जाए तथा लापरवाही या मिलीभगत के लिए संबंधित अधिकारियों की भी स्पष्ट जवाबदेही तय हो।

सबसे बढ़कर, जिन भवन मालिकों या अधिकारियों की लापरवाही से लोगों की जान जाती है, उनके विरुद्ध कठोर आपराधिक दायित्व तय होना चाहिए, ताकि मानव जीवन की कीमत पर लाभ कमाने की प्रवृत्ति पर प्रभावी अंकुश लगाया जा सके।

लखनऊ का अग्निकांड केवल 15 परिवारों का दुःख नहीं, बल्कि पूरे समाज के लिए एक चेतावनी है। यदि व्यवस्था की खामियाँ दूर नहीं की गईं, भ्रष्टाचार और मिलीभगत पर अंकुश नहीं लगाया गया और सुरक्षा मानकों को कागजी औपचारिकता ही बनाए रखा गया, तो अगली त्रासदी केवल समय की बात होगी। आवश्यकता है जवाबदेही, पारदर्शिता और कठोर कार्रवाई की, ताकि ऐसी त्रासदियाँ दोबारा न हों।

भारत की बढ़ती हवाई ताकत का नया अध्याय

योगेश कुमार गोयल

भारत की सुरक्षा चुनौतियाँ विश्व के अधिकांश देशों की तुलना में अधिक जटिल हैं। पश्चिम में पाकिस्तान और उत्तर व पूर्व में चीन जैसी परमाणु शक्तियों से घिरे भारत के लिए वायु शक्ति राष्ट्रीय सुरक्षा की महत्वपूर्ण आधारशिला है। बदलते भू-राजनीतिक परिदृश्य, हिंद-प्रशांत में बढ़ती सामरिक प्रतिस्पर्धा, सीमाई तनाव, ड्रोन युद्ध, लंबी दूरी की मिसाइलों, साइबर हमलों और नेटवर्क-केंद्रित युद्ध के दौर में भारतीय वायुसेना ने स्वयं को विश्व की प्रमुख वायु सेनाओं में स्थापित किया है।

इसका उल्लेख 'वर्ल्ड डायरेक्टरी ऑफ मॉडर्न मिलिट्री एयरक्राफ्ट' (WDMMA) की 2026 की रैंकिंग में भी मिलता है, जिसमें भारतीय वायुसेना को विश्व की तीसरी सबसे शक्तिशाली वायुसेना का स्थान दिया गया है। भारत से आगे अमेरिका और रूस हैं, जबकि चीन चौथे स्थान पर है। यह उपलब्धि केवल गौरव का विषय नहीं, बल्कि वायुसेना की तकनीकी क्षमता, संचालन दक्षता, आधुनिक युद्धक प्रणालियों और भविष्य की चुनौतियों के अनुरूप निरंतर आधुनिकीकरण का संकेत भी है।

अक्सर माना जाता है कि अधिक लड़ाकू विमान वाली वायुसेना ही सबसे शक्तिशाली होती है, लेकिन आधुनिक युद्ध की वास्तविकता इससे कहीं व्यापक है। आज युद्ध का परिणाम केवल विमानों की संख्या से नहीं, बल्कि सूचना प्रभुत्व, इलेक्ट्रॉनिक युद्ध, खुफिया निगरानी, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, लॉजिस्टिक नेटवर्क, प्रशिक्षण, रखरखाव और सैन्य शाखाओं के समन्वित संचालन जैसी क्षमताओं से तय होता है।

इसी दृष्टि से वर्ल्ड डायरेक्टरी ऑफ मॉडर्न मिलिट्री एयरक्राफ्ट (WDMMA) ने ट्रू वैल्यू रेटिंग (TVR) प्रणाली विकसित की है। इसमें वायुसेनाओं का आकलन केवल विमानों की संख्या से नहीं, बल्कि उनकी समग्र युद्ध क्षमता के आधार पर किया जाता है। इसके प्रमुख मानकों में लड़ाकू विमानों की गुणवत्ता, AEW&C, टैंकर और परिवहन विमान, विशेष मिशन प्लेटफॉर्म, इलेक्ट्रॉनिक युद्ध, खुफिया-

निगरानी, लॉजिस्टिक सपोर्ट, रखरखाव, ऑपरेशनल रेडीनेस, तकनीकी आधुनिकीकरण और स्वदेशी एयरोस्पेस क्षमता शामिल हैं।

वर्ष 2026 की TVR रैंकिंग में अमेरिका 242.9 अंकों के साथ पहले, रूस 114.2 के साथ दूसरे और भारत 69.4 अंकों के साथ तीसरे स्थान पर है। इसके बाद चीन (63.8), जापान (58.1), इजरायल (56.3), फ्रांस और ब्रिटेन (55.3-55.3), दक्षिण कोरिया (53.4) तथा इटली (51.9) शीर्ष दस में हैं। पाकिस्तान 44.3 TVR और 879 विमानों के साथ 18वें स्थान पर है।

यह रैंकिंग सवाल उठाती है कि चीन के 3,700 से अधिक सैन्य विमानों की तुलना में लगभग 1,716 विमानों के बावजूद भारत उससे आगे कैसे है? इसका उत्तर TVR प्रणाली में है। वायुसेना की क्षमता केवल विमानों की संख्या से नहीं, बल्कि संतुलित बल संरचना, लॉजिस्टिक सपोर्ट, प्रशिक्षण, रखरखाव और तकनीकी एकीकरण से भी तय होती है।

भारतीय वायुसेना की ताकत उसका संतुलित बल ढाँचा है, जिसमें लड़ाकू विमानों के साथ परिवहन, निगरानी, इलेक्ट्रॉनिक युद्ध, हवाई ईंधन भरने और विशेष मिशन क्षमताएँ शामिल हैं। वास्तविक अभियानों का अनुभव भी इसकी परिचालन क्षमता को मजबूत करता है।

डब्ल्यूडीएमएमए के अनुसार, भारतीय वायुसेना के पास लगभग 1,716 विमान हैं, जिनमें 542 लड़ाकू, 498 हेलीकॉप्टर, 282 परिवहन, 374 प्रशिक्षण और 20 विशेष मिशन विमान शामिल हैं। इसके लड़ाकू बेड़े में सुखोई-30 एमकेआई, राफेल, मिराज-2000, मिग-29, तेजस और जगुआर जैसे प्रमुख प्लेटफॉर्म शामिल हैं। रिपोर्ट में सितंबर 2025 तक सेवा से हटाए गए मिग-21 को भी शामिल किया गया है। हेलीकॉप्टर बेड़े में एमआई-17 के साथ स्वदेशी ध्रुव और रुद्र शामिल हैं। विशेष मिशन प्लेटफॉर्म, जैसे एयरबोर्न अर्ली वार्निंग सिस्टम, खुफिया-निगरानी और हवा में ईंधन भरने वाले विमान, लंबी दूरी के अभियानों और निरंतर निगरानी की क्षमता बढ़ाते हैं।

यही संतुलित बल संरचना भारतीय वायुसेना की प्रमुख ताकत है। आधुनिक युद्ध में केवल हथियारों की संख्या नहीं, बल्कि सूचना, निगरानी, लक्ष्य चयन, इलेक्ट्रॉनिक युद्ध, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और वास्तविक समय में निर्णय लेने की क्षमता भी निर्णायक होगी। भारतीय वायुसेना इन क्षेत्रों में अपनी तकनीकी और परिचालन क्षमताओं का निरंतर विस्तार कर रही है।

रिपोर्ट में 242.9 के TVR स्कोर के साथ अमेरिका को विश्व की सबसे शक्तिशाली वायुसेना माना गया है। उसके पास 5,000 से अधिक विमान, विशाल परिवहन बेड़ा, एयरबोर्न अर्ली वार्निंग सिस्टम, हवा में ईंधन भरने वाले टैंकर, रणनीतिक बमवर्षक, स्टील्थ विमान, वैश्विक लॉजिस्टिक नेटवर्क और अत्याधुनिक इलेक्ट्रॉनिक युद्ध प्रणालियाँ हैं, जो उसे अन्य देशों से काफी आगे रखती हैं।

भारत और चीन एशिया की दो प्रमुख सैन्य शक्तियाँ हैं और दोनों के बीच लगभग 3,400 किलोमीटर लंबी वास्तविक नियंत्रण रेखा है। ऐसे में वैश्विक सैन्य मूल्यांकन में भारत का चीन से आगे रहना केवल प्रतिष्ठा का विषय नहीं, बल्कि रणनीतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। यह भारत के सैन्य आधुनिकीकरण, बढ़ती रणनीतिक विश्वसनीयता, हिंद-प्रशांत में प्रभाव और स्वदेशी रक्षा उद्योग की प्रगति को दर्शाता है।

भारतीय वायुसेना आने वाले वर्षों में तेजस एमके-1ए, तेजस एमके-2, एडवांस्ड मीडियम कॉम्बैट एयरक्राफ्ट (AMCA), सी-295, स्वदेशी ड्रोन और यूसीएवी, नई पीढ़ी के हेलीकॉप्टर, आधुनिक मिसाइल प्रणालियों, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, इलेक्ट्रॉनिक युद्ध और साइबर रक्षा जैसी क्षमताओं के विकास से और मजबूत होगी। 'आत्मनिर्भर भारत' के तहत एचएएल, डीआरडीओ और निजी रक्षा उद्योग की बढ़ती भागीदारी भारत की स्वदेशी एयरोस्पेस क्षमता को नई दिशा दे रही है।

WDMMA की 2026 रैंकिंग में भारतीय वायुसेना का तीसरे स्थान पर बने रहना तकनीकी आधुनिकीकरण, संतुलित सैन्य क्षमता और पेशेवर दक्षता का संकेत है। स्पष्ट है कि आधुनिक युद्ध में संख्या से अधिक गुणवत्ता, तकनीक, प्रशिक्षण, नेटवर्क-केंद्रित संचालन और समन्वित युद्ध क्षमता निर्णायक हैं। यदि आधुनिकीकरण की वर्तमान गति जारी रहती है, तो भारत वैश्विक वायु शक्ति संतुलन में और अधिक प्रभावशाली भूमिका निभा सकता है।

इंडियन एसोसिएशन फॉर द कल्टीवेशन ऑफ साइंस (IACS): भारतीय विज्ञान की गौरवशाली विरासत

डॉ. जयंत स्थानपति

डॉ. जयंत स्थानपति राष्ट्रीय विज्ञान संग्रहालय परिषद (NCSM) के पूर्व उप-महानिदेशक और 1973 से 1978 तक IACS के चुंबकत्व विभाग में अनुसंधान फेलो रहे हैं।
Flat 610, Block C, Unishire Terraza, Rachenahalli Main Road, Bengaluru 560077

1876 में कोलकाता में स्थापित इंडियन एसोसिएशन फॉर द कल्टीवेशन ऑफ साइंस (IACS) भारत में वैज्ञानिक अनुसंधान की निरंतर प्रगति और संस्थागत विकास का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। एक दान-आधारित वैज्ञानिक मंच के रूप में आरंभ हुई यह संस्था आज राष्ट्रीय महत्व के एक अग्रणी अनुसंधान विश्वविद्यालय के रूप में स्थापित हो चुकी है। लगभग डेढ़ शताब्दी की यात्रा में IACS ने न केवल संस्थागत और बौद्धिक विस्तार किया है, बल्कि अनेक युगांतरकारी वैज्ञानिक खोजों तथा देश के अग्रणी वैज्ञानिकों के निर्माण में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। बदलती वैज्ञानिक चुनौतियों और अनुसंधान आवश्यकताओं के अनुरूप इसने समय-समय पर अपनी संरचना, शैक्षणिक कार्यक्रमों और अनुसंधान सुविधाओं का निरंतर आधुनिकीकरण किया है।

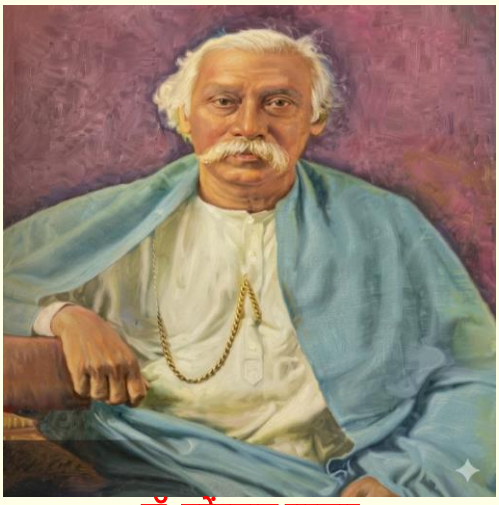

डॉ. महेंद्रलाल सरकार

IACS के संस्थापक महेंद्रलाल सरकार एक प्रतिष्ठित चिकित्सक, दूरदर्शी शिक्षाविद् और परोपकारी चिंतक थे। उन्होंने भारतीय नेतृत्व में संचालित एक ऐसे राष्ट्रीय संस्थान की आवश्यकता महसूस की, जो मौलिक वैज्ञानिक अनुसंधान और वैज्ञानिक चेतना के प्रसार को समर्पित हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने व्यापक जनसमर्थन जुटाया और देश के अनेक प्रबुद्ध व्यक्तियों को अभियान से जोड़ा। उनके इस प्रयास को राजेंद्रलाल मित्रा, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, केशव चंद्र सेन, गुरुदास बनर्जी, सुरेंद्रनाथ बनर्जी और यूजीन लाफों (Eugene Lafont) जैसे प्रतिष्ठित विद्वानों और समाजसेवियों का समर्थन प्राप्त हुआ, जिसने IACS की स्थापना को साकार रूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

1875 तक डॉ. महेंद्रलाल सरकार पर्याप्त दानराशि और जनसहयोग जुटाने में सफल हो चुके थे। इसके परिणामस्वरूप कोलकाता के बहूबाजार स्ट्रीट स्थित 210 नंबर की एक सरकारी स्वामित्व वाली इमारत संस्थान के लिए उपलब्ध कराई गई। इसी भवन में 29 जुलाई 1876 को IACS का औपचारिक उद्घाटन हुआ। प्रारंभिक वर्षों में यह एक सदस्य-आधारित संस्था के रूप में कार्य करता था, जहाँ वैज्ञानिक व्याख्यानों, प्रयोगों के प्रदर्शन तथा सीमित प्रयोगशाला सुविधाओं के माध्यम से विज्ञान के प्रचार-प्रसार का कार्य किया जाता था।

IACS की प्रारंभिक यात्रा भारतीय पहल और यूरोपीय वैज्ञानिक सहयोग के सफल समन्वय का उदाहरण थी। इसके प्रथम अध्यक्ष सर रिचर्ड टेम्पल थे, जबकि डॉ. महेंद्रलाल सरकार ने आजीवन मानद सचिव के रूप में संस्थान का नेतृत्व किया। भौतिकी, रसायन विज्ञान, गणित और जीव विज्ञान के प्रतिष्ठित विद्वानों के व्याख्यानों ने IACS को शीघ्र ही एक प्रमुख बौद्धिक मंच बना दिया। फादर यूजीन लाफों,

जगदीश चंद्र बोस और आशुतोष मुखर्जी जैसे विद्वान इसके प्रमुख वक्ताओं में शामिल थे। एक समय यहाँ प्रतिवर्ष लगभग 100 वैज्ञानिक व्याख्यान आयोजित होते थे। हालांकि बढ़ती लोकप्रियता के बावजूद, सरकारी अनुदान न लेने की नीति और सीमित निजी संसाधनों के कारण प्रारंभिक दशकों में पूर्णकालिक अनुसंधान गतिविधियाँ अपेक्षित रूप से विकसित नहीं हो सकीं।

IACS में संगठित और उच्चस्तरीय वैज्ञानिक अनुसंधान की वास्तविक शुरुआत चंद्रशेखर वेंकट रामन (सी. वी. रामन) के आगमन से हुई। 1907 में कोलकाता में भारतीय वित्त विभाग में कार्यरत रहते हुए रामन IACS से अंशकालिक शोधकर्ता के रूप में जुड़े। सीमित संसाधनों के बावजूद उन्होंने यहाँ प्रकाशिकी (ऑप्टिक्स) और तरंग परिघटना (wave phenomenon) पर महत्वपूर्ण प्रयोगात्मक अनुसंधान आरम्भ किए। बहूबाजार स्थित प्रयोगशाला से प्रकाशित उनके प्रारंभिक शोध-पत्रों में न्यूटन रिंग्स, विवर्तन (डिफ्रैक्शन) तथा प्रकाश के प्रकीर्णन से संबंधित अध्ययन प्रमुख थे। इन शोधों ने IACS को एक शिक्षण एवं व्याख्यान मंच से सक्रिय अनुसंधान संस्थान में रूपांतरित करने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

(1930 में) सर चन्द्रशेखर वेंकट रामन

IACS में रामन के अनुसंधान का सर्वोच्च परिणाम 1928 में 'रामन प्रभाव' (Raman Effect) अथवा 'रामन प्रकीर्णन' की ऐतिहासिक खोज के रूप में सामने आया। के. एस. कृष्णन के सहयोग से की गई यह खोज पहली बार 1928 में Nature तथा Indian Journal of Physics में प्रकाशित हुई और आधुनिक प्रकाशिकी तथा स्पेक्ट्रोस्कोपी के विकास में मील का पत्थर सिद्ध हुई। इसी कार्य के लिए रामन को 1930 में भौतिकी का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया, जिससे IACS को अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई और यह आधुनिक भारतीय प्रयोगात्मक भौतिकी के प्रमुख केंद्रों में स्थापित हो गया।

आई.ए.सी.एस. में सुरक्षित रखा रमन स्पेक्ट्रोग्राफ

रामन का योगदान केवल वैज्ञानिक खोजों तक सीमित नहीं था। उन्होंने 1926 में Indian Journal of Physics की स्थापना की और युवा शोधकर्ताओं की एक सशक्त टीम तैयार की, जिसने विभिन्न प्रयोगात्मक अनुसंधान कार्यक्रमों को आगे बढ़ाया। 1933 में रामन बैंगलोर स्थित इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस के निदेशक के रूप में नियुक्त हुए और बाद में रामन रिसर्च इंस्टीट्यूट की स्थापना की। उनके नेतृत्व और प्रेरणा ने भारत में वैज्ञानिक अनुसंधान की संस्कृति को सुदृढ़ किया तथा अनेक उत्कृष्ट वैज्ञानिकों की नई पीढ़ी तैयार करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

रामन के बाद IACS के विकास और विस्तार में अनेक प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिनमें प्रसिद्ध खगोल भौतिकीविद् मेघनाद साहा का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 1953 में वे IACS के प्रथम पूर्णकालिक निदेशक बने। उनके नेतृत्व में संस्थान ने अपने अनुसंधान दायरे का व्यापक विस्तार किया और माइक्रोवेव स्पेक्ट्रोस्कोपी, सॉलिड-स्टेट भौतिकी, प्रयोगात्मक नाभिकीय भौतिकी, एक्स-रे क्रिस्टलोग्राफी तथा क्रायोजेनिक्स जैसे आधुनिक अनुसंधान क्षेत्रों में कार्य आरम्भ किया। साहा के प्रयासों से IACS को

बहूबाजार स्थित पुराने परिसर से जादवपुर के विस्तृत और आधुनिक परिसर में स्थानांतरित किया गया, जिसने उन्नत प्रयोगशालाओं और वैज्ञानिक अवसंरचना के विकास का मार्ग प्रशस्त किया।

जादवपुर स्थित IACS के मुख्य भवन का दृश्य

1970 के दशक के बाद IACS एक बहुविषयक अनुसंधान संस्थान के रूप में विकसित हुआ। भौतिकी और रसायन विज्ञान के साथ पॉलिमर विज्ञान, ऊर्जा, पदार्थ विज्ञान और अन्य उभरते क्षेत्रों में नई शोध इकाइयाँ स्थापित की गईं। उन्नत प्रयोगशालाओं, केंद्रीय वैज्ञानिक सुविधाओं और विस्तारित डॉक्टरेट कार्यक्रमों ने संस्थान की शोध क्षमता को मजबूत किया और इसे भारत के प्रमुख बहुविषयक अनुसंधान केंद्रों में स्थापित किया।

21वीं सदी में IACS ने अनुसंधान और अंतरविषयक सहयोग को बढ़ावा देने के लिए 2018–19 में पारंपरिक विभागीय व्यवस्था की जगह बहु-संकाय स्कूल प्रणाली अपनाई। इसके तहत भौतिक, रासायनिक, जैविक, पदार्थ, गणितीय एवं संगणकीय तथा अनुप्रयुक्त एवं अंतरविषयक विज्ञान के छह स्कूल स्थापित किए गए, जिससे सहयोगात्मक अनुसंधान और संसाधनों के बेहतर उपयोग को बढ़ावा मिला।

इन शैक्षणिक स्कूलों के अतिरिक्त, IACS में अनेक विशिष्ट अनुसंधान केंद्र और केंद्रीय सेवा इकाइयाँ भी कार्यरत हैं, जो उन्नत वैज्ञानिक अनुसंधान को आवश्यक तकनीकी एवं प्रयोगात्मक सहयोग प्रदान करती हैं। इनमें रामन सेंटर फॉर एटॉमिक, मॉलिक्यूलर एंड ऑप्टिकल साइंसेज, सेंटर फॉर एडवांस्ड मैटेरियल्स, सेंट्रल साइंटिफिक सर्विसेज तथा कंप्यूटर सेंटर प्रमुख हैं। ये केंद्र अत्याधुनिक उपकरणों, विश्लेषणात्मक सुविधाओं और विशेषज्ञ सेवाओं के माध्यम से संस्थान की अनुसंधान क्षमता को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

संग्रहालय का एक हिस्सा

वर्ष 2018 में IACS को डीम्ड-टू-बी विश्वविद्यालय का दर्जा मिलने से इसके शैक्षणिक और अनुसंधान दायरे का विस्तार हुआ। संस्थान अब एकीकृत बीएससी–एमएससी, एमएससी–पीएचडी और पीएचडी कार्यक्रम संचालित करता है। वर्तमान में यहाँ 60 से अधिक नियमित शिक्षक और बड़ी संख्या में शोधार्थी कार्यरत हैं। लगभग 30 एकड़ में विकसित हो रहा SMART परिसर अत्याधुनिक अनुसंधान और अंतरविषयक शिक्षा का नया केंद्र बनने की दिशा में अग्रसर है।

210 बहूबाजार स्ट्रीट पर आई.ए.सी.एस. के मकान

IACS से जुड़े वैज्ञानिकों और पूर्व छात्रों ने भारतीय एवं वैश्विक विज्ञान में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। सी. वी. रमन इसके एकमात्र नोबेल पुरस्कार विजेता रहे हैं, जबकि संस्थान ने अनेक प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों, रॉयल सोसाइटी के फेलो और शांति स्वरूप भटनागर पुरस्कार विजेताओं को तैयार किया है।

लगभग डेढ़ शताब्दी की यात्रा में IACS ने महेंद्रलाल सरकार के वैज्ञानिक जागरूकता, मौलिक अनुसंधान और आत्मनिर्भरता के आदर्शों को आगे बढ़ाते हुए आधुनिकता को अपनाया है। आज यह संस्थान वैज्ञानिक अनुसंधान, प्रतिभा निर्माण और नवाचार का प्रमुख केंद्र है तथा अपनी समृद्ध विरासत और उत्कृष्ट अनुसंधान संस्कृति के साथ भारत की वैज्ञानिक प्रगति को निरंतर दिशा दे रहा है।

चार विज्ञान लघुकथाएं

सुभाष चंद्र लखेड़ा

सी-180, सिद्धार्थ कुंज, सेक्टर-7, प्लाट-17, द्वारका, नई दिल्ली-110075

1. एक्वानोवा: समुद्री जल से पेयजल क्रांति

वर्ष 2088 तक जलवायु परिवर्तन, बढ़ती जनसंख्या और भौमजल के अत्यधिक दोहन के कारण दुनिया के अनेक क्षेत्रों में पेयजल संकट गंभीर हो चुका था। पृथ्वी पर जल का सबसे बड़ा भंडार महासागर थे, लेकिन उनकी उच्च लवणता के कारण समुद्री जल को सीधे पेयजल के रूप में उपयोग नहीं किया जा सकता था। पारंपरिक विलवणीकरण तकनीकों, विशेषकर रिवर्स ऑस्मोसिस और थर्मल डीसैलिनेशन, में ऊर्जा खपत, लागत और अत्यधिक खारे ब्राइन के निपटान जैसी चुनौतियाँ बनी हुई थीं।

इसी चुनौती को हल करने के लिए रुड़की स्थित नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ हाइड्रोलॉजी की वैज्ञानिक डॉ. अरुणिमा कुकरेती ने एक नई हाइब्रिड विलवणीकरण प्रणाली विकसित करने का प्रयास किया। उनका उद्देश्य था—कम ऊर्जा, कम लागत और न्यूनतम पर्यावरणीय प्रभाव के साथ बड़े पैमाने पर समुद्री जल को पेयजल में परिवर्तित करना।

प्रकृति की जल-चयनात्मक प्रणालियों से प्रेरित होकर उन्होंने एक्वापोरिन प्रोटीन और नैनोप्रौद्योगिकी को जोड़ा। वर्षों के अनुसंधान के बाद विकसित एक्वापोरिन–ग्राफीन ऑक्साइड नैनोकंपोजिट झिल्ली पानी को तेजी से पारित करते हुए अधिकांश लवण और अशुद्धियाँ रोकने में सक्षम थी।

एक्वानोवा-1 नामक इस प्रणाली में कई तकनीकों को एकीकृत किया गया था। पहले चरण में ऊर्जा-कुशल रिवर्स ऑस्मोसिस (RO) द्वारा समुद्री जल से अधिकांश लवण हटाए जाते थे। इसके बाद बची हुई सान्द्र धारा को मेम्ब्रेन डिस्टिलेशन (MD) में भेजा जाता, जहाँ सौर ऊर्जा या औद्योगिक अपशिष्ट ऊष्मा का उपयोग करके अतिरिक्त जल पुनर्प्राप्त किया जाता था।

प्रणाली में ब्राइन प्रबंधन और पुनर्चक्रण की विशेष व्यवस्था थी। केंद्रित खारे जल से उपयोगी खनिजों की पुनर्प्राप्ति की जाती और शेष जल को पुनः प्रसंस्करण में भेजकर समुद्र में अत्यधिक सान्द्र ब्राइन के निर्वहन को न्यूनतम किया जाता। AI-आधारित नियंत्रण प्रणाली लवणता, झिल्ली की कार्यक्षमता, फाउलिंग, ऊर्जा खपत और जल की गुणवत्ता की वास्तविक समय में निगरानी करती थी।

कई वर्षों के परीक्षण के बाद एक्वानोवा-1 ने कम ऊर्जा खपत, नैनो-इंजीनियर्ड झिल्ली, नवीकरणीय ऊर्जा और उन्नत ब्राइन प्रबंधन को एकीकृत कर उच्च गुणवत्ता वाला पेयजल तैयार किया। बाद में इसके सौर एवं पवन ऊर्जा आधारित छोटे संयंत्र दूरस्थ तटीय क्षेत्रों तथा बड़े संयंत्र महानगरों में स्थापित किए गए, जिससे समुद्री जल एक महत्वपूर्ण वैकल्पिक जल-स्रोत बन गया।

डॉ. अरुणिमा से जब पूछा गया कि इस तकनीक की सबसे बड़ी उपलब्धि क्या है, तो उन्होंने कहा—"हमने समुद्र को मीठा नहीं किया; हमने विज्ञान की सहायता से उसके जल का सुरक्षित और टिकाऊ उपयोग करना सीखा है।"

एक्वानोवा-1 की कहानी दर्शाती है कि भविष्य की जल-सुरक्षा नए जल-स्रोत खोजने में नहीं, बल्कि उन्नत झिल्ली प्रौद्योगिकी, नवीकरणीय ऊर्जा, जल पुनर्चक्रण और वैज्ञानिक संसाधन प्रबंधन को एकीकृत करने में निहित है।

2. शून्य प्रतिरोध

देहरादून की एक ठंडी सुबह थी। हल्की धुंध के बीच रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (DRDO) की डिफेंस इलेक्ट्रॉनिक्स एप्लीकेशंस लेबोरेटरी (DEAL) की अत्याधुनिक प्रयोगशाला में असाधारण शांति थी। पिछले कई महीनों से डॉ. मुकेश जुयाल और उनकी टीम एक ऐतिहासिक चुनौती पर काम कर रहे थे—सामान्य दाब और कमरे के तापमान के निकट सुपरकंडक्टिविटी प्राप्त करना।

वर्ष 2053 में मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (MIT) से भारत लौटने के बाद मुकेश के मन में एक ही संकल्प था—यदि बिना अत्यधिक

शीतलन के सुपरकंडक्टिविटी को व्यावहारिक बनाया जा सके, तो ऊर्जा और इलेक्ट्रॉनिक्स की दुनिया बदल सकती है।

उनकी टीम ने एक नवीन नैनो-संरचित बहु-घटक पदार्थ विकसित किया था। नियंत्रित दाब और तापमान में तैयार इस पदार्थ की विद्युत चालकता का परीक्षण किया जा रहा था। जैसे-जैसे तापमान बढ़ाया गया, वैज्ञानिकों की निगाहें मॉनीटर पर टिक गईं।

अचानक स्क्रीन पर प्रतिरोध का मान तेजी से घटा और फिर लगभग शून्य हो गया।

मुकेश ने तुरंत दूसरे परीक्षण का निर्देश दिया। इस बार टीम ने केवल शून्य प्रतिरोध ही नहीं, बल्कि माइसनर प्रभाव की भी पुष्टि की—चुंबकीय क्षेत्र को पदार्थ के भीतर से बाहर धकेलने का वह विशिष्ट गुण, जो सुपरकंडक्टिविटी की निर्णायक पहचान है।

योगशाला में कुछ क्षणों के लिए पूर्ण सन्नाटा छा गया।

फिर मुकेश ने धीमे स्वर में कहा,

"यह केवल शून्य प्रतिरोध नहीं है... यह ऊर्जा के भविष्य की शुरुआत है।"

समाचार पूरी दुनिया में फैल गया। यदि यह तकनीक औद्योगिक स्तर पर विश्वसनीय और किफायती सिद्ध होती, तो बिजली के संचरण में प्रतिरोधजनित ऊर्जा हानि को अत्यंत कम किया जा सकता था। सुपरकंडक्टिंग विद्युत ग्रिड, उच्च-क्षमता ऊर्जा भंडारण, शक्तिशाली विद्युतचुंबक, चिकित्सा इमेजिंग, क्वांटम कंप्यूटिंग और मैग्लेव परिवहन जैसी तकनीकों के लिए नए रास्ते खुलने लगे।

कुछ वर्षों में भारत के कई शहरों में सुपरकंडक्टिंग पावर केबलों से जुड़े स्मार्ट ग्रिड स्थापित किए गए। नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों से प्राप्त बिजली को लंबी दूरी तक अत्यंत कम ऊर्जा हानि के साथ पहुँचाना संभव हुआ। उच्च-क्षमता वाले सुपरकंडक्टिंग चुंबकों ने तेज परिवहन और उन्नत वैज्ञानिक उपकरणों के विकास को भी नई गति दी।

हालाँकि, वैज्ञानिकों ने यह स्पष्ट किया कि सुपरकंडक्टिविटी की खोज अपने आप में अंतिम समाधान नहीं है। बड़े पैमाने पर उपयोग के लिए पदार्थ की स्थिरता, उत्पादन लागत, यांत्रिक मजबूती, विद्युत धारा वहन क्षमता और दीर्घकालिक विश्वसनीयता जैसी चुनौतियों को हल करना अभी भी आवश्यक था।

मुकेश मुस्कराए और बोले—"हमने केवल विद्युत प्रतिरोध को चुनौती दी है। असली उपलब्धि तब होगी, जब हम वैज्ञानिक ज्ञान की सीमाओं को भी चुनौती देना सीखेंगे।"

शायद विज्ञान की यात्रा भी ऐसी ही है—जहाँ जिज्ञासा बनी रहती है, वहाँ प्रतिरोध कभी अंतिम बाधा नहीं बनता।

3. अम्बापेप्टिन

वर्ष 2045 की दिल्ली की तपती गर्मियों में, तिमारपुर स्थित डिफेंस इंस्टीट्यूट ऑफ फिजियोलॉजी एंड अलाइड साइंसेज (DIPAS) की पोषण एवं जैवरसायन प्रयोगशाला में वैज्ञानिक डॉ. दिव्या तिवारी और उनकी टीम पुराने अभिलेखों का अध्ययन कर रही थी। तभी उन्हें लगभग तीन दशक पुरानी "प्रोजेक्ट माताजी" की एक फाइल मिली, जिस पर वैज्ञानिक डॉ. सोम नाथ सिंह का नाम दर्ज था।

फाइल में गुजरात के संन्यासी प्रहलाद जानी (1929–2020) से जुड़े पुराने पोषण और शरीर-क्रिया संबंधी परीक्षणों का विवरण था। जानी ने लंबे समय तक बिना भोजन और पानी के रहने का दावा किया था, हालांकि उनके दावों को लेकर वैज्ञानिक समुदाय में पर्याप्त प्रमाण और सहमति उपलब्ध नहीं थी।

फिर भी, पुराने नमूनों और अभिलेखों को आधुनिक प्रोटिओमिक्स, मेटाबोलोमिक्स और नैनोबायोटेक्नोलॉजी की सहायता से पुनः विश्लेषित किया गया। शोधकर्ताओं को एक असामान्य जैव-रासायनिक संकेत मिला—एक अज्ञात पेप्टाइड, जो प्रयोगशाला मॉडल में कोशिकाओं के ऊर्जा-उपयोग को कम कर उन्हें नियंत्रित उपापचयी अवस्था (metabolic suppression) में ले जाने की क्षमता रखता था।

वैज्ञानिकों ने इस काल्पनिक पेप्टाइड का नाम रखा—"अम्बापेप्टिन"।

वर्ष 2048 तक इसका कृत्रिम अनुरूप N-Sustain-45 विकसित किया गया। प्रारंभिक

परीक्षणों में पाया गया कि यह शरीर की ऊर्जा आवश्यकता को अस्थायी रूप से कम कर सकता है और कोशिकाओं को सीमित पोषक उपलब्धता में अधिक समय तक कार्यशील बनाए रख सकता है। हालांकि, यह भोजन और पानी का वास्तविक विकल्प नहीं था और इसके उपयोग के लिए कठोर चिकित्सकीय निगरानी आवश्यक थी।

वर्ष 2049 में हिमालयी सीमा पर एक गंभीर सैन्य आपातस्थिति उत्पन्न हुई। अत्यधिक ऊँचाई, कठोर मौसम और बाधित आपूर्ति मार्गों के कारण सैनिकों के लिए रसद पहुँचाना कठिन हो गया। इसी दौरान N-Sustain-45 पर आधारित तकनीक का सीमित और नियंत्रित उपयोग किया गया।

इससे सैनिकों की ऊर्जा आवश्यकता और चयापचयी दबाव को अस्थायी रूप से कम करने में सहायता मिली, जिससे वे सीमित संसाधनों में अधिक समय तक सक्रिय रह सके। अभियान सफल रहा और सैनिक सुरक्षित लौट आए।

युद्ध के बाद अम्बापेप्टिन पर शोध जारी रहा। वैज्ञानिकों ने स्पष्ट किया कि यह किसी चमत्कार का परिणाम नहीं, बल्कि मानव शरीर की उपापचयी अनुकूलन क्षमता को समझने की दिशा में एक नई वैज्ञानिक संभावना थी। डॉ. दिव्या ने पुरानी फाइल बंद करते हुए कहा—"विज्ञान रहस्य को चमत्कार नहीं मानता; वह उसे समझने का प्रयास करता है। कभी-कभी किसी अनसुलझे प्रश्न से ही भविष्य की सबसे बड़ी खोज जन्म लेती है।"

4. मेलानोट्रोनिक माया

कहने को तो दुनिया सभ्य हो रही थी, लेकिन वर्ष 2093 में भी नस्लीय भेदभाव पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ था। उत्तराखंड के कांडी गाँव की बायोकेमिस्ट डॉ. सपना नेगी को दक्षिण अफ्रीका की एक शोध यात्रा के दौरान इसके अप्रत्यक्ष प्रभावों का अनुभव हुआ। उन्होंने संकल्प लिया कि विज्ञान की सहायता से त्वचा के रंग को लेकर बने सामाजिक पूर्वाग्रहों को चुनौती दी जाएगी।

चार वर्षों के अथक शोध के बाद, वर्ष 2097 में उन्होंने विकसित किया—"मेलानोट्रोनिक सीरम"। यह एक काल्पनिक जैव-तकनीकी प्रणाली थी, जो त्वचा की मेलानिन-उत्पादन प्रक्रिया और मेलानोसाइट कोशिकाओं की गतिविधि को अस्थायी रूप से नियंत्रित कर त्वचा के रंग में परिवर्तन ला सकती थी। सपना का उद्देश्य सौंदर्य नहीं, बल्कि यह सिद्ध करना था कि त्वचा का रंग मानव की पहचान या क्षमता का मापदंड नहीं हो सकता।

लेकिन तकनीक का दुरुपयोग शुरू हो गया। अपराधी अपनी त्वचा का रंग बदलकर पहचान छिपाने लगे। सपना को एहसास हुआ कि विज्ञान ने समानता का एक साधन तो दिया था, लेकिन उसका उपयोग अपराध के लिए भी किया जा सकता था।

इसी बीच, बायोजेनिक क्राइम डिवीजन की प्रमुख दीपांजलि एक रहस्यमयी हत्या की जाँच कर रही थीं। संदिग्ध व्यक्ति के चेहरे और त्वचा का रंग लगातार बदलता दिखाई दे रहा था। पारंपरिक पहचान प्रणालियाँ विफल थीं।

जाँच अंततः सपना की प्रयोगशाला तक पहुँची। दोनों वैज्ञानिकों ने मिलकर एक नई तकनीक विकसित की—"डर्मल स्पेक्ट्रोमैट्रिक स्कैनर"। यह उन्नत बायोसेंसर त्वचा के रंग को नहीं, बल्कि त्वचा के भीतर मौजूद अपेक्षाकृत स्थिर मॉलिक्यूलर और जैव-रासायनिक सिग्नेचर का विश्लेषण करता था। अब कोई व्यक्ति अपना त्वचा-रंग कितनी भी बार बदल ले, उसकी जैविक पहचान छिपाना कठिन हो गया। कुछ ही समय में इस तकनीक की सहायता से दुनिया भर में ऐसे कई अपराधी पकड़े गए, जो कृत्रिम रूप से अपनी पहचान बदलकर कानून से बच रहे थे।

एक दिन एयरपोर्ट की सुरक्षा जाँच के दौरान स्कैनर ने एक संदिग्ध व्यक्ति की पहचान कर ली। वह उसी गुप्त नेटवर्क का संचालक था, जो अपराधियों को नई त्वचा-पहचान उपलब्ध कराता था।

खबर सुनकर सपना ने गहरी साँस ली। दीपांजलि ने पूछा, "क्या तुम्हें लगता है कि हमने अपनी समस्या हल कर दी?" सपना मुस्कराई और बोली—"नहीं, दीपू। विज्ञान केवल हमें शक्तिशाली साधन देता है। उसका उपयोग मानवता के लिए होगा या उसके विरुद्ध—यह निर्णय हमेशा मनुष्य को ही करना होगा।" उस दिन सपना को समझ आया कि रंग बदलने वाली तकनीक से रंगभेद समाप्त नहीं होता; रंगभेद तब समाप्त होता है, जब मनुष्य की दृष्टि बदलती है।

वर्तमान वैश्विक नेतृत्व में विश्व कल्याण के भाव का अभाव है

प्रहलाद सबनानी

श्री प्रह्लाद सबनानी, उप-महाप्रबंधक भारतीय स्टेट बैंक, कारपोरेट केंद्र, मुम्बई से सेवा निवृत हैं। बैंक में विभिन्न पदों पर 40 वर्षों का अनुभव। आपने बैंकिंग एवं वित्तीय पत्रिकाओं के लिए लेख लिखे हैं एवं बैंकिंग सम्मेलनों में शोधपत्र प्रस्तुत किए हैं। व्यवसाय प्रशासन में स्नात्तकोतर (MBA) बैंकिंग एवं वित्त में विशेषज्ञता के साथ IGNOU, नई दिल्ली एवं MA (अर्थशास्त्र) की डिग्री, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर। CAIIB, बैंक प्रबंधन में डिप्लोमा, मानव संसाधन प्रबंधन में डिप्लोमा एवं वित्तीय सेवाओं में डिप्लोमा भारतीय बैंकिंग एवं वित्तीय संस्थान, मुंबई। भारतीय बैंक संघ, मुंबई द्वारा 'सीएच भाभा बैंकिंग रिसर्च स्कॉलरशिप'। आप तीन पुस्तकों के लेखक हैं - (i) विश्व व्यापार संगठन: भारतीय बैंकिंग एवं उद्योग पर प्रभाव, (ii) बैंकिंग टुडे, एवं (iii) बैंकिंग अपडेट।

आज विश्व के कुछ देशों में सत्ता उस विचारधारा के दलों के पास आ गई है जो शक्ति के मद में चूर हैं एवं अपने लिए प्रशंसा प्राप्त करना चाहते हैं। उनके विचारों में विश्व कल्याण की भावना का पूर्णत: अभाव है। इन देशों के नेतृत्व की कार्यप्रणाली से कुछ देशों के बीच आपस में टकराव पैदा होता दिखाई दे रहा है। दो देशों के बीच की समस्याओं को हल करने के प्रयास के स्थान पर किसी एक देश का पक्ष लेकर दूसरे देश के विरुद्ध खड़े हो जाना भी इन देशों की कार्यप्रणाली का हिस्सा बनता जा रहा है। इस कार्यप्रणाली से कुछ देशों के बीच आपस में युद्ध की स्थिति है। इजराईल एवं ईरान के बीच एवं रूस एवं यूक्रेन के बीच तथा कम्बोडिया एवं थाईलैंड के बीच छिड़ा हुआ युद्ध इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

दरअसल, दो देशों के बीच युद्ध छिड़ने से चौधराहट करने वाले देशों द्वारा अपने देश में निर्मित हथियारों को युद्ध करने वाले देशों को बेचा जाता है जिससे इन देशों में प्रभावशाली लाबी संतुष्ट होती है और वह इन देशों में चुनाव के समय राजनैतिक दलों की मदद करने का प्रयास करती है। पूंजीवादी देशों में कोरपोरेट जगत द्वारा ही सत्ता की स्थापना की जाती है। सत्ता प्राप्त करने के बाद इन्हीं राजनैतिक दलों द्वारा इस कोरपोरेट जगत के हितों को साधने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार इन देशों में राजनैतिक दलों एवं कोरपोरेट जगत का एक नेक्सस अपने अपने हितों का ध्यान रखने के लिए सक्रिय रहता है। अमेरिका में भी आज यही स्थिति दिखाई दे रही हैं। अमेरिका में हथियारों का उत्पादन करने वाली कम्पनियों की, वर्तमान सत्ता के गलियारे में, अच्छी पैठ दिखाई देती है।

वर्तमान वैश्विक नेतृत्व द्वारा विश्व कल्याण पर विचार किए जाने एवं छोटे छोटे अविकसित एवं विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं की सहायता किए जाने के स्थान पर अन्य देशों, जिनके नेता इन तथाकथित विकसित देशों की अमानवीय शर्तों पर ध्यान नहीं दे रहे हैं, की अर्थव्यवस्थाओं को बर्बाद किये जाने की धमकियां तक दी जा रही हैं। यूरोपीयन यूनियन के अध्यक्ष ने भारत की अर्थव्यवस्था को बर्बाद करने की धमकी इसलिए दी है क्योंकि भारत, रूस से कच्चे तेल का आयात करता है। इसी प्रकार, ट्रम्प प्रशासन द्वारा भारत एवं रूस की अर्थव्यवस्थाओं को मृत अर्थव्यवस्था की श्रेणी का बताया है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सरसंघचालक श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर ने आज से 65/70 वर्ष पूर्व ही साम्यवादी एवं पूंजीवादी विचारधारा पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था कि “न तो साम्यवाद और न ही पूंजीवाद संसार को एक सूत्र में बांध सकेंगे। इसके पीछे उन्होंने कुछ बुनियादी कारण बताए थे। भौतिकवादी दर्शन, जो मनुष्य को एक प्राणी मात्र समझता है और मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति को ही सर्वोच्च लक्ष्य मानता है, वह मनुष्य में स्पर्धा और संघर्ष का भाव तो उत्पन्न कर सकता है, उसमें एकता और सौहार्द पैदा नहीं कर सकता। कारण स्पष्ट है - भौतिकता की भूमि पर मतभेद और मार्गों की भिन्नता अनिवार्य हो जाती है। वे अलगाव और वर्चस्व की धारा को बल प्रदान करते हैं। जो लोग संसार को भौतिकता के यथार्थ से देखते हैं उनके लिए समन्वय और एकात्मता का कोई महत्व नहीं है। वे सहयोग के

विषय में सोच ही नहीं सकते। यह तो भारत की दृष्टि है, जब हम इन विभिन्नताओं के भीतर छिपी आंतरिक एकता का अनुभव करते हैं, जब हम सम्पूर्ण एकात्मता की अनुभूति कर पाते हैं। भौतिकवादी दृष्टिकोण में हम अपना अलग और बिरला अस्तित्व समझने लगते हैं, जिनमें पारस्परिक प्रेम और अपनत्व का कोई स्थान नहीं होता। ऐसे प्राणियों में अपनी स्वार्थपरता पर नियंत्रण करने और समस्त मानवजाति की भलाई में बाधक तत्वों को नष्ट करने की भी कोई प्रेरणा नहीं होती हैं।" आज अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न देशों की सत्ता में बैठे विभिन्न राजनैतिक दलों की स्थिति को देखते हुए, 65/70 वर्ष पूर्व प्रकट किए गए उक्त विचार आज कितने सटीक बैठते हैं।

भारतीय जीवन पद्धति ही एक मात्र ऐसी पद्धति है जो सामाजिक विकास को अवरुद्ध किए बिना वैयक्तिक स्वतंत्रता को सुनिश्चित करती है। पश्चिमी दर्शन दो पद्धतियों पर विश्वास करता है - लोकतंत्र और साम्यवाद। लोकतंत्र ने स्वार्थपरता को बढ़ावा दिया और एक मनुष्य को दूसरे के विरुद्ध खड़ा कर दिया। यह सर्वविदित है। इसमें मनुष्य के लिए कहीं भी शांति नहीं है। इस व्यवस्था में आध्यात्मिकता के विकास का कोई अवसर अथवा मार्ग नहीं है। आत्म-प्रशंसा और पर निंदा जो प्रायः चुनावों के समय देखी जा सकती है, आध्यात्मिकता की हत्या कर देती है। दूसरी ओर, साम्यवाद मस्तिष्क को एक ही विचारधारा से ग्रसित कर देता है। यह मनुष्य की वैयक्तिकता का विनाश कर देता है किन्तु मनुष्य केवल पशु नहीं है जो खाते पीते है और संतानोत्पति मात्र करते हैं। मनुष्य में सोचने, विचारने, चिंतन एवं मनन करने की शक्ति भी होती है जिसके माध्यम से कर्म एवं अर्थ सम्बंधी कार्य को धर्म के साथ जोड़कर सम्पन्न करने की क्षमता विकसित होती है। इस शक्ति को भौतिक वस्तुओं की सम्पन्नता के बीच भी प्राप्त किया जा सकता है यदि व्यक्ति का झुकाव अध्यात्म की ओर हो।

पूंजीवादी एवं साम्यवादी विचारधारा के ठीक विपरीत भारतीय दर्शन में व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक एकता को परस्पर आश्रितता के माध्यम से दोनों को ही सुनिश्चित किया गया है। प्राचीन काल में भारत के नागरिक आर्थिक दबाव से मुक्त रहते थे, क्योंकि किसी भी परिवार में शिशु के जन्म के साथ ही उसे एक पुश्तैनी व्यवसाय को चलायमान रखने की गारंटी रहती थी। परिवार में पुश्तैनी व्यवसाय को आगे बढ़ाने की जिम्मेदारी आने वाली पीढ़ी के कंधो पर रहती थी। अतः युवा पीढ़ी पर आर्थिक दृष्टि से दबाव अथवा तनाव नहीं रहता था। अब तो पश्चिमी दार्शनिक भी भारतीय आर्थिक दर्शन के विभिन्न आयामों पर गम्भीरता से विचार करने लगे हैं।

वैश्विक स्तर पर पूंजीवादी एवं साम्यवादी व्यवस्थाओं में आ रही समस्याओं के समाधान में असफल रहने के बाद अब कई देश भारत के दर्शन पर रिसर्च कर रहे हैं एवं इस व्यवस्था को अपने देश में लागू करने पर गम्भीरता से विचार कर रहे हैं। सनातन हिंदू संस्कृति के संस्कारों से ही विश्व में शांति स्थापित की जा सकती है। अतः भारत का विश्व गुरु बनना केवल भारत के लिए ही नहीं बल्कि विश्व के भले के लिए भी आवश्यक है। भारत में पनपी सनातन संस्कृति मनुष्य को सांसारिक आवश्यकताओं से चिंतामुक्त करके आध्यात्मिक एवं परोपकारी बनाती है। भारत में समस्त वर्णों में उच्च श्रेणी के संत महात्माओं का जन्म हुआ है। यही कारण है कि सभी जातियों में आध्यात्मिकता के आधार स्तम्भ पर खड़ा यह एक आश्चर्यजनक लोकतंत्र है। इस पृष्ठभूमि में भारत में सभी नागरिक समान और एकात्म हैं। इसी अध्यात्म के बल पर कालांतर में भारत विश्व गुरु बन गया था। आज के परिप्रेक्ष्य में एक बार पुनः पूरे विश्व को एक बार पुनः भारतीय अध्यात्म की आवश्यकता है।

आज के वैश्विक परिदृश्य में भारत की भूमिका केवल आर्थिक या राजनीतिक शक्ति तक सीमित नहीं होनी चाहिए, बल्कि उसे ज्ञान, विज्ञान, नैतिकता और मानवीय मूल्यों के क्षेत्र में भी नेतृत्व करना चाहिए। भारतीय दर्शन का वसुधैव कुटुम्बकम् का विचार समस्त मानवता को एक परिवार के रूप में देखने की प्रेरणा देता है। यदि आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी की उपलब्धियों को भारतीय आध्यात्मिक चिंतन, प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता, सह-अस्तित्व, संयम और परोपकार की भावना के साथ जोड़ा जाए, तो मानव सभ्यता के सामने उपस्थित पर्यावरण संकट, सामाजिक असमानता, हिंसा और मानसिक तनाव जैसी अनेक चुनौतियों के समाधान की नई राह खुल सकती है।

वर्मीफिल्ट्रेशन: एक हरित एवं सतत अपशिष्ट जल उपचार तकनीक

डॉ. श्यामाश्री घोष

1. नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ़ साइंस एजुकेशन एंड रिसर्च, भुवनेश्वर, ओडिशा
2. होमी भाभा नेशनल इंस्टीट्यूट, अणुशक्ति नगर, मुंबई

सार:

तीव्र शहरीकरण, औद्योगिकीकरण और जनसंख्या वृद्धि के कारण स्वच्छ जल की उपलब्धता पर दबाव बढ़ रहा है। पारंपरिक अपशिष्ट जल शोधन संयंत्र प्रायः ऊर्जा-गहन, महंगे और अधिक रखरखाव वाले होते हैं। ऐसे में वर्मीफिल्ट्रेशन (Vermifiltration) एक कम-ऊर्जा, कम लागत वाली प्रकृति-आधारित समाधान (Nature-based Solution) के रूप में उभर रहा है। इसमें केंचुओं और सहजीवी सूक्ष्मजीवों की संयुक्त जैविक क्रियाओं द्वारा अपशिष्ट जल का उपचार किया जाता है। यह तकनीक कार्बनिक पदार्थ, निलंबित ठोस, पोषक तत्वों और कुछ रोगजनकों को प्रभावी रूप से कम कर सकती है। सिविल इंजीनियरिंग में इसका उपयोग विकेंद्रीकृत सीवेज उपचार, ग्रामीण स्वच्छता और जल पुनःउपयोग में संभावनाशील है। विभिन्न अध्ययनों में उपचार दक्षता प्रणाली और संचालन स्थितियों के अनुसार BOD में लगभग 70–95% तथा COD में 65–90% तक कमी दर्ज की गई है।

1. परिचय

भारत सहित विश्व के अनेक देशों में जल संकट एक गंभीर चुनौती बन चुका है। नगरों और उद्योगों से उत्पन्न अपशिष्ट जल का सुरक्षित उपचार तथा पुनःउपयोग आवश्यक है। संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्य (SDG-6) के अनुरूप कम लागत, कम ऊर्जा खपत और पर्यावरण-अनुकूल उपचार तकनीकों की आवश्यकता बढ़ रही है।

वर्मीफिल्ट्रेशन (Vermifiltration) ऐसी ही एक प्रकृति-आधारित जैव-प्रौद्योगिकी है, जिसमें केंचुए, सूक्ष्मजीव और फिल्टर मीडिया मिलकर अपशिष्ट जल का उपचार करते हैं। केंचुए कार्बनिक पदार्थों के जैवअपघटन को बढ़ावा देने के साथ फिल्टर बेड की संरचना और पारगम्यता बनाए रखने में मदद करते हैं, जिससे क्लॉगिंग की समस्या कम हो सकती है।

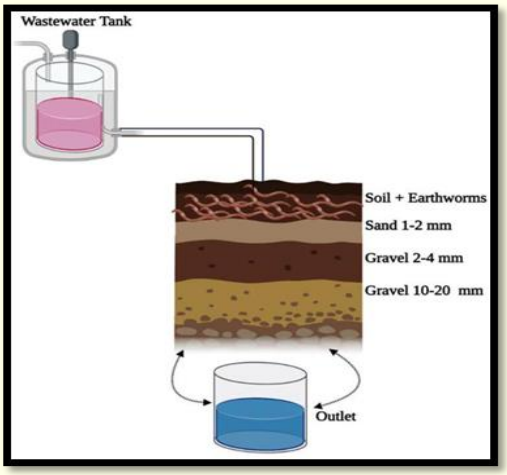

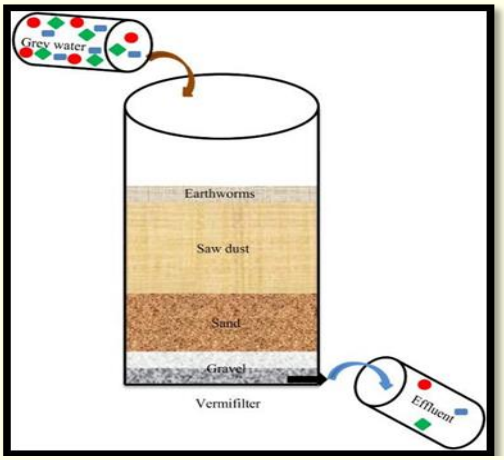

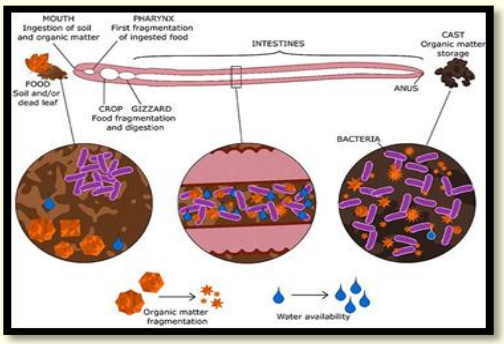

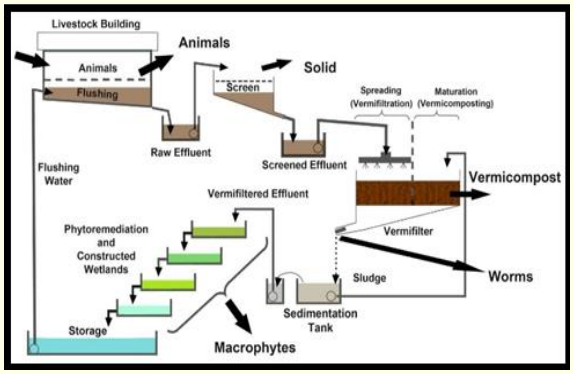

चित्र-1: वर्मीफिल्ट्रेशन

2. वर्मीफिल्ट्रेशन क्या है?

वर्मीफिल्ट्रेशन (Vermifiltration) एक जैविक निस्पंदन तकनीक है, जिसमें बजरी (Gravel), रेत (Sand), सक्रियित कार्बन (Activated Carbon) आदि फिल्टर माध्यमों की परतों से युक्त बेड में केंचुओं और सूक्ष्मजीवों की संयुक्त जैविक क्रियाओं द्वारा अपशिष्ट जल का उपचार किया जाता है। अपशिष्ट जल फिल्टर बेड से धीरे-धीरे गुजरते समय कार्बनिक पदार्थों और अन्य प्रदूषकों का जैवअपघटन तथा निस्पंदन होता है, जिससे जल की गुणवत्ता में सुधार आता है।

3. कार्य सिद्धांत

वर्मीफिल्ट्रेशन में अपशिष्ट जल का उपचार निम्न प्रमुख प्रक्रियाओं के संयुक्त प्रभाव से होता है:

भौतिक निस्पंदन (Physical Filtration): फिल्टर माध्यम निलंबित ठोस पदार्थों और बड़े कणों को रोकते हैं।

जैविक अपघटन (Biological Degradation): केंचुए और सूक्ष्मजीव कार्बनिक पदार्थों को सरल यौगिकों में परिवर्तित करते हैं।

सूक्ष्मजीवीय क्रियाएँ (Microbial Activity): सूक्ष्मजीव कार्बनिक प्रदूषकों के अपघटन तथा जल शोधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

पोषक तत्वों का रूपांतरण (Nutrient Transformation): नाइट्रोजन और फॉस्फोरस जैसे पोषक तत्व जैव-रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा विभिन्न रूपों में परिवर्तित होते हैं।

रोगजनक दमन (Pathogen Suppression): केंचुओं, सूक्ष्मजीवों और फिल्टर बेड की संयुक्त क्रियाएँ रोगजनक सूक्ष्मजीवों की संख्या को कम करने में सहायक होती हैं।

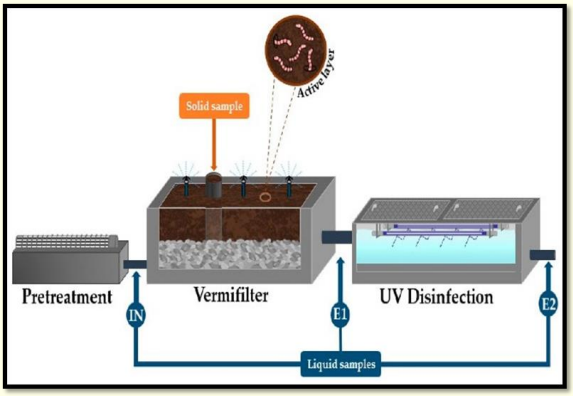

चित्र-2: वर्मीफिल्ट्रेशन प्रक्रिया

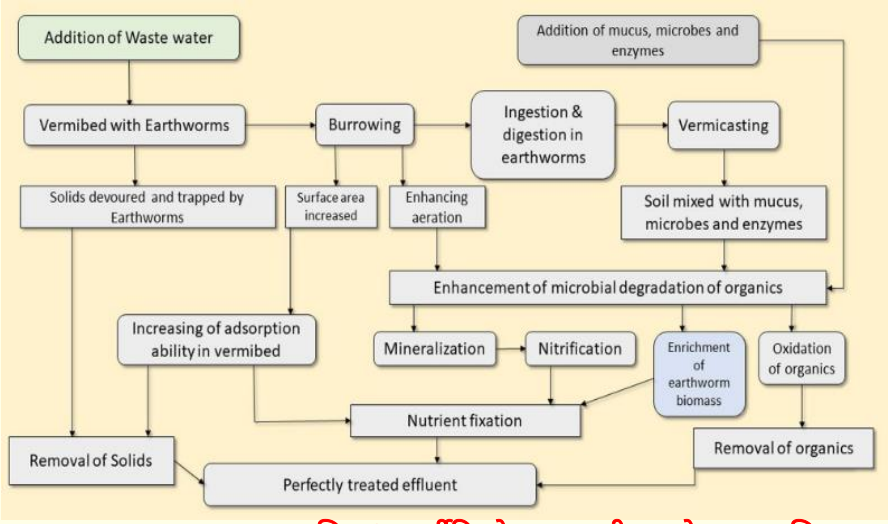

चित्र-3: वर्मीफिल्ट्रेशन प्रणाली का योजनाबद्ध चित्र

अपशिष्ट जल ➡ वितरण पाइप ➡ सक्रिय केंचुआ परत (Earthworms+Microbes) ➡ जैविक माध्यम (कोकोपीट/ कम्पोस्ट) ➡ रेत की परत ➡ बजरी की परत जल संग्रह पाइप ➡ उपचारित जल

4. वर्मीफिल्टर के प्रमुख घटक:

केंचुए (Earthworms): कार्बनिक पदार्थों का जैव-अपघटन तथा फिल्टर बेड की संरचना और पारगम्यता बनाए रखने में सहायता

सूक्ष्मजीव (Microorganisms): कार्बनिक प्रदूषकों का अपघटन और जैविक शोधन

रेत (Sand): सूक्ष्म कणों और निलंबित ठोस पदार्थों का निस्पंदन।

बजरी (Gravel): जल निकास और फिल्टर बेड को संरचनात्मक सहारा प्रदान करना।

जैविक (Organic/Biological) माध्यम: सूक्ष्मजीवों के विकास और सक्रिय जैवफिल्म के निर्माण के लिए आवास प्रदान करना।

वितरण प्रणाली (Distribution System): अपशिष्ट जल का फिल्टर बेड पर समान और नियंत्रित वितरण।

संग्रह एवं निकास प्रणाली: उपचारित जल का प्रभावी संग्रह और निकास।

5. वर्मीफिल्ट्रेशन में प्रयुक्त प्रमुख केंचुआ प्रजातियाँ

Eisenia fetida: वर्मीफिल्ट्रेशन में व्यापक रूप से प्रयुक्त; उच्च जैविक सक्रियता और विभिन्न परिस्थितियों में अनुकूलन क्षमता।

Eudrilus eugeniae: तेज़ वृद्धि और प्रजनन; गर्म जलवायु में अच्छी तरह अनुकूलित।

Perionyx excavates: उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के लिए उपयुक्त; भारत में व्यापक रूप से पाया जाता है।

Lampito mauritii: भारतीय जलवायु और स्थानीय परिस्थितियों के लिए अनुकूल; जैविक अपशिष्ट के अपघटन में उपयोगी।

6. प्रदूषकों के हटने की प्रक्रिया

वर्मीफिल्ट्रेशन में प्रदूषकों का निष्कासन भौतिक निस्पंदन, जैव-अपघटन तथा सूक्ष्मजीवीय क्रियाओं के संयुक्त प्रभाव से होता है।

(i) जैविक पदार्थों का अपघटन: केंचुए कार्बनिक पदार्थों को छोटे कणों में विखंडित करते हैं, जबकि सूक्ष्मजीव एंजाइमों की सहायता से उनका जैव-अपघटन करते हैं। परिणामस्वरूप BOD और COD में उल्लेखनीय कमी आती है।

(ii) **नाइट्रोजन का रूपांतरण:** जैविक नाइट्रोजन क्रमिक रूप से अमोनिया → नाइट्राइट → नाइट्रेट में परिवर्तित होता है। इस प्रक्रिया में नाइट्रीफाइंग सूक्ष्मजीव महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आगे की परिस्थितियों में नाइट्रेट का डीनाइट्रीफिकेशन भी हो सकता है।

(iii) **निलंबित ठोस पदार्थों का निष्कासन:** रेत, बजरी और अन्य फिल्टर माध्यम निलंबित ठोस पदार्थों तथा सूक्ष्म कणों को रोकते हैं, जबकि केंचुओं की गतिविधि फिल्टर बेड में छिद्रता बनाए रखने और क्लॉगिंग कम करने में सहायक होती है।

(iv) **रोगजनकों का दमन:** रोगजनकों में कमी कई प्रक्रियाओं के संयुक्त प्रभाव से होती है, जैसे फिल्टर बेड में अवरोधन, सूक्ष्मजीवों के बीच प्रतिस्पर्धा, जैविक अपघटन तथा केंचुओं की आंत से गुजरने के दौरान होने वाले जैविक प्रभाव। इससे फीकल कोलीफॉर्म सहित अनेक रोगजनकों की संख्या कम हो सकती है।

(v) **पोषक तत्वों का प्रबंधन:** नाइट्रोजन और फॉस्फोरस का रूपांतरण तथा आंशिक अवशोषण/स्थिरीकरण होता है। इसलिए उपचारित जल का पुनः उपयोग करने से पहले पोषक तत्वों की शेष मात्रा और उपयोग के उद्देश्य के अनुसार अतिरिक्त उपचार की आवश्यकता हो सकती है।

7. उपचार दक्षता

वर्मीफिल्ट्रेशन की उपचार दक्षता अपशिष्ट जल की प्रकृति, केंचुओं की प्रजाति, फिल्टर माध्यम, हाइड्रोलिक लोडिंग दर और संचालन परिस्थितियों पर निर्भर करती है। विभिन्न अध्ययनों में सामान्यतः निम्नलिखित अनुमानित हटाने की दक्षता दर्ज की गई है:

पैरामीटर	**अनुमानित हटाने की दक्षता** (%)
BOD	70–95
COD	65–90
TSS	80–95
Turbidity (गंदलापन)	80–95
Fecal Coliform	90–99+
Ammonia (NH_3-N)	50–90

नोट: विभिन्न अध्ययनों में प्राप्त ये सामान्य मान हैं; वास्तविक दक्षता अपशिष्ट जल की गुणवत्ता, डिजाइन, संचालन और पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुसार भिन्न हो सकती है। खासकर रोगजनक नियंत्रण के लिए वर्मीफिल्ट्रेशन के बाद अतिरिक्त कीटाणुशोधन (जैसे UV या क्लोरीनीकरण) आवश्यक हो सकता है, यदि उपचारित जल का उपयोग पेयजल या अन्य उच्च-गुणवत्ता वाले पुनः उपयोग के लिए किया जाना हो।

8. अनुप्रयोग

वर्मीफिल्ट्रेशन का उपयोग विकेंद्रीकृत अपशिष्ट जल उपचार, जल पुनः उपयोग और सतत शहरी विकास में किया जा सकता है।

घरेलू सीवेज उपचार: आवासीय कॉलोनियों, अपार्टमेंट, छात्रावास, विद्यालय और अस्पतालों में।

विकेंद्रीकृत सीवेज उपचार (DEWATS): ग्रामीण क्षेत्रों, छोटे कस्बों, पंचायतों और पर्यटन स्थलों में।

औद्योगिक अपशिष्ट जल: डेयरी, खाद्य एवं पेय, वस्त्र तथा कागज उद्योगों के अपेक्षाकृत जैव-अवक्रमणीय अपशिष्ट जल के उपचार में।

ग्रे-वॉटर एवं वर्षाजल प्रबंधन: उपचारित जल का बागवानी, सिंचाई और शौचालय फ्लशिंग जैसे गैर-पेय उपयोगों में पुनः उपयोग।

लैंडस्केप एवं हरित अवसंरचना: पार्कों, विश्वविद्यालय परिसरों, हरित भवनों और स्मार्ट सिटी परियोजनाओं में।

भौमजल पुनर्भरण: उपयुक्त अतिरिक्त उपचार और नियामकीय मानकों के अनुपालन के बाद उपचारित जल का भौमजल पुनर्भरण में उपयोग।

इस प्रकार, वर्मीफिल्ट्रेशन नगर एवं घरेलू सीवेज के उपचार, जल पुनर्चक्रण और विकेंद्रीकृत जल प्रबंधन के लिए एक संभावित टिकाऊ विकल्प है।

9. वर्मीफिल्ट्रेशन के लाभ

पर्यावरणीय: कम ऊर्जा खपत, कम कार्बन उत्सर्जन और प्रकृति-आधारित उपचार प्रक्रिया।
आर्थिक: अपेक्षाकृत कम निर्माण एवं संचालन लागत तथा कम रखरखाव।
तकनीकी: प्रभावी जैविक उपचार, कम स्लज उत्पादन और उचित डिजाइन में क्लॉगिंग की कम संभावना।
सामाजिक: ग्रामीण एवं विकेंद्रीकृत क्षेत्रों के लिए उपयुक्त तथा जल संरक्षण और स्थानीय रोजगार में सहायक।

10. सीमाएँ

अत्यधिक विषैले या कठिन-अपघटनीय औद्योगिक अपशिष्टों के लिए सीमित उपयोगिता।

तापमान, pH और हाइड्रोलिक लोडिंग में अत्यधिक बदलाव से उपचार दक्षता प्रभावित हो सकती है।

केंचुओं की स्वस्थ आबादी और उपयुक्त पर्यावरणीय परिस्थितियाँ बनाए रखना आवश्यक है।

नियमित निगरानी और दीर्घकालीन रखरखाव की आवश्यकता होती है।

11. भविष्य की संभावनाएँ

भविष्य के अनुसंधान में माइक्रोप्लास्टिक, औषधीय अवशेष, PFAS और एंटीबायोटिक-प्रतिरोधी जीन (ARGs) जैसे उभरते प्रदूषकों के नियंत्रण पर ध्यान दिया जा रहा है। बायोचार-संयुक्त वर्मीफिल्टर, निर्मित आर्द्रभूमि (Constructed Wetlands), IoT तथा AI-आधारित निगरानी और प्रक्रिया अनुकूलन जैसी तकनीकों के एकीकरण से इसकी दक्षता और उपयोगिता बढ़ाई जा सकती है।

12. निष्कर्ष

वर्मीफिल्ट्रेशन एक कम ऊर्जा-खपत, अपेक्षाकृत कम लागत और पर्यावरण-अनुकूल अपशिष्ट जल उपचार तकनीक है। सिविल इंजीनियरिंग में यह विशेष रूप से विकेंद्रीकृत सीवेज उपचार, ग्रामीण स्वच्छता, हरित भवनों और जल पुनः उपयोग के लिए उपयोगी है। केंचुओं, सूक्ष्मजीवों और फिल्टर माध्यमों की संयुक्त क्रिया इसे सतत जल प्रबंधन के लिए एक संभावित विकल्प बनाती है। भविष्य में उन्नत फिल्टर माध्यमों और स्मार्ट निगरानी प्रणालियों के एकीकरण से इसकी उपयोगिता और बढ़ सकती है।

संदर्भ:

1. Singh, R., Bhunia, P., & Dash, R. R. (2017). A mechanistic review on vermifiltration of wastewater: Design, operation and performance. Journal of Environmental Management, 197, 656.
2. Dey Chowdhury, S., Bhunia, P., & Surampalli, R. Y. (2022). Vermifiltration: Strategies and techniques to enhance the organic and nutrient removal performance from wastewater. Water Environment Research.
3. Das, P., & Paul, K. K. (2023). A review on integrated vermifiltration as a sustainable treatment method for wastewater. Journal of Environmental Management, 328, 116974.
4. New developments on vermifiltration as a bio-ecological wastewater treatment technology. Heliyon (2024).
5. Miito, G., & Basika, E. (2025). Advances in vermifiltration: A comprehensive review of recent developments and applications. Environmental Challenges.

गुरुत्वाकर्षण क्या है?

डॉ. राजीव अग्रवाल

'गुरुत्वाकर्षण' शब्द 'गुरुत्व' और 'आकर्षण' से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है—द्रव्यमान वाली वस्तुओं के बीच उत्पन्न पारस्परिक आकर्षण बल। यह ब्रह्मांड का एक मूलभूत गुण है, जो तारों, ग्रहों और आकाशगंगाओं की संरचना व गति को नियंत्रित करता है। पृथ्वी की सूर्य की परिक्रमा, वायुमंडल और महासागरों का स्थायित्व तथा सूर्य के भीतर नाभिकीय क्रियाओं के लिए आवश्यक दबाव और तापमान बनाए रखने में भी इसका महत्वपूर्ण योगदान है।

गुरुत्वाकर्षण को समझाने में न्यूटन और आइंस्टाइन के सिद्धांत महत्वपूर्ण हैं। न्यूटन ने इसे एक बल माना, जबकि आइंस्टाइन ने इसे दिक्काल के वक्रण का परिणाम बताया। आज वैज्ञानिक इसके क्वांटम स्वरूप को समझने का प्रयास कर रहे हैं। गुरुत्वाकर्षण की प्रकृति, प्रकाश पर इसके प्रभाव और क्वांटम सिद्धांत से इसके संबंध जैसे प्रश्न आधुनिक भौतिकी के प्रमुख शोध विषय हैं।

न्यूटन का सार्वभौमिक गुरुत्वाकर्षण का नियम

सर आइज़क न्यूटन (1643–1727) ने सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण का नियम प्रतिपादित किया। उनके अनुसार, ब्रह्मांड की प्रत्येक द्रव्यमान वाली वस्तु दूसरी वस्तु को आकर्षित करती है। यह आकर्षण बल दोनों वस्तुओं के द्रव्यमानों के गुणनफल के समानुपाती और उनके बीच की दूरी के वर्ग के व्युत्क्रमानुपाती होता है। हालांकि, न्यूटन इस बल के उत्पन्न होने का कारण स्पष्ट नहीं कर सके। इसे निम्न सूत्र से व्यक्त किया जाता है:

$$F = G (M_1 M_2) / R^2$$

जहाँ, F = दोनों वस्तुओं के बीच गुरुत्वाकर्षण बल

M_1, M_2 = दोनों वस्तुओं के द्रव्यमान

R = उनके केंद्रों के बीच की दूरी

G = सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण स्थिरांक

न्यूटन का यह सिद्धांत गुरुत्वाकर्षण को गणितीय रूप से समझाने का पहला सफल प्रयास था, जिसने आधुनिक भौतिकी की नींव रखी।

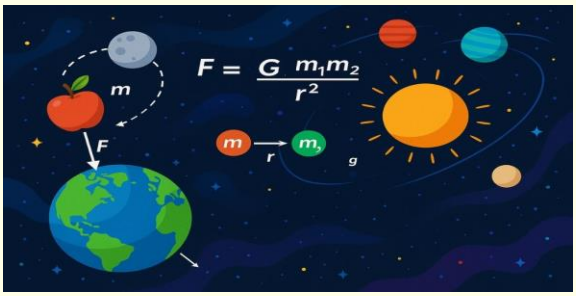

गुरुत्वाकर्षण का सार्वत्रिक स्थिरांक G दो 1 किलोग्राम द्रव्यमान वाली वस्तुओं के बीच 1 मीटर दूरी पर लगने वाले गुरुत्वाकर्षण बल को दर्शाता है। इसका मान 6.674×10^{-11} $N{\cdot}m^2/kg^2$ है, जिसे 1798 में ब्रिटिश वैज्ञानिक हेनरी कैवेंडिश ने प्रयोगात्मक रूप से निर्धारित किया था। इसका मान बहुत छोटा होने के कारण छोटी वस्तुओं के बीच गुरुत्वाकर्षण बल नगण्य प्रतीत होता है, लेकिन विशाल खगोलीय पिंडों में इसका सामूहिक प्रभाव अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। गुरुत्वाकर्षण सदैव आकर्षणात्मक है और लंबी दूरी तक प्रभावी रहता है। न्यूटन से पहले भी अनेक विचारकों ने गुरुत्वाकर्षण पर विचार किया, लेकिन इसे गणितीय नियम के रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय न्यूटन को जाता है।

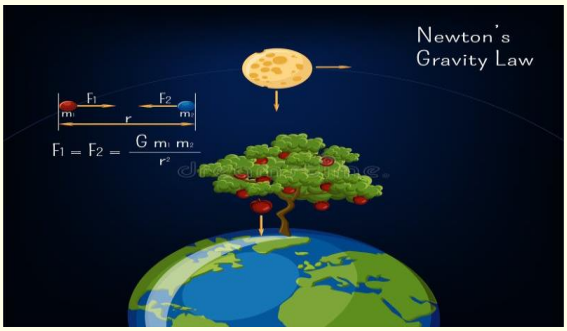

पृथ्वी और उसके पास स्थित किसी पत्थर या सेब के बीच पारस्परिक आकर्षण बल कार्य करता है, जिसे गुरुत्वाकर्षण बल कहते हैं। न्यूटन के अनुसार, दोनों पिंड एक-दूसरे को समान परिमाण के बल से आकर्षित करते हैं, जिसकी गणना सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण नियम से की जा सकती है। गुरुत्व किसी एक वस्तु का गुण नहीं, बल्कि दो द्रव्यमानों के

बीच होने वाली अंतःक्रिया है। आइंस्टाइन के आपेक्षिकता सिद्धांत में इसे दिक्काल की संरचना और उसकी वक्रता से जोड़ा गया है।

मान लीजिए कोई पत्थर या फल पृथ्वी की सतह के पास स्वतंत्र रूप से गिर रहा है। पृथ्वी और वस्तु एक-दूसरे को समान परिमाण के गुरुत्वाकर्षण बल से आकर्षित करते हैं, लेकिन पृथ्वी का द्रव्यमान अत्यधिक होने के कारण उसका त्वरण नगण्य होता है, जबकि वस्तु स्पष्ट रूप से त्वरण प्राप्त करती है।

पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कारण वस्तु में उत्पन्न इस त्वरण को गुरुत्वीय त्वरण (g) कहते हैं, जिसका औसत मान लगभग 9.8 m/s^2 है। निर्वात में, वायु प्रतिरोध की अनुपस्थिति में, सभी वस्तुएँ अपने द्रव्यमान से स्वतंत्र समान गुरुत्वीय त्वरण से गिरती हैं। अधिक द्रव्यमान वाली वस्तु पर गुरुत्वाकर्षण बल अधिक होता है, लेकिन उसका जड़त्व भी उसी अनुपात में अधिक होता है, इसलिए उसका त्वरण समान रहता है।

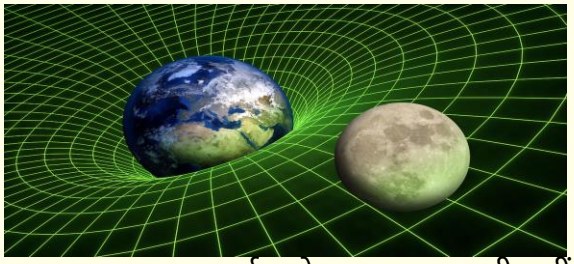

इस प्रकार, गुरुत्वाकर्षण केवल एक बल ही नहीं, बल्कि गति और त्वरण को नियंत्रित करने वाला सार्वभौमिक नियम भी है। पृथ्वी की सतह के निकट किसी वस्तु पर गुरुत्वीय बल को इस प्रकार व्यक्त किया जाता है: **F = mg**

जहाँ F गुरुत्वीय बल, m वस्तु का द्रव्यमान और g गुरुत्वीय त्वरण है। अतः g = F/m। चूँकि गुरुत्वीय बल द्रव्यमान के समानुपाती बढ़ता है, इसलिए निर्वात में सभी वस्तुएँ समान त्वरण से गिरती हैं।

वास्तविक जीवन में पत्थर कागज से पहले गिरता है, जिसका कारण गुरुत्वीय त्वरण में अंतर नहीं, बल्कि वायु प्रतिरोध है। निर्वात में दोनों समान त्वरण से गिरेंगे। चंद्रमा पर भी, जहाँ वायुमंडल लगभग नहीं है, विभिन्न वस्तुएँ समान गुरुत्वीय त्वरण से गिरती हैं।

गुरुत्वीय त्वरण गिरती वस्तु की गति बढ़ाता है, जबकि ऊपर फेंकी गई वस्तु की गति घटाकर उसे क्षणभर के लिए शून्य कर देता है। कोण पर फेंकी गई वस्तु का पथ, वायु प्रतिरोध की उपेक्षा करने पर, परवलयाकार होता है। वास्तविक परिस्थितियों में वायु प्रतिरोध बढ़ते-बढ़ते गुरुत्वीय बल के बराबर हो सकता है, तब वस्तु टर्मिनल वेग से गिरती है।

समान त्वरण के लिए प्रमुख गति-समीकरण हैं:

$$v = u + gt$$
$$v^2 = u^2 + 2gs$$
$$s = ut + \frac{1}{2}gt^2$$

जहाँ u प्रारंभिक वेग, v अंतिम वेग, g गुरुत्वीय त्वरण, t समय और s विस्थापन है। इन्हीं सिद्धांतों से प्रक्षेप्य गति, ग्रहों एवं उपग्रहों की गति और पलायन वेग जैसी अवधारणाओं को समझा जाता है।

यदि किसी वस्तु को पृथ्वी के पास पर्याप्त क्षैतिज वेग दिया जाए, तो वह पृथ्वी की सतह पर गिरने के बजाय उसकी कक्षा में परिक्रमा कर सकती है। इसका कारण यह है कि गुरुत्वाकर्षण बल लगातार पृथ्वी के केंद्र की ओर कार्य करता है और वस्तु की गति की दिशा को मोड़ता रहता है।

इस स्थिति में वस्तु निरंतर मुक्त पतन (free fall) में रहती है, लेकिन उसकी क्षैतिज गति और पृथ्वी की वक्रता के कारण वह सतह से टकराती नहीं, बल्कि पृथ्वी के चारों ओर घूमती रहती है। यही सिद्धांत कृत्रिम उपग्रहों और प्राकृतिक उपग्रहों की कक्षीय गति का आधार है। इसे न्यूटन के प्रसिद्ध 'तोप के गोले' (Newton's cannonball) विचार-प्रयोग से सरलता से समझा जा सकता है।

वस्तु का भार

किसी गुरुत्वीय क्षेत्र में वस्तु पर लगने वाला गुरुत्वीय बल उसके द्रव्यमान और गुरुत्वीय त्वरण के गुणनफल के बराबर होता है: F = mg, इसे भार (Weight) कहते हैं, जिसकी इकाई न्यूटन (N) है। हालांकि, आभासी भार (apparent weight) उस सहारे के बल यानी अभिलंब बल (normal force) से संबंधित है, जिसे वस्तु वास्तव में महसूस करती है। मुक्त पतन की अवस्था में—जैसे कक्षा में घूमता उपग्रह या गिरती लिफ्ट—वस्तु और उसका परिवेश समान त्वरण से गिरते हैं, इसलिए प्रत्यक्ष भार शून्य हो जाता है, जबकि गुरुत्वाकर्षण बल बना रहता है। इसके विपरीत, द्रव्यमान (Mass) वस्तु का

अंतर्निहित गुण है, जो स्थान बदलने पर भी अपरिवर्तित रहता है और इसे किलोग्राम (kg) में मापा जाता है।

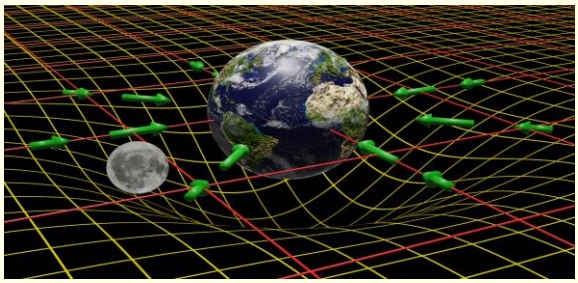

न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण का गणितीय नियम प्रस्तुत किया, लेकिन यह नहीं बताया कि यह बल उत्पन्न क्यों होता है। इसका अधिक गहरा स्पष्टीकरण बाद में आइंस्टाइन के सामान्य आपेक्षिकता सिद्धांत से मिला।

आइंस्टाइन और सामान्य आपेक्षिकता

न्यूटन के सिद्धांत में गुरुत्वाकर्षण को दूर स्थित वस्तुओं के बीच कार्य करने वाले बल के रूप में समझाया गया था। इसके विपरीत, आइंस्टाइन ने 1915 में प्रस्तुत सामान्य आपेक्षिकता सिद्धांत में बताया कि गुरुत्वाकर्षण द्रव्यमान और ऊर्जा के कारण दिक्काल (space-time) में उत्पन्न वक्रता का परिणाम है। इस वक्रित दिक्काल में वस्तुएँ अपने प्राकृतिक पथ, जिसे जिओडेसिक (geodesic) कहते हैं, पर गति करती हैं।

सरल शब्दों में, द्रव्यमान और ऊर्जा दिक्काल को बताते हैं कि उसे कैसे वक्रित होना है, और वक्रित दिक्काल वस्तुओं को बताता है कि कैसे गति करनी है। जिओडेसिक वक्रित ज्यामिति में किसी वस्तु का सबसे स्वाभाविक संभव मार्ग है। उदाहरण के लिए, पृथ्वी की सतह पर ग्रेट सर्कल मार्ग जिओडेसिक का एक उदाहरण है, जिसका उपयोग लंबी दूरी की विमान यात्राओं में किया जाता है।

सामान्य आपेक्षिकता के अनुसार, गुरुत्वीय क्षेत्र में होने वाले परिवर्तन प्रकाश की गति से प्रसारित होते हैं। इस प्रकार, न्यूटन की तात्कालिक गुरुत्वाकर्षण की अवधारणा को अधिक सटीक आपेक्षिकतावादी दृष्टिकोण से समझाया गया।

सामान्य आपेक्षिकता के अनुसार, गुरुत्वाकर्षण कोई तात्कालिक बल नहीं, बल्कि दिक्काल की वक्रता का परिणाम है और इसमें होने वाले परिवर्तन प्रकाश की गति से प्रसारित होते हैं। उदाहरण के लिए, यदि सूर्य अचानक अदृश्य हो जाए—एक काल्पनिक स्थिति—तो पृथ्वी लगभग 8 मिनट (करीब 500 सेकंड) तक सूर्य की पूर्व स्थिति से संबंधित वक्रित दिक्काल के अनुसार अपनी कक्षा में गतिमान रहेगी। इसके बाद गुरुत्वीय प्रभाव में परिवर्तन पृथ्वी तक पहुँचेगा और पृथ्वी अपनी तत्कालीन स्पर्शरेखीय दिशा में आगे बढ़ने लगेगी।

न्यूटन के सिद्धांत में गुरुत्वाकर्षण को द्रव्यमान वाले पिंडों के बीच कार्य करने वाले बल के रूप में समझाया गया था। इसके विपरीत, आइंस्टाइन के सिद्धांत में द्रव्यमान और ऊर्जा दिक्काल को वक्रित करते हैं, और पदार्थ तथा प्रकाश इस वक्रित दिक्काल में अपने प्राकृतिक जिओडेसिक पथों पर गति करते हैं। इसलिए, फोटॉन का विश्राम द्रव्यमान शून्य होने के बावजूद उसका पथ गुरुत्वीय क्षेत्र से प्रभावित होता है। इसका प्रमुख उदाहरण गुरुत्वीय प्रकाश-विचलन और गुरुत्वीय लेंसिंग है, जिसमें विशाल खगोलीय पिंडों के कारण प्रकाश का मार्ग मुड़ जाता है।

इस सिद्धांत की एक महत्वपूर्ण प्रारंभिक पुष्टि 1919 के सूर्यग्रहण के दौरान हुई, जब सूर्य के निकट से गुजरने वाले तारों के प्रकाश में अपेक्षित विचलन देखा गया। यह परिणाम सामान्य आपेक्षिकता के पक्ष में एक महत्वपूर्ण प्रायोगिक प्रमाण माना गया। इसी प्रभाव का व्यापक रूप आधुनिक खगोलभौतिकी में गुरुत्वीय लेंसिंग (gravitational lensing) के रूप में देखा जाता है, जिसमें विशाल खगोलीय पिंड अपने पीछे स्थित प्रकाश स्रोतों से आने वाले प्रकाश को मोड़कर उनकी छवियों को विकृत, विस्थापित या कई रूपों में प्रदर्शित कर सकते हैं।

वक्रित दिक्काल में "सीधी रेखा" की पारंपरिक अवधारणा बदल जाती है। वस्तुएँ और प्रकाश अपने प्राकृतिक जिओडेसिक पथों पर गति करते हैं, जो वक्रित दिक्काल में हमें मुड़े हुए दिखाई दे सकते हैं। पृथ्वी का द्रव्यमान अपने आसपास के दिक्काल को वक्रित करता है और मुक्त रूप से गिरती वस्तुएँ इस वक्रित दिक्काल में अपने प्राकृतिक पथ पर चलती हैं। हम इसी प्रभाव को गुरुत्वाकर्षण के रूप में अनुभव करते हैं।

सामान्य आपेक्षिकता के अनुसार, मुक्त पतन में कोई वस्तु वक्रित दिक्काल में अपने प्राकृतिक जिओडेसिक पथ पर चलती है और स्थानीय रूप से गुरुत्वीय बल का अनुभव नहीं करती। फोटॉन का विश्राम द्रव्यमान शून्य होता है और उसके लिए उचित समय (proper time) का अंतराल शून्य होता है; वह निर्वात में प्रकाश की गति से यात्रा करता है।

न्यूटोनियन दृष्टिकोण से प्रकाश के गुरुत्वीय विचलन की गणना करने पर सामान्य आपेक्षिकता के अनुमानित मान का लगभग आधा परिणाम मिलता है। आइंस्टाइन के सिद्धांत में दिक्काल की पूर्ण वक्रता को शामिल करने पर सही मान प्राप्त होता है। सामान्य आपेक्षिकता गुरुत्वीय समय-विस्तार (gravitational time dilation) जैसे अन्य महत्वपूर्ण प्रभावों की भी व्याख्या करती है।

सामान्य आपेक्षिकता ने बुध की कक्षा के उपसौर (perihelion) के सूक्ष्म अतिरिक्त अग्रगमन की भी सफलतापूर्वक व्याख्या की, जिसे न्यूटोनियन सिद्धांत पूरी तरह स्पष्ट नहीं कर सका था।

क्वाण्टम ग्रैविटी की ओर

क्वांटम फील्ड थ्योरी (QFT) के अनुसार, प्रत्येक मूलभूत कण किसी क्वांटम क्षेत्र की उत्तेजना (excitation) है और मूलभूत बलों का संचार मध्यस्थ कणों के माध्यम से होता है—जैसे विद्युतचुंबकीय बल के लिए फोटॉन, प्रबल बल के लिए ग्लूऑन तथा दुर्बल बल के लिए W और Z बोसॉन। इस दृष्टिकोण से यह प्रश्न उठता है कि क्या गुरुत्वाकर्षण के लिए भी कोई मध्यस्थ कण—ग्रैविटॉन (graviton)—हो सकता है। हालांकि, इसका अभी तक कोई प्रत्यक्ष प्रायोगिक प्रमाण नहीं मिला है।

गुरुत्वाकर्षण को क्वांटम सिद्धांत के साथ एकीकृत करना आधुनिक भौतिकी की प्रमुख अनसुलझी समस्याओं में से एक है। स्ट्रिंग थ्योरी, लूप क्वांटम ग्रैविटी और गुरुत्वाकर्षण को एक उद्भूत (emergent) घटना मानने वाले सिद्धांत इस दिशा में विभिन्न सैद्धांतिक प्रयास हैं।

वर्तमान में क्वांटम गुरुत्व का कोई पूर्ण और सर्वमान्य सिद्धांत उपलब्ध नहीं है। इसके प्रायोगिक परीक्षण के लिए आवश्यक ऊर्जा और चरम परिस्थितियाँ वर्तमान तकनीक की पहुँच से काफी परे हैं। इसलिए आज भी न्यूटोनियन यांत्रिकी सामान्य परिस्थितियों में और सामान्य आपेक्षिकता प्रबल गुरुत्वीय क्षेत्रों तथा ब्रह्मांडीय स्तर पर अत्यंत सफल सिद्धांत हैं, जबकि क्वांटम गुरुत्व अभी सक्रिय शोध का विषय है।

भार और भारहीनता की सही समझ

सामान्य आपेक्षिकता के अनुसार, पृथ्वी की सतह पर स्थिर वस्तु मुक्त पतन में नहीं होती। सतह उसे उसके प्राकृतिक जिओडेसिक पथ से विचलित रखती है और उस पर अभिलंब बल (normal force) लगाती है, जिसे हम आभासी भार (apparent weight) के रूप में अनुभव करते हैं।

इसके विपरीत, मुक्त पतन में वस्तु अपने जिओडेसिक पथ पर गति करती है और उस पर कोई सहारा यानी अभिलंब बल नहीं लगता, इसलिए वह भारहीनता (weightlessness) अनुभव करती है। इसका अर्थ गुरुत्वाकर्षण की अनुपस्थिति नहीं, बल्कि वस्तु और उसका परिवेश समान त्वरण से गिर रहे होते हैं, जिससे प्रत्यक्ष भार शून्य हो जाता है।

इस प्रकार, गुरुत्वीय बल को सामान्यतः $F=mg$ से व्यक्त किया जाता है, जबकि प्रत्यक्ष भार वस्तु और उसके सहारे के बीच लगने वाले संपर्क बल से निर्धारित होता है।

निष्कर्ष

दैनिक जीवन और अधिकांश व्यावहारिक परिस्थितियों में न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत अत्यंत उपयोगी और पर्याप्त है। वहीं, गुरुत्वाकर्षण की अधिक गहरी और मूलभूत समझ के लिए आइंस्टाइन का सामान्य आपेक्षिकता सिद्धांत अधिक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है।

आधुनिक भौतिकी में बल, भार और गति जैसी अवधारणाएँ पर्यवेक्षक और संदर्भ-तंत्र पर निर्भर हो सकती हैं, जबकि गुरुत्वाकर्षण को दिक्काल की ज्यामिति और उसकी वक्रता के संदर्भ में समझा जाता है। सामान्य परिस्थितियों में न्यूटोनियन यांत्रिकी पर्याप्त है, जबकि ब्रह्मांडीय घटनाओं और प्रबल गुरुत्वीय क्षेत्रों को समझने के लिए सामान्य आपेक्षिकता आवश्यक है। दोनों सिद्धांत मिलकर गुरुत्वाकर्षण और ब्रह्मांड की हमारी समझ को अधिक व्यापक और सुसंगत बनाते हैं।

विज्ञान के आलोक पथ पर मेरी यात्रा

प्रज्ञा गौतम

व्याख्याता (जीव विज्ञान), GSSS पीएम श्री इन्दरगढ़, राजस्थान

तेजी से बदलती इस दुनिया में लोगों तक तकनीक तो पहुंची है लेकिन वैज्ञानिक दृष्टिकोण का आज भी अभाव है। विकास की रफ्तार के साथ पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता घट रही है।

ऐसे समय में आवश्यक हो जाता है कि लोगों तक सरल भाषा में विज्ञान पहुंचे। वे जान सकें कि तकनीक के क्या फायदे हैं और क्या नुकसान। आज के दौर में हरित तकनीकी का ज्ञान और पर्यावरण की समझ भी जरूरी है। यह महत्त्वपूर्ण कार्य शिक्षकों, विज्ञान संचारकों और विज्ञान पत्रिकाओं के बिना असंभव लगता है। विज्ञान पत्रिकाएं विज्ञान को सरल और रोचक तरीके से जनसाधारण तक पहुंचाती हैं। प्रकृति के बीच भ्रमण पर्यावरण के प्रति संवेदनशील बनाता है। प्राकृतिक घटनाओं की सरल प्रयोगों के माध्यम से व्याख्या, कहानी वाचन और कार्यशालाएं भी विज्ञान संचार का ही अंग हैं।

मुझे प्रसन्नता है कि विज्ञान संचार के पुनीत कार्य में अंश मात्र योगदान मेरा भी रहा। एक जिज्ञासु बच्ची से विज्ञान शिक्षिका और विज्ञान संचारक तक का सफर मेरे लिए रोमांचक रहा। मेरे आसपास प्रकृति जाने कितने रहस्य समेटे खड़ी थी। मेरे पास ढेरों सवाल थे। बाल विज्ञान पत्रिकाएं मेरे लिए एक जादुई डिबिया की तरह होती थीं जिनमें मेरे सवालों के जवाब छिपे होते थे। बाद के सालों में विज्ञान प्रगति, साइंस रिपोर्टर और आविष्कार जैसी पत्रिकाएं मेरे साथ रहीं।

प्रकृति के बीच बचपन और जिज्ञासाएं

विज्ञान प्रकृति और पदार्थ के रहस्यों को जानने की एक निरंतर प्रक्रिया है। एक बालक के जीवन में विज्ञान का प्रवेश तभी हो जाता है जब वह अपने आसपास की हर वस्तु या जीव के प्रति जिज्ञासु होता है। प्राकृतिक घटनाएं उसके मन में कौतूहल जगाती हैं। यदि इस समय कोई उसके प्रश्नों के उत्तर ढूँढने में उसकी मदद करे तो वह विज्ञान की उंगली थाम कर चलना सीख जाता है।

मैं अपने अनुभवों की बात करूँ तो छोटी- छोटी बहुत सी बातें मेरी स्मृतियों में हैं। घर की छत पर घूमते हुए गर्मियों की वे रातें बड़ी ही खास हुआ करती थीं। आकाश में बिखरे अरबों- खरबों तारों को मैं कौतुक से देखती थी। उन्हीं दिनों मेरे नाना ने मुझे ध्रुव तारा दिखाया था। उन्होंने सप्तऋषि मंडल को चार तारों की एक पतंग और तीन तारों की उसकी पूंछ की तरह बताया। सुदूर उत्तर दिशा में ध्रुव तारा हमेशा इस पतंग के दो तारों की सीध में दिखता।

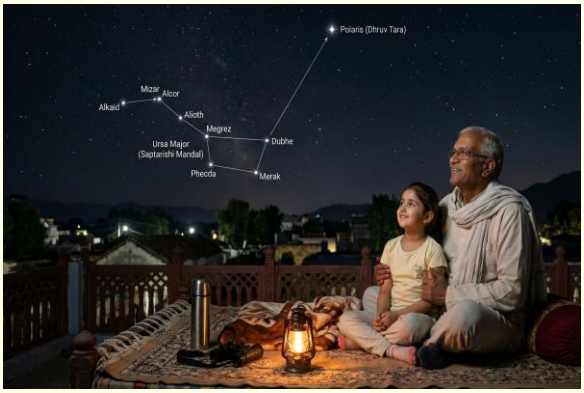

ऐसी ही किसी अंधेरी रात, जब आकाश स्वच्छ था उन्होंने मेरा परिचय हमारी आकाशगंगा से करवाया। उत्तर से दक्षिण की तरफ फैली कहीं उजली तो कहीं बादलों सी धुंधली पट्टी देवयानी मंदाकिनी थी। फिर मैं सबसे चमकदार ग्रह शुक्र को पहचानने लगी, जो साँझ के समय से ही दिखने लगता था। ग्रहों और तारों से फिर परिचय बढ़ता गया। चित्रों को देख कर आकाश में तारों को खोजना एक रोचक खेल हो गया था।

मेरा मानना है कि बहुत सारी प्राकृतिक घटनाएं जैसे वर्षण, तड़ित विद्युत, इंद्रधनुष, प्रकाश का परावर्तन, अपवर्तन, सूर्य और चंद्र ग्रहण बच्चों को खेल-खेल में समझाई जा सकती हैं। बच्चों की प्रकृति से जुड़ी जिज्ञासाएं शांत करना और उनके जवाब खोजने के लिए उनके हाथ में विज्ञान पत्रिकाएं देना विज्ञान की राह में सबसे पहला कदम होता है।

मेरा बचपन जवाहर सागर डैम में बीता। यह स्थान चम्बल नदी के किनारे है और विंध्य पर्वत श्रृंखला की गोद में बसा हुआ है। यहाँ भरपूर जैव विविधता है। पर्णपाती वन हैं।

वहाँ रहते कितने ही फूल-पौधों और अद्भुत जीव जंतुओं से परिचय हुआ। हरे -पीले रंग का उड़न सांप (क्रिसोपीली प्रजाति) जो शरीर को फुला कर एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर कूदता है, मैंने यहीं देखा था। यह बहुत कम विषैला (हानि रहित) होता है। गोह (वरेनस प्रजाति) और रंगीन खूबसूरत गिरगिट प्रजातियाँ घर के बगीचे का ही हिस्सा थीं। गोह (मॉनिटर लिज़र्ड) छोटे-मोटे डायनासौर की तरह लगती है। हम उसको खिड़की से अमरूद के नीचे निर्बाध घूमता हुआ देखते। यह सबसे बुद्धिमान छिपकली है। यह मांसाहारी है लेकिन फल भी खा लेती है। यह जहरीली नहीं होती लेकिन लोग अज्ञानवश इसको मार देते हैं।

कितनी तरह की चिड़ियाँ आती थीं यहाँ। मैंने पहली बार यहाँ प्लम हेडेड पैराकीट (सिटाकुला सायनोसेफैलस) देखा था। इस प्रजाति के नर तोते का सिर मरून रंग का होता है, जबकि मादाओं का सिर स्लेटी होता है। इनकी चोंच पीली होती है।

बाद में पाठ्य पुस्तकों से विभिन्न प्रजातियों के कुल और जीव वैज्ञानिक नामों की जानकारी मिली। इसके बाद बगीचे में संबंधित जीवों और पौधों को तलाशना नया खेल बन गया था। उनके बारे में बहुत सी जानकारियाँ दादी या पापा से मिलतीं जो कई बार पुस्तक में भी नहीं होती थीं। उस समय गूगल नहीं था। वह समय विरासत में मिले ज्ञान के सम्प्रेषण का था। वह समय किताबें पढ़ने का था। खेलते-कूदते ही पापा के पावरहाउस में बिजली का बनना देखा-समझा। विज्ञान मुझे हमेशा चुंबक की तरह खींचता रहा।

विज्ञान शिक्षण

राजकीय सेवा में आने के बाद शुरुआती दौर में मैंने मिडल कक्षाओं को विज्ञान पढ़ाया था। वह समय सबसे यादगार रहा क्योंकि बच्चों के कोमल मन में विज्ञान के बीज रोपना आसान था। प्रकाश, ध्वनि, चुंबक और विद्युत से संबंधित प्रयोग बच्चे खुद करके सीखते थे।

सर्दियों में बच्चे खुली जगह में बैठते थे। आसपास खूब पेड़-पौधे लगे थे। फूल की रचना समझाने के लिए मैं उनसे धतूरे का बड़ा फूल मँगवाती। उस समय बच्चों ने खेल- खेल में ही जाना कि गेंदे का फूल वास्तव में एक फूल नहीं है बल्कि एक पुष्पक्रम है। और यह भी कि बरगद से गिरने वाले ये छोटे फल वास्तव में एक विशेष पुष्पक्रम (हाइपैन्थोडियम) हैं, जिनके भीतर फूल छिपे हैं।

मैंने उन बच्चों को पर्यावरण के प्रति हमेशा जागरूक किया। जीवों की एक-दूसरे पर और अपने परिवेश पर निर्भरता को बताया। इसका परिणाम सुखद रहा। स्कूल के परिसर में करीब सत्तर पेड़ थे। जब उनको काटने की कार्यवाही चल रही थी तो उनको बचाने के लिए बच्चे मेरे साथ खड़े थे। उन्होंने हर पेड़ पर पैंट से नंबर लिखे और उनकी सुरक्षा की जिम्मेदारी ली।

अपने हर स्कूल में हमेशा मैं ही विज्ञान क्लब की प्रभारी रही। बच्चों के साथ मिल कर विज्ञान मॉडल बनाना और विज्ञान मेले में जाना मेरे जिम्मे रहा। उच्च माध्यमिक कक्षाओं को मैं जीव विज्ञान पढ़ा रही हूँ। मेरा प्रयास रहता है कि बच्चे रटें नहीं बल्कि विज्ञान में वे रस ले सकें, गहरे उतर सकें।

विज्ञान संचार

उस समय विज्ञान शिक्षण से इतर कुछ सोचा नहीं था। विज्ञान प्रगति का साथ बना हुआ था। फिर यूं ही दो विज्ञान कविताएं लिखी थीं जो पर्यावरण पर थीं, ये विज्ञान प्रगति में छपीं तो हौसला बढ़ा। एक कविता घर में उगने वाले औषधीय पौधों पर लिखी। कविताओं से मेरी कल्पना को इतना विस्तार नहीं मिला। मैं विज्ञान गल्प की बेहद शौकीन थी। यह 2014 की बात है, तब मैंने अपनी पहली विज्ञान

गल्प 'मिशन जीवन' लिखी जो परमाणु युद्ध की आशंका के मद्देनजर अंतरिक्ष स्टेशन पर ऐसी प्रजातियों के विकास पर थी जिनमें विकिरण को सहने की क्षमता हो। आनुवंशिक उत्परिवर्तन (जेनेटिक म्यूटेशन) द्वारा नीली त्वचा वाले ऐसे शिशु पैदा किए गए जिनमें विलक्षण क्षमताएं थीं।

विज्ञान प्रगति में इसके छपने के तुरंत बाद डॉ. मनीष मोहन गोरे का मेरे पास फोन आया। कहानी के संबंध में उन्होंने कुछ बातें की। मुझे विज्ञान लेखकों के समूह में शामिल कर लिया गया। इस तरह खुद ब खुद वह रास्ता बन गया जिस पर मुझे अब चलना था। मेरी दूसरी विज्ञान कथा 'विचित्र वृक्ष' थी। जब मेरे स्कूल में पेड़ों को काटने की कार्यवाही चल रही थी तो आहत मन में इस कहानी का विचार आया। कहानी में मेरे स्कूल का एक पेड़ अपने भीतर विशिष्ट प्रतिरक्षा प्रणाली विकसित कर लेता है, अदृश्य विकिरणों के रूप में। पेड़ काटने वाले लोग अंधे हो जाते हैं। यह कहानी बहुत लोकप्रिय हुई। बहुत सालों तक दूर दराज से इस कहानी के संबंध में फोन आते रहे थे। विज्ञान कथा एक ऐसी विधा है जो अपनी रोचक शैली के कारण जन साधारण तक अपनी पहुँच बनाने में सक्षम है। फिर तो विज्ञान कथाएं लिखने में आनंद आने लगा। जो लोग विज्ञान की पृष्ठभूमि से नहीं थे उनको भी इन कहानियों ने लुभाया।

इस बीच मैंने बाल विज्ञान कथाएं भी लिखीं जो विभिन्न बाल पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं। मिनी का सपना (जंगल की कटाई और जल संकट पर), अमरबेल (पूर्ण परजीवी पौधे अमरबेल के बारे रोचक जानकारी), सुंदरवन की सैर (सुंदरवन की जैव विविधता और बंगाल टाइगर पर), नन्हा डॉल्फिन (गांगेय डॉल्फिन सूंस पर) और एक खेत की कहानी (पराली जलाने पर एक खेत के पारिस्थितिक तंत्र के विनष्ट होने की कहानी)।

उन दिनों के विज्ञान लेखकों की लेखनी से प्रभावित होकर ही मैंने अपना पहला विज्ञान लेख लिखा था। एक दूसरी विधा में प्रवेश सचमुच आसान नहीं था। लेकिन मैं सीखती रही और लिखती रही। पहले जो विषय मेरे मन को छूता था, उसी पर लिखती थी। बाद में वह समय भी आया जब दिए गए विषय पर निर्धारित समयावधि में लेख लिख कर देने पड़े।

अपने कुछ विज्ञान लेख मुझे बहुत प्रिय रहे। अपने करीब 70 विज्ञान लेखों में से कुछ चुनिंदा लेखों का यहाँ जिक्र कर रही हूँ।

'विलक्षण नारी क्षमताऐं और दो एक्स गुणसूत्र' लेख में स्त्री शरीर की उन विशेष क्षमताओं की वैज्ञानिक व्याख्या है जो उसको दो एक्स गुणसूत्र होने से मिली हैं। स्त्रियों में इसी कारण से मस्तिष्क के दायें और बाएं हिस्सों का विकास अलग होता है क्योंकि एक भाग में माता का और एक भाग में पिता का X गुणसूत्र सक्रिय होता है| स्त्री और पुरुष का दिमाग भी इसीलिए भिन्न प्रकार कार्य करता है| स्त्रियाँ एक साथ अनेक कार्य संपन्न कर सकती हैं| पुरुषों के दिमाग के दोनों हिस्से एक जैसे होते हैं क्योंकि उनके पास एक ही X गुणसूत्र होता है| यह लेख 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' में प्रकाशित हुआ था।

'रोचक संसार मशरूम का' लेख में मशरूम के खाद्य उपयोग और इतिहास का वर्णन है। इसमें 'फ्लाई अगैरिक' (Amanita muscaria) से जुड़े रोचक तथ्य शामिल हैं, जिसमें साइलोसायबिन, मस्करीन, मस्किमोल और आइबोटेनिक अम्ल जैसे यौगिक पाए जाते हैं, जो मस्तिष्क पर प्रभाव डालते हैं। सीमित मात्रा में इसके प्रभाव से स्वप्निल अनुभव हो सकते हैं। जोसफ कोपेक नामक पोलिश यात्री ने ऐसे अनुभवों के आधार पर साहित्य रचा। यह लेख 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' में प्रकाशित हुआ।

'प्रकृति के रंग अनेक' लेख गिरगिट की त्वचा में स्थित उन रंगा कोशिकाओं के बारे में है, जिनको व्यवस्थित करके वह पल भर में अपना रंग बदल लेता है। यह एक बाल पत्रिका 'परिबोध' में प्रकाशित हुआ था।

'विज्ञान प्रगति' में प्रकाशित मेरा लेख 'सिफेलोपॉड्स—विलक्षण समुद्री जीव' भी मेरे प्रिय लेखों में से है। सिफेलोपॉड्स पृथ्वी के अत्यंत बुद्धिमान समुद्री जीव हैं, जो अपनी भुजाओं से गाँठ खोलने और ढक्कन जैसे कार्य करने में सक्षम होते हैं। संकट के समय ये तेज़ी से पलायन करते हैं और प्रत्येक ऑक्टोपस का अपना विशिष्ट स्वभाव होता है। इनके मस्तिष्क में लगभग 20 करोड़ न्यूरॉन्स होते हैं, जिनका बड़ा हिस्सा भुजाओं में होता है। यह जटिल तंत्र रंग परिवर्तन, स्मृति और सूचना विश्लेषण

जैसे कार्यों में सहायक होता है, जिससे इनकी बुद्धिमत्ता की तुलना कुत्ते या बंदर से की जाती है।

'विज्ञान प्रगति' में प्रकाशित मेरा लेख 'परागण के लिए अनुकूलन' भी अत्यंत रोचक है। इसमें बताया गया है कि पुष्पी पौधों और उनके परागणकर्ताओं का विकास साथ-साथ हुआ है। पुष्पों के रंग, सुगंध और संरचनाएँ कीटों को आकर्षित करने और उनके लिए अनुकूल उतरने की व्यवस्था प्रदान करने हेतु विकसित हुई हैं। कई मामलों में पुष्प और परागणकर्ता इतने परस्पर निर्भर हो जाते हैं कि उनका अस्तित्व एक-दूसरे के बिना संभव नहीं होता।

शाहबाद पोस्टिंग के दौरान मैंने वहाँ की वन संपदा पर एक लेख लिखा था, जो संभवतः 'विज्ञान प्रगति' में प्रकाशित हुआ। यह क्षेत्र अत्यंत समृद्ध जैव विविधता वाला है, जहाँ लगभग 70 कुलों और 221 प्रजातियों के वनस्पति पादप पाए जाते हैं, जिनमें कई स्थानिक प्रजातियाँ भी शामिल हैं। सहरिया आदिवासी समुदाय यहाँ की वनोपज—जैसे इमारती और जलाऊ लकड़ी, गोंद, महुआ, औषधीय पौधे तथा सीताफल, आंवला, करोंदा, तेंदू, इमली और बेल जैसे जंगली फलों—पर आश्रित है। यहां के धोकड़ा के वृक्ष (Anogeissus pendula), जिन्हें अंग्रेजी में बटन ट्री कहते हैं, विशेष रूप से प्रमुख हैं, जो गर्मियों में पत्ते झड़ने पर झुलसे हुए प्रतीत होते हैं, पर पहली वर्षा के साथ पुनः जीवंत हो उठते हैं। प्रस्तावित पावर प्रोजेक्ट द्वारा इनके कटाव की संभावना चिंता का विषय है।

'वैज्ञानिक' पत्रिका में मेरा पहला लेख 'भविष्य की डिजाइनर फसलें और खाद्य सुरक्षा' था। इसमें अरेबिडोप्सिस पर किए गए शोध का उल्लेख था, जो सरसों कुल का एक जंगली पौधा है और मॉडल जीव के रूप में उपयोग होता है। इसके छोटे जीनोम और स्पष्ट जीन संरचना के कारण यह शोध के लिए महत्वपूर्ण है। इसमें पाए गए SIK1 एंजाइम को रोग प्रतिरक्षा में "फायरिंग पिन" की संज्ञा दी गई है।

मैं बढ़ती रही इस रास्ते पर विज्ञान के उजाले थे

कोविड काल के लॉकडाउन के वे दिन सूने और अवसादपूर्ण थे, जब टीवी पर लगातार डरावनी खबरें आ रही थीं। इस दौरान मैंने कोविड से जुड़े कई लेख लिखे। विज्ञान प्रसार द्वारा आमंत्रित विज्ञान कथाओं के संकलन 'कोविडनामा' में मेरी कहानी 'सौदा' शामिल हुई।

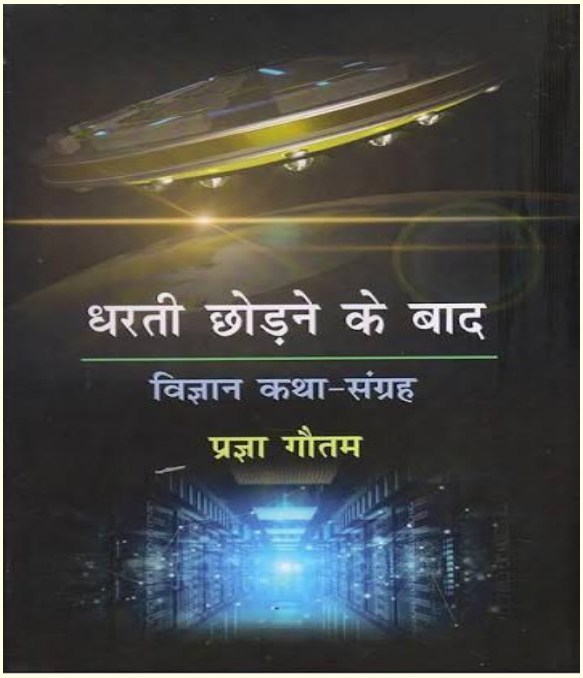

उसी समय VICAS (वैज्ञानिक दृष्टिकोण और संचार के लिए स्वयंसेवी पहल) उत्तर प्रदेश के लिए मैंने कोविड जागरूकता नाटिकाएँ भी लिखीं, जिनका ऑडियो रूपांतरण प्रसारित किया गया।

विज्ञान संचार की मेरी यात्रा में अनेक चुनौतियाँ और अनुभव रहे हैं। इस दौरान कई मार्गदर्शक और सहयात्री मिले, जिनमें डॉ. अरविन्द मिश्र, डॉ. राजीव रंजन उपाध्याय, श्री देवेन्द्र मेवाड़ी और डॉ. सुभाष चंद्र लखेड़ा प्रमुख हैं, जिनसे मुझे निरंतर प्रोत्साहन मिला। विज्ञान पत्रिकाओं के संपादकों का भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ।

अब तक मेरे तीन विज्ञान कथा संग्रह, एक बाल विज्ञान कथा उपन्यास 'अंतरिक्ष की सैर' और एक बाल विज्ञान उपन्यास 'तितलियों की रोचक दुनिया' (प्रकाशन विभाग) प्रकाशित हो चुके हैं। मेरी कहानियों का अंग्रेजी व अन्य भाषाओं में अनुवाद हुआ है और कुछ रचनाएँ अंतरराष्ट्रीय पत्रिकाओं, जैसे जर्मन इन्टरनोवा और ह्यूगो अवॉर्ड प्राप्त जीरो ग्रैविटी, में भी प्रकाशित हुई हैं। मुझे संतोष है कि मेरी विज्ञान कथाएँ किशोरों और युवाओं द्वारा पसंद की जा रही हैं।

जलवायु परिवर्तन या ख़तरे की घंटी?

कुसुम अग्रवाल

90- महावीर नगर, क्लेक्ट्रेट रोड, कांकरोली (राजसंमद), राजस्थान- 313324

विश्व में पर्यावरण प्रदूषण लगातार बढ़ रहा है, जिससे अनेक गंभीर समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। जलवायु परिवर्तन भी उन्हीं में से एक है। पिछले कुछ वर्षों में मौसम के स्वरूप में तेजी से बदलाव देखने को मिल रहा है। पृथ्वी का औसत तापमान लगभग 15 डिग्री सेल्सियस है, लेकिन इसमें लगातार वृद्धि हो रही है।

गर्मियाँ लंबी और सर्दियाँ छोटी होती जा रही हैं। अक्टूबर-नवंबर तक गर्मी का प्रभाव बना रहता है और नवंबर-दिसंबर के मध्य तक भी ठंड का पर्याप्त अहसास नहीं होता।

मौसम किसी स्थान की अल्पकालिक वायुमंडलीय स्थिति है, जो तापमान, वर्षा, सूर्यप्रकाश, हवा और आर्द्रता जैसे कारकों से निर्धारित होती है। इसके विपरीत जलवायु किसी क्षेत्र के मौसम का दीर्घकालिक औसत स्वरूप है, जिसमें परिवर्तन धीरे-धीरे होता है। वर्तमान में पृथ्वी की जलवायु तेजी से बदल रही है, जिसका प्रतिकूल प्रभाव मानव जीवन और पारिस्थितिक तंत्र पर पड़ रहा है।

अब प्रश्न उठता है कि जलवायु परिवर्तन क्यों हो रहा है? इसके कारणों को मुख्यतः प्राकृतिक और मानवीय दो भागों में बाँटा जा सकता है।

प्राकृतिक कारणों में महाद्वीपों की गति, ज्वालामुखी विस्फोट, समुद्री धाराओं में परिवर्तन और पृथ्वी की कक्षीय गति जैसे कारक शामिल हैं। दूसरी ओर, मानवीय गतिविधियाँ भी जलवायु परिवर्तन को तेजी से बढ़ा रही हैं। इनमें जीवाश्म ईंधनों का अत्यधिक उपयोग, वनों की कटाई और औद्योगिक गतिविधियाँ प्रमुख हैं।

इन गतिविधियों से वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा बढ़ती है। इनमें मुख्यतः कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड शामिल हैं। पृथ्वी सूर्य से ऊर्जा प्राप्त करती है और उसकी सतह गर्म होती है। इस ऊर्जा का कुछ भाग पृथ्वी से वापस अंतरिक्ष की ओर जाता है, लेकिन ग्रीनहाउस गैसें इसका एक हिस्सा रोक लेती हैं, जिससे पृथ्वी का तापमान बढ़ता है। इस प्राकृतिक प्रक्रिया को ग्रीनहाउस प्रभाव कहा जाता है। इसका बढ़ता हुआ प्रभाव वैश्विक तापवृद्धि और जलवायु परिवर्तन का प्रमुख कारण बन रहा है।

वायुमंडल में मौजूद कुछ गैसें पृथ्वी के चारों ओर एक आवरण बनाती हैं, जो सूर्य से प्राप्त ऊष्मा के एक हिस्से को रोककर पृथ्वी को गर्म बनाए रखता है। इसे ग्रीनहाउस प्रभाव कहते हैं। जैसे काँच का ग्रीनहाउस ऊष्मा को भीतर बनाए रखता है, वैसे ही ये गैसें पृथ्वी के तापमान को जीवन के अनुकूल बनाए रखती हैं। यदि ग्रीनहाउस गैसें न होतीं, तो पृथ्वी का औसत तापमान लगभग 30 डिग्री सेल्सियस कम होता और यहाँ जीवन का अस्तित्व कठिन हो जाता।

लेकिन औद्योगिक गतिविधियों और जीवाश्म ईंधनों के अत्यधिक उपयोग से वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा लगातार बढ़ रही है। इससे अधिक ऊष्मा वायुमंडल में फँसती है और पृथ्वी का तापमान बढ़ता है। इसे वैश्विक तापन (ग्लोबल वार्मिंग) कहा जाता है, जो जलवायु परिवर्तन का प्रमुख कारण है।

कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड जैसी गैसों का उत्सर्जन मुख्यतः कोयला, तेल और गैस जैसे जीवाश्म ईंधनों के दहन तथा अन्य मानवीय गतिविधियों से बढ़ रहा है। इनमें कार्बन डाइऑक्साइड की बढ़ती मात्रा वैश्विक तापवृद्धि में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

वनों की कटाई ने जलवायु परिवर्तन की समस्या को और गंभीर बना दिया है। पेड़-पौधे कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित करते हैं, लेकिन जंगलों के घटने से इसकी अधिक मात्रा वायुमंडल में बनी रहती है। औद्योगिक क्रांति के बाद कार्बन डाइऑक्साइड और मीथेन जैसी ग्रीनहाउस गैसों का स्तर तेजी से बढ़ा है। इसके अलावा प्लास्टिक का बढ़ता उपयोग, रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का अत्यधिक प्रयोग तथा वाहनों की बढ़ती संख्या भी प्रदूषण और उत्सर्जन को बढ़ा रही है।

ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव अब स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। पृथ्वी के औसत तापमान में लगातार वृद्धि, समुद्र-स्तर का बढ़ना और ग्लेशियरों का पिघलना इसके प्रमुख संकेत हैं। जलवायु परिवर्तन का प्रभाव मानव जीवन के साथ-साथ वनस्पतियों और जीव-जंतुओं पर भी पड़ रहा है। पेड़ों में समय से पहले फूल और फल आने लगे हैं तथा अनेक जीव-जंतु बदलती परिस्थितियों के कारण अपने प्राकृतिक आवास से पलायन कर रहे हैं।

ये परिवर्तन भले ही अभी सीमित प्रतीत हों, लेकिन यदि समय रहते प्रभावी कदम नहीं उठाए गए, तो भविष्य में इनके गंभीर और व्यापक परिणाम सामने आ सकते हैं।

जलवायु परिवर्तन का मानवीय जीवन पर गंभीर प्रभाव पड़ रहा है। तापमान और वर्षा के पैटर्न में बदलाव से कृषि उत्पादन, मिट्टी की गुणवत्ता और कीट एवं संक्रामक रोगों का प्रसार प्रभावित हो सकता है। बढ़ता तापमान बाढ़ और सूखे का खतरा भी बढ़ा सकता है, जिससे खाद्य सुरक्षा पर प्रतिकूल असर पड़ता है।

ध्रुवीय हिम और ग्लेशियरों के पिघलने से समुद्र का जलस्तर बढ़ सकता है, जिससे तटीय क्षेत्रों में बाढ़, भूमि का कटाव, मत्स्य पालन और जनजीवन प्रभावित हो सकते हैं। बढ़ते तापमान का मानव स्वास्थ्य पर भी सीधा प्रभाव पड़ता है और गर्मी से जुड़ी बीमारियों, निर्जलीकरण तथा कुपोषण का जोखिम बढ़ सकता है। जलवायु परिवर्तन से अनेक वनस्पतियों और जीव-जंतुओं के प्राकृतिक आवास भी संकट में पड़ रहे हैं।

अब प्रश्न है कि इसे कैसे रोका जाए? प्राकृतिक कारणों को नियंत्रित करना हमारे वश में नहीं, लेकिन मानवीय गतिविधियों से होने वाले प्रभावों को कम किया जा सकता है। जीवाश्म ईंधनों का उपयोग घटाकर सौर और पवन जैसी स्वच्छ ऊर्जा को बढ़ावा देना चाहिए। निजी वाहनों का कम उपयोग कर पैदल चलने और साइकिल चलाने को प्रोत्साहित किया जाए। इससे ईंधन की बचत, स्वास्थ्य लाभ और प्रदूषण में कमी—तीनों संभव हैं।

इसके साथ ही बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण और वन संरक्षण आवश्यक है। पेड़ कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित कर जलवायु संतुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यदि सरकार और समाज मिलकर इन उपायों को अपनाएँ, तो जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को काफी हद तक कम किया जा सकता है। आइए, प्रकृति की रक्षा करें और आने वाली पीढ़ियों के लिए एक स्वच्छ, सुरक्षित और संतुलित पर्यावरण सुनिश्चित करें।

प्लास्टिक के उपयोग को कम करना भी आवश्यक है, विशेषकर सिंगल-यूज़ प्लास्टिक का। इसके स्थान पर कागज, कपड़े और अन्य पर्यावरण-अनुकूल विकल्प अपनाए जाने चाहिए। प्लास्टिक न केवल पर्यावरण को नुकसान पहुँचाता है, बल्कि मानव स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक है। इसी प्रकार, एयर कंडीशनर और रेफ्रिजरेटर में प्रयुक्त कुछ गैसें पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती हैं, इसलिए ऊर्जा-कुशल उपकरणों और पर्यावरण-अनुकूल तकनीकों को बढ़ावा देना चाहिए।

'यूज़ एंड थ्रो' की संस्कृति भी पर्यावरण पर अतिरिक्त दबाव डालती है। अधिक उपभोग से उत्पादन, ऊर्जा खपत और प्रदूषण बढ़ता है। इसलिए हमें जिम्मेदार और टिकाऊ उपभोग को अपनाकर अनावश्यक वस्तुओं के उपयोग को कम करना चाहिए।

अब समय आ गया है कि हम अपनी जीवनशैली और सोच में आवश्यक बदलाव लाएँ। यदि जलवायु परिवर्तन और पर्यावरण प्रदूषण पर समय रहते प्रभावी कदम नहीं उठाए गए, तो भविष्य में खाद्य और जल संकट, अत्यधिक गर्मी, प्राकृतिक आपदाओं और स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। इसलिए आज सावधान होकर प्रकृति के साथ संतुलित जीवन जीना ही आने वाली पीढ़ियों के सुरक्षित भविष्य की कुंजी है।

जोहड़ जैसे प्राकृतिक जल स्रोतों को बचाना होगा

सत्यवीर नाहड़िया

प्राचार्य, राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, सीहा, रेवाड़ी, हरियाणा

देहात की प्राकृतिक शोभा बढ़ाने वाले जोहड़, जो कभी लोकजीवन, आस्था और सांस्कृतिक परंपराओं के जीवंत केंद्र थे, आज उपेक्षा और प्रदूषण के कारण अपने अस्तित्व के गंभीर संकट से जूझ रहे हैं। ये जलस्रोत केवल जल संग्रहण के साधन नहीं थे, बल्कि जल संरक्षण, भौमजल पुनर्भरण और पर्यावरणीय संतुलन की पारंपरिक और अत्यंत प्रभावी व्यवस्था का हिस्सा थे। ग्रामीण जीवन की स्मृतियों, लोकगीतों और सांस्कृतिक परंपराओं में इनका गौरवपूर्ण स्थान रहा है, जहाँ इन्हें जीवन और समृद्धि का प्रतीक माना जाता था। आज ये ही जोहड़ गंदगी के भंडार बनते जा रहे हैं और अपनी मूल पहचान खो रहे हैं।

हमारी प्राचीन जोहड़ संस्कृति प्रकृति, पर्यावरण संरक्षण और पेड़-पौधों के प्रति गहरे मानवीय संबंधों से जुड़ी रही है। एक समय था जब जोहड़ों के किनारे कुएँ, पनघट और घने वृक्ष सामाजिक जीवन के केंद्र होते थे। ये स्थान केवल जल स्रोत ही नहीं, बल्कि संवाद, मेल-जोल और सामुदायिक एकता के प्रतीक भी थे। इनकी पवित्रता बनाए रखने के लिए स्थानीय परंपराएँ और आचार-संहिताएँ भी प्रचलित थीं, जो समय के साथ धीरे-धीरे कमजोर पड़ती गईं।

आधुनिक विकास, शहरीकरण और जल आपूर्ति के वैकल्पिक साधनों के विस्तार ने इन पारंपरिक जलस्रोतों की उपयोगिता को कम कर दिया। परिणामस्वरूप, जोहड़ों की उपेक्षा बढ़ी और वे धीरे-धीरे नालियों के गंदे पानी और कचरे के निकास स्थल में बदलने लगे। यह परिवर्तन केवल पर्यावरणीय क्षति नहीं है, बल्कि हमारी सांस्कृतिक विरासत के क्षरण का भी संकेत है।

यद्यपि सरकार द्वारा इन पारंपरिक जलस्रोतों के संरक्षण हेतु कुछ योजनाएँ और प्रयास किए जा रहे हैं, लेकिन उनका प्रभाव जमीनी स्तर पर अभी भी सीमित दिखाई देता है। अनेक स्थानों पर पुनरुद्धार कार्य अधूरे हैं और रखरखाव की व्यवस्था कमजोर है।

इस स्थिति में आवश्यकता है कि सरकार, स्थानीय समुदाय, सामाजिक संगठनों और पर्यावरण विशेषज्ञों के संयुक्त प्रयास से जोहड़ों के पुनर्जीवन की दिशा में ठोस कदम उठाए जाएँ। स्वच्छता, अतिक्रमण हटाने, जल प्रवाह सुधारने और सामुदायिक भागीदारी को बढ़ावा देने जैसी पहलें आवश्यक हैं। यदि समय रहते इन अनमोल धरोहरों का संरक्षण नहीं किया गया, तो जल संरक्षण की यह पारंपरिक और प्रभावी व्यवस्था पूरी तरह समाप्त हो सकती है, जिसका दुष्परिणाम आने वाली पीढ़ियों को भुगतना पड़ेगा।

वैज्ञानिक पत्रिका के पुराने अंक आप यहाँ से प्राप्त कर सकते हैं -

https://store.pothi.com/search/?q=hvsp&sort_by=relevancy

जंग कैसे लगती है?

डॉ. कमलेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

रावगंज, कालपी, जिला जालौन, उत्तर प्रदेश- 285204

बच्चों! क्या आपने लोहे के पुराने दरवाजों, रेलिंग, जालियों, कीलों, पाइपों, स्क्रू और औजारों को ध्यान से देखा है? कुछ समय बाद उनकी सतह पर लाल-भूरे रंग की परत दिखाई देने लगती है। हम आम बोलचाल में कहते हैं—"लोहे में जंग लग गई।" यही जंग धीरे-धीरे लोहे को कमजोर करती है और लंबे समय में उसकी संरचना को नुकसान पहुँचा सकती है। आइए, अब इसे विज्ञान की भाषा में समझते हैं।

संक्षारण क्या है?

जब कोई धातु अपने वातावरण में उपस्थित ऑक्सीजन, नमी, अम्ल या अन्य रासायनिक पदार्थों के साथ प्रतिक्रिया करके धीरे-धीरे खराब होने लगती है, तो इस प्रक्रिया को संक्षारण (Corrosion) कहते हैं। यह केवल लोहे तक सीमित नहीं है; अलग-अलग धातुओं में संक्षारण अलग-अलग रूपों में दिखाई देता है।

लोहे के संक्षारण को विशेष रूप से जंग लगना (Rusting) कहा जाता है। जब लोहा लंबे समय तक ऑक्सीजन और पानी/नमी के संपर्क में रहता है, तो उसकी सतह पर विद्युत-रासायनिक प्रतिक्रियाएँ होने लगती हैं। इस प्रक्रिया में लोहे का ऑक्सीकरण होकर आयरन आयन बनता है और अंततः जलयोजित आयरन(III) ऑक्साइड तथा आयरन ऑक्सीहाइड्रॉक्साइड जैसे पदार्थों का मिश्रण बनता है, जिसे हम सामान्यतः जंग (rust) कहते हैं। इसका रंग लाल-भूरे से नारंगी-भूरे तक हो सकता है।

जंग की परत सामान्यतः छिद्रपूर्ण और कमजोर होती है। इसलिए यह लोहे की सतह को पूरी तरह से ढककर अंदर की धातु को सुरक्षित नहीं रखती। पानी और ऑक्सीजन इसके नीचे पहुँचते रहते हैं और संक्षारण लगातार आगे बढ़ सकता है। यही कारण है कि लंबे समय तक जंग लगने पर लोहे की वस्तुएँ कमजोर होकर टूट सकती हैं।

एक रोचक तथ्य: समुद्री वातावरण में लोहे में जंग लगने की प्रक्रिया सामान्य वातावरण की तुलना में तेज हो सकती है, क्योंकि नमक युक्त पानी विद्युत-अपघट्य (electrolyte) की तरह काम करता है और संक्षारण की विद्युत-रासायनिक प्रक्रिया को तेज करता है।

क्या सभी धातुओं में जंग लगती है?

सभी धातुओं में संक्षारण हो सकता है, लेकिन सभी में लोहे जैसी जंग नहीं बनती। संक्षारण की प्रकृति धातु और उसके वातावरण पर निर्भर करती है।

एलुमिनियम की सतह पर बहुत पतली और सघन एलुमिनियम ऑक्साइड (Al_2O_3) की परत बनती है। यह परत अंदर की धातु को आगे के संक्षारण से काफी हद तक बचाती है। इसे निष्क्रियता (passivation) कहते हैं।

ताँबे की सतह पर समय के साथ ऑक्साइड और अन्य यौगिकों की परत बन सकती है। लंबे समय तक वायुमंडलीय संपर्क में रहने पर ताँबे पर हरे रंग की पेटिना (patina) विकसित हो सकती है।

चाँदी वायुमंडल में उपस्थित सल्फर यौगिकों के साथ प्रतिक्रिया करके प्रायः सिल्वर सल्फाइड की काली परत विकसित करती है। इसलिए चाँदी का काला पड़ना केवल सिल्वर ऑक्साइड बनने के कारण नहीं होता।

स्टेनलेस स्टील में क्रोमियम की उपस्थिति के कारण सतह पर अत्यंत पतली, सघन और सुरक्षात्मक क्रोमियम ऑक्साइड परत बनती है, जो आगे के संक्षारण को रोकने में मदद करती है।

इस प्रकार, किसी धातु का संक्षारण उसकी रासायनिक प्रकृति, वातावरण, तापमान, नमी और धातु की संरचना पर निर्भर करता है।

जंग और संक्षारण को कैसे रोका जा सकता है?

धातुओं को संक्षारण से बचाने के लिए कई वैज्ञानिक और औद्योगिक विधियाँ अपनाई जाती हैं। इनमें प्रमुख हैं:

1. पेंट और कोटिंग

लोहे या इस्पात की सतह पर पेंट, पॉलिमर या अन्य सुरक्षात्मक कोटिंग की जाती है। इससे धातु का संपर्क हवा और नमी से कम हो जाता है और संक्षारण की प्रक्रिया धीमी पड़ जाती है।

2. ग्रीस और तेल लगाना

मशीनों के पुर्जों, औजारों और अन्य धातु सतहों पर तेल या ग्रीस की परत लगाने से पानी और ऑक्सीजन धातु की सतह तक आसानी से नहीं पहुँच पाते। इस कारण संक्षारण कम होता है।

3. गैल्वनीकरण (Galvanization)

लोहे और इस्पात को जंग से बचाने की सबसे प्रसिद्ध विधियों में से एक गैल्वनीकरण है। इसमें सामान्यतः लोहे या इस्पात की सतह पर जस्ते (Zinc) की सुरक्षात्मक परत चढ़ाई जाती है। गर्म जस्ते में डुबोकर की जाने वाली प्रक्रिया को हॉट-डिप गैल्वनीकरण (Hot-dip galvanizing) कहा जाता है।

जस्ता केवल एक भौतिक अवरोधक परत ही नहीं बनाता, बल्कि यह बलिदानी सुरक्षा (sacrificial protection) भी प्रदान करता है। जस्ता लोहे की तुलना में अधिक आसानी से ऑक्सीकृत होता है, इसलिए यदि कोटिंग पर खरोंच आ जाए तो भी जस्ता पहले संक्षारित होकर लोहे को कुछ हद तक सुरक्षा प्रदान करता है। यही कारण है कि गैल्वनीकृत इस्पात का उपयोग छत की चादरों, पाइपों, तारों, सड़क अवसंरचना और अनेक औद्योगिक उत्पादों में किया जाता है।

4. विद्युत लेपन (Electroplating)

विद्युत लेपन (Electroplating) एक विद्युत-रासायनिक प्रक्रिया है, जिसमें विद्युत धारा की सहायता से किसी धातु की सतह पर दूसरी धातु की पतली परत चढ़ाई जाती है। उदाहरण के लिए, लोहे या इस्पात पर क्रोमियम, निकेल या टिन की परत चढ़ाई जा सकती है।

इसका उद्देश्य केवल संक्षारण से सुरक्षा ही नहीं, बल्कि सतह की कठोरता, चमक, घिसाव प्रतिरोध और सौंदर्य को बढ़ाना भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, ऑटोमोबाइल और घरेलू उपकरणों में क्रोमियम तथा निकेल प्लेटिंग का व्यापक उपयोग होता है।

5. मिश्रधातु निर्माण (Alloying)

किसी धातु में उपयुक्त मात्रा में अन्य तत्व मिलाकर उसके गुणों में सुधार किया जा सकता है। इस प्रकार प्राप्त पदार्थ को मिश्रधातु (Alloy) कहते हैं।

उदाहरण के लिए, स्टेनलेस स्टील में पर्याप्त मात्रा में क्रोमियम होने के कारण सतह पर सुरक्षात्मक क्रोमियम ऑक्साइड की पतली परत बनती है, जो इसे सामान्य इस्पात की तुलना में अधिक संक्षारण-प्रतिरोधी बनाती है। इसी तरह, विभिन्न औद्योगिक उपयोगों के लिए निकेल, मोलिब्डेनम और अन्य तत्वों से युक्त विशेष मिश्रधातुएँ विकसित की जाती हैं।

जंग से बचाव क्यों जरूरी है?

संक्षारण केवल वस्तुओं की सुंदरता खराब नहीं करता, बल्कि यह पुलों, पाइपलाइनों, वाहनों, भवनों, मशीनों और औद्योगिक संयंत्रों की संरचनात्मक सुरक्षा को भी प्रभावित कर सकता है। इसलिए संक्षारण नियंत्रण विज्ञान और इंजीनियरिंग का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। उचित कोटिंग, गैल्वनीकरण, विद्युत-रासायनिक सुरक्षा, मिश्रधातु निर्माण और नियमित रखरखाव के माध्यम से धातुओं का जीवनकाल काफी बढ़ाया जा सकता है।

तो अगली बार जब आप किसी पुराने लोहे के गेट पर लाल-भूरी परत देखें, तो याद रखिए—यह केवल "जंग" नहीं, बल्कि ऑक्सीकरण और विद्युत-रासायनिक प्रतिक्रियाओं से जुड़ी एक वैज्ञानिक प्रक्रिया का परिणाम है। और विज्ञान की मदद से हम इस प्रक्रिया को समझकर धातुओं को लंबे समय तक सुरक्षित भी रख सकते हैं।

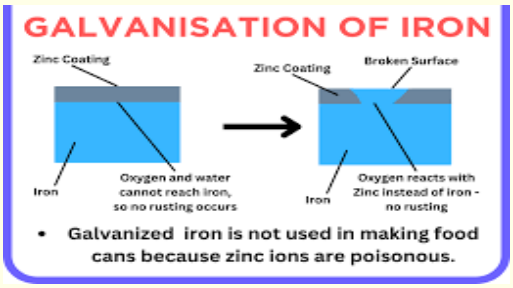

विकसित भारत 2047: करुणा, सह-अस्तित्व और पर्यावरणीय नैतिकता का नया घोष

डॉ. प्रियंका सौरभ

रिसर्च स्कॉलर (राजनीति विज्ञान), कवयित्री, स्वतंत्र पत्रकार एवं स्तंभकार
उब्बा भवन, आर्यनगर, हिसार (हरियाणा) 127045

भारत जब अपनी स्वतंत्रता की शताब्दी वर्ष 2047 की ओर अग्रसर है, तो यह लक्ष्य केवल आर्थिक विकास तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि एक नैतिक, संतुलित और मानवीय समाज के पुनर्निर्माण का संकल्प भी होना चाहिए। किंतु यह संकल्प तभी सार्थक होगा जब विकास का आधार केवल मानव-केंद्रित न होकर संपूर्ण सृष्टि के कल्याण पर आधारित हो। आज जब "विकसित भारत" की बात होती है, तो उसका दायरा प्रायः उद्योग, प्रौद्योगिकी, अवसंरचना और आय-वृद्धि तक सीमित दिखाई देता है। जबकि एक सच्चा विकसित राष्ट्र वही होगा, जहाँ करुणा, सह-अस्तित्व और दया जैसे मानवीय मूल्य नीतियों और योजनाओं की आत्मा बनें।

भारत का संविधान इस दृष्टि का पथप्रदर्शक है। अनुच्छेद 48(क) राज्य को पर्यावरण तथा वन्यजीवों के संरक्षण का निर्देश देता है, जबकि अनुच्छेद 51(क)(छ) प्रत्येक नागरिक का यह मौलिक कर्तव्य निर्धारित करता है कि वह सभी जीवित प्राणियों के प्रति करुणा रखे। ये प्रावधान केवल कानूनी प्रावधान नहीं, बल्कि उस सभ्यतागत चेतना की अभिव्यक्ति हैं जो अहिंसा, दया और "वसुधैव कुटुम्बकम्" के सिद्धांतों पर आधारित है। भारतीय संस्कृति सदियों से यह सिखाती आई है कि सृष्टि का प्रत्येक जीव सम्मान, उद्देश्य और अस्तित्वगत अधिकार रखता है।

फिर भी आधुनिक विकास की गति में पशु कल्याण अपेक्षाकृत पीछे छूट गया है। औद्योगिकीकरण, नगरीकरण और अंधाधुंध उपभोग की प्रवृत्ति ने न केवल प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव डाला है, बल्कि अनेक पशु प्रजातियों के अस्तित्व को भी संकट में डाल दिया है। गिद्धों की घटती संख्या, हाथियों और तेंदुओं के आवासों का सिकुड़ना तथा समुद्री जीवों पर प्रदूषण का प्रभाव इस असंतुलन के स्पष्ट संकेत हैं। किसी भी पारिस्थितिक तंत्र में एक भी प्रजाति का विलुप्त होना संपूर्ण जैव-संतुलन को प्रभावित करता है।

विकास के नाम पर जब हम जंगलों का विनाश करते हैं, नदियों को प्रदूषित करते हैं और पशुओं के प्राकृतिक आवासों को नष्ट करते हैं, तो यह केवल प्रकृति का नुकसान नहीं, बल्कि मानवता की अपनी नींव को कमजोर करना है। इसलिए आवश्यक है कि "विकसित भारत 2047" का दृष्टिकोण केवल आर्थिक समृद्धि तक सीमित न रहकर सभी जीवों के कल्याण को भी अपने केंद्र में रखे।

पशु कल्याण को विकास नीति में शामिल करना केवल नैतिकता का विषय नहीं, बल्कि सतत विकास की अनिवार्य शर्त है। भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में पशुधन की महत्वपूर्ण भूमिका है, जहाँ करोड़ों परिवार दूध, अंडे, ऊन और अन्य उत्पादों पर निर्भर हैं। पशुओं के स्वास्थ्य, पोषण और देखभाल में सुधार से न केवल उत्पादकता बढ़ती है, बल्कि ग्रामीण आय भी अधिक स्थिर होती है। संतुलित पशुपालन से भूमि की उर्वरता और पर्यावरणीय स्थिरता पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

इसके साथ ही, पशु स्वास्थ्य, मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण—ये तीनों एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हैं। कोविड-19 और निपाह वायरस जैसी घटनाओं ने यह स्पष्ट कर दिया है कि किसी एक क्षेत्र में असंतुलन पूरे तंत्र को प्रभावित कर सकता है। इसलिए "वन हेल्थ अप्रोच" को नीति स्तर पर और अधिक प्रभावी ढंग से लागू करना आवश्यक है।

पशु कल्याण का विस्तार शिक्षा, शहरी नियोजन और उद्योग क्षेत्रों में भी होना चाहिए। विद्यालयी शिक्षा में करुणा और सह-अस्तित्व के मूल्यों को शामिल करने से भावी पीढ़ी अधिक संवेदनशील बन सकती है। शहरी योजनाओं में वन्यजीव गलियारों, सुरक्षित पशु-

आवागमन मार्गों और आवारा पशुओं के लिए मानवीय व्यवस्थाओं को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। दिल्ली-मुंबई एक्सप्रेसवे पर बने वन्यजीव मार्ग इस दिशा में एक सकारात्मक उदाहरण हैं।

इसके अतिरिक्त, पशु संरक्षण कानूनों को समयानुकूल और अधिक प्रभावी बनाए जाने की आवश्यकता है। "पशु क्रूरता निवारण अधिनियम, 1960" में आवश्यक संशोधन कर दंडात्मक प्रावधानों को और सुदृढ़ किया जाना चाहिए, ताकि उनका वास्तविक प्रभाव दिखाई दे। पशु चिकित्सा सेवाओं और वैज्ञानिक देखरेख के विस्तार से पशुधन की गुणवत्ता में भी सुधार संभव है।

तकनीकी नवाचार भी इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, उपग्रह निगरानी और डिजिटल ट्रैकिंग प्रणाली वन्यजीव संरक्षण में प्रभावी सिद्ध हो रही हैं। काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान में ई-निगरानी प्रणाली के माध्यम से शिकार की घटनाओं में उल्लेखनीय कमी आई है, जो विज्ञान और संरक्षण के सफल संयोजन का उदाहरण है।

पशु-आधारित उद्योगों—जैसे दुग्ध, चमड़ा और वस्त्र उद्योग—में "क्रूरता-मुक्त उत्पादन" को बढ़ावा देना न केवल नैतिक रूप से आवश्यक है, बल्कि यह वैश्विक बाज़ार में भारत की साख को भी सुदृढ़ करेगा। उपभोक्ता जागरूकता भी इस परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

भारतीय दर्शन के "अहिंसा परमो धर्मः" और "सर्वे भवन्तु सुखिनः" जैसे सिद्धांत केवल धार्मिक आदर्श नहीं, बल्कि स्थायी और संतुलित जीवन के व्यावहारिक सूत्र हैं। यदि "मिशन लाइफ" (Lifestyle for Environment) के साथ पशु कल्याण को भी एकीकृत किया जाए, तो भारत एक ऐसे राष्ट्र के रूप में उभर सकता है जो विकास और करुणा को साथ लेकर चलता है।

अंततः "विकसित भारत 2047" का वास्तविक अर्थ केवल आर्थिक शक्ति नहीं, बल्कि नैतिक संवेदनशीलता और पारिस्थितिक संतुलन भी है। विकास का वास्तविक पैमाना केवल उत्पादन या आय नहीं, बल्कि करुणा और सह-अस्तित्व होना चाहिए। जब भारत अपने विकास पथ पर सभी प्राणियों को साथ लेकर आगे बढ़ेगा, तभी वह वास्तव में "विश्वगुरु" कहलाने का अधिकारी बनेगा।

तुलसी गौड़ा: मौन की महत्ता और जंगल की आत्मा

डॉ. प्रियंका सौरभ

आज जिस दुनिया में हर उपलब्धि को फ़्लैशलाइट, कैमरा और सोशल मीडिया की चमक से आँका जाता है, वहाँ एक वास्तविक नायक का जन्म लेना और जीवनभर उसे सादगी के साथ जीना किसी लोककथा से कम नहीं है। तुलसी गौड़ा वह नाम हैं, जिन्हें धरती ने सींचा, जंगल ने अपनाया और जिनके जीवन ने हर पत्ती और हर बीज में जीवन का संदेश अंकित किया। वे केवल एक पर्यावरण-सेविका नहीं थीं, बल्कि जंगल की आत्मा की सजीव अभिव्यक्ति थीं, जिसे हम प्रत्यक्ष रूप से नहीं देख सकते, परंतु साँसों में अवश्य अनुभव करते हैं।

तुलसी गौड़ा का जन्म कर्नाटक राज्य के उत्तर कन्नड़ जिले के अंकोला तालुक के होनाली गाँव में हुआ था, जो अपनी प्राकृतिक हरियाली के लिए प्रसिद्ध है। वे हलाक्की आदिवासी समुदाय से संबंधित थीं, जो सदियों से प्रकृति के साथ गहरे सह-अस्तित्व में जीवन जीता आया है। उनका जीवन अत्यंत कठिन परिस्थितियों में आरंभ हुआ। मात्र दो वर्ष की आयु में पिता का निधन हो गया और बचपन से ही उन्हें अपनी माँ के साथ जंगल में श्रम करना पड़ा। औपचारिक शिक्षा का अवसर उन्हें कभी प्राप्त नहीं हुआ, किंतु यही जीवन-यथार्थ उन्हें प्रकृति के गहन ज्ञान की ओर ले गया।

तुलसी गौड़ा ने जीवनभर जंगल के साथ एक मौन संवाद बनाए रखा—शब्दों से नहीं, बल्कि संवेदना और अनुभव की भाषा में। वे पेड़ों को परिवार की तरह देखती थीं, मिट्टी की गंध को अपनी पहचान मानती थीं और हर पौधे के विकास को जीवन का

उत्सव समझती थीं। उन्होंने लगभग 30,000 से अधिक पौधे लगाए और उनका संरक्षण किया। उनके इस अनुभवजन्य ज्ञान के कारण उन्हें "Forest Encyclopedia" अर्थात "जंगल का विश्वकोश" कहा गया।

उनका ज्ञान केवल वृक्षारोपण तक सीमित नहीं था, बल्कि वह बीज के अंकुरण, मिट्टी की गुणवत्ता, पौधों की वृद्धि और पारिस्थितिक तंत्र की सूक्ष्म समझ पर आधारित था। वे जंगल को केवल देखती नहीं थीं, बल्कि उसे जीती थीं। यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी।

उन्होंने दशकों तक कर्नाटक के वन विभाग में नर्सरी कार्यकर्ता के रूप में सेवा की। अपने समर्पण और अनुभव से उन्होंने वन संरक्षण, आग नियंत्रण और जैव विविधता संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान दिया। बाद में वे स्थायी कर्मचारी बनीं और लगभग 45 वर्षों तक वन संरक्षण कार्यों से जुड़ी रहीं। स्थानीय समुदाय उन्हें "वृक्ष माता" के रूप में सम्मान देता था।

उनके योगदान के लिए उन्हें अनेक सम्मान प्राप्त हुए। वर्ष 2021 में भारत सरकार ने उन्हें पर्यावरण संरक्षण और वृक्षारोपण में योगदान हेतु पद्म श्री से सम्मानित किया। इसके अतिरिक्त उन्हें इंदिरा प्रियदर्शिनी वृक्षमित्र पुरस्कार, कर्नाटक राज्योत्सव पुरस्कार तथा धरवाड़ कृषि विश्वविद्यालय द्वारा मानद डॉक्टरेट भी प्रदान की गई। किंतु तुलसी गौड़ा के लिए सबसे बड़ा सम्मान स्वयं प्रकृति थी—हर नया अंकुर और हर हरी पत्ती उनके लिए जीवन का उत्सव था।

उनकी सबसे बड़ी पहचान उनकी सादगी थी। पद्म श्री सम्मान प्राप्त करते समय भी वे पारंपरिक वेशभूषा और नंगे पाँव मंच पर पहुँचीं, जो यह दर्शाता है कि वास्तविक सेवा किसी दिखावे की मोहताज नहीं होती।

तुलसी गौड़ा का जीवन केवल पर्यावरण संरक्षण की कहानी नहीं है, बल्कि यह मनुष्य और प्रकृति के पुनः जुड़ाव की प्रेरक कथा है। उन्होंने यह सिद्ध किया कि वास्तविक परिवर्तन बड़े मंचों से नहीं, बल्कि निरंतर, शांत और समर्पित कर्म से आता है।

16 दिसंबर 2024 को 86 वर्ष की आयु में उनके निधन के साथ एक युग का अंत हुआ, किंतु उनकी प्रेरणा आज भी जीवित है। आज जब विश्व जल संकट, वायु प्रदूषण और वन विनाश जैसी चुनौतियों से जूझ रहा है, तुलसी गौड़ा का जीवन हमें यह स्मरण कराता है कि प्रकृति का संरक्षण केवल नीति नहीं, बल्कि व्यक्तिगत जिम्मेदारी भी है।

उनका संदेश स्पष्ट है—प्रकृति को समझना, उससे प्रेम करना और उसकी रक्षा करना ही सच्ची मानवता है। वे केवल एक व्यक्ति नहीं थीं, बल्कि धरती की आत्मा थीं।

तुलसी गौड़ा को नमन—उनकी सादगी, समर्पण और जीवन-दृष्टि हमें एक हरित, संतुलित और संवेदनशील भविष्य की ओर प्रेरित करती रहेगी।

पर्यावरण संकट: नीतियों से नहीं, नागरिक चेतना से बचेगी प्रकृति

(केवल नीति नहीं, नागरिक जिम्मेदारी का प्रश्न)

डॉ. प्रियंका सौरभ

पर्यावरण संरक्षण की बहस अक्सर एक सुविधाजनक दिशा में मोड़ दी जाती है—सरकारें नीतियाँ नहीं बनातीं, मंत्रालय निष्क्रिय हैं, और कानून केवल काग़ज़ों तक सीमित हैं। यह आलोचना पूरी तरह निराधार नहीं है। केंद्रीय और राज्य स्तर पर पर्यावरण प्रबंधन के रिकॉर्ड को देखें तो यह स्पष्ट होता है कि विकास परियोजनाओं के सामने प्रकृति अक्सर पीछे छूट जाती है। जंगलों की कटाई, नदियों का प्रदूषण, वायु प्रदूषण और भौमजल संकट—इन सभी समस्याओं में नीतिगत विफलताओं की भूमिका महत्वपूर्ण है। लेकिन यह केवल आधा सच है। पूरा सच यह है कि पर्यावरण संकट की जड़ें हमारी अपनी जीवनशैली में भी गहराई से जुड़ी हुई हैं।

सामूहिक उत्तरदायित्व, न कि विभागीय विषय

हमने पर्यावरण को सरकार का विषय मान लिया है, जैसे यह नागरिक जीवन से अलग कोई प्रशासनिक फाइल हो। यह मानसिकता स्वयं में एक गंभीर समस्या है। हवा, पानी, मिट्टी और जंगल किसी मंत्रालय की संपत्ति नहीं, बल्कि सामूहिक धरोहर और साझा जिम्मेदारी हैं। जब नागरिक स्वयं को इस जिम्मेदारी से अलग कर लेता है, तब कोई भी नीति अकेले प्रभावी नहीं हो सकती।

प्रदूषण का असली स्रोत

आज प्रदूषण का बड़ा हिस्सा केवल उद्योगों से नहीं, बल्कि हमारे दैनिक जीवन से उत्पन्न हो रहा है—अत्यधिक निजी वाहनों का उपयोग, अनियंत्रित प्लास्टिक, कचरे का असंगठित निस्तारण, पानी और बिजली की फिजूलखर्ची। हम सुविधाओं को अधिकार मान लेते हैं, लेकिन उनके दुष्परिणामों को व्यवस्था की समस्या कहकर टाल देते हैं। यही प्रवृत्ति पर्यावरणीय असंतुलन को बढ़ा रही है।

भारत जैसे विकासशील देश में पर्यावरण संरक्षण को अक्सर विकास के विरोध के रूप में देखा जाता है, जो एक भ्रामक धारणा है। वास्तविकता यह है कि प्रकृति का विनाश स्वयं विकास के विरुद्ध है। बाढ़, सूखा, भीषण गर्मी, जल संकट और स्वास्थ्य समस्याएँ—ये सब उसी असंतुलित विकास के परिणाम हैं जो प्रकृति की सीमाओं को अनदेखा करता है।

व्यक्तिगत आदतें और पर्यावरणीय जिम्मेदारी

इस बहस में नागरिक की भूमिका अक्सर गौण कर दी जाती है। हम यह प्रश्न नहीं पूछते कि हमारे विकास मॉडल में हमारी व्यक्तिगत आदतों की क्या भूमिका है—

- क्या हर छोटी दूरी के लिए निजी वाहन का उपयोग आवश्यक है?
- क्या हर समारोह में दिखावा अनिवार्य है?
- क्या एकल-उपयोग प्लास्टिक के बिना जीवन संभव नहीं है?

इन प्रश्नों से हम बचते हैं, क्योंकि इनके उत्तर हमारी आदतों पर प्रश्न उठाते हैं।

पर्यावरण संरक्षण : कानून नहीं, संस्कार

पर्यावरण संरक्षण केवल कानूनों से संभव नहीं है; यह नागरिक चरित्र और सामाजिक संस्कार का विषय है। जिन देशों में पर्यावरणीय अनुशासन अधिक दिखाई देता है, वहाँ केवल कठोर कानून नहीं, बल्कि नागरिक व्यवहार भी जिम्मेदार होता है।

भारत में एक विरोधाभास स्पष्ट दिखाई देता है—हम अधिकारों के प्रति सजग हैं, लेकिन कर्तव्यों के प्रति अपेक्षाकृत उदासीन। हम सार्वजनिक स्थानों पर स्वच्छता की अपेक्षा सरकार से करते हैं, लेकिन स्वयं जिम्मेदारी नहीं निभाते। हम नदियों को आस्था के नाम पर पूजते हैं, लेकिन उन्हें प्रदूषित करने से नहीं हिचकते।

वृक्षारोपण और वास्तविक संरक्षण

वृक्षारोपण अभियानों में उत्साह तो दिखता है, लेकिन निरंतर देखभाल की कमी के कारण उनका प्रभाव सीमित रह जाता है। आंकड़ों में लाखों पौधे लगाए जाते हैं, लेकिन वास्तविक रूप में वन क्षेत्र अपेक्षित रूप से नहीं बढ़ता। समस्या केवल वृक्ष लगाने की नहीं, बल्कि उनके संरक्षण की जिम्मेदारी लेने की है।

एक पुरानी कहावत इस संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक है—मनुष्य अपने जीवन में जितने संसाधनों का उपभोग करता है, उसे उनके बराबर प्रकृति को लौटाने का प्रयास भी करना चाहिए। आज पेड़ लगाना कोई असाधारण कार्य नहीं, बल्कि एक न्यूनतम नैतिक दायित्व बन चुका है।

सरकार और समाज : दोनों की भूमिका आवश्यक

यह भी सत्य है कि सरकारों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। पर्यावरणीय कानूनों का सख्त पालन, प्रभावी पर्यावरणीय मूल्यांकन, प्रदूषण पर कठोर दंड और स्थानीय निकायों का सशक्तिकरण अनिवार्य हैं। लेकिन इतिहास यह भी दर्शाता है कि जब समाज निष्क्रिय हो जाता है, तब सबसे अच्छे कानून भी प्रभावहीन हो जाते हैं।

स्वच्छ भारत अभियान इसका उदाहरण है—जहाँ नागरिक सहभागिता रही, वहाँ परिणाम दिखे; जहाँ इसे केवल सरकारी योजना माना गया, वहाँ प्रभाव सीमित रहा।

छोटे निर्णय, बड़ा परिवर्तन

पर्यावरण संकट का समाधान किसी एक बड़े निर्णय में नहीं, बल्कि लाखों छोटे-छोटे नागरिक निर्णयों में निहित है—

- कचरे का पृथक्करण
- वर्षा जल संचयन
- सार्वजनिक परिवहन का उपयोग
- ऊर्जा की बचत
- स्थानीय स्तर पर वृक्षारोपण और संरक्षण

ये कदम साधारण लगते हैं, लेकिन इनका सामूहिक प्रभाव अत्यंत बड़ा हो सकता है।

शिक्षा और जागरूकता की भूमिका

विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में पर्यावरण शिक्षा को केवल पाठ्यक्रम तक सीमित नहीं रखना चाहिए, बल्कि इसे व्यावहारिक अनुभव से जोड़ना चाहिए। बच्चों में प्रकृति के प्रति संवेदना विकसित करना उतना ही आवश्यक है जितना ज्ञान देना। मीडिया और सामाजिक संस्थाओं को भी पर्यावरण को केवल आपदा या अभियान के रूप में नहीं, दैनिक जीवन की आवश्यकता के रूप में प्रस्तुत करना चाहिए।

निष्कर्ष

अंततः पर्यावरण संकट का सबसे ईमानदार प्रश्न हम सभी को स्वयं से पूछना होगा—हम प्रकृति को क्या लौटा रहे हैं?

जब तक यह प्रश्न प्रत्येक नागरिक के मन में गहराई से नहीं उतरेगा, तब तक नीतियाँ आती-जाती रहेंगी और प्रकृति धीरे-धीरे क्षीण होती जाएगी। पर्यावरण किसी एक मंत्रालय की जिम्मेदारी नहीं, बल्कि हमारे सामूहिक चरित्र की परीक्षा है।

और इस परीक्षा में सफलता तभी संभव है जब विकास और प्रकृति को विरोधी नहीं, बल्कि एक-दूसरे के पूरक के रूप में देखा जाए। यही संतुलन आने वाली पीढ़ियों के लिए एक सुरक्षित और स्थायी भविष्य की आधारशिला बन सकता है।

धर्मार्थ न्यासों की सामाजिक शक्ति

डॉ. प्रियंका सौरभ

भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण देश में विकास का वास्तविक अर्थ केवल आर्थिक वृद्धि नहीं, बल्कि समाज के प्रत्येक वर्ग तक अवसरों और सुविधाओं की समान पहुँच सुनिश्चित करना है। इस लक्ष्य की प्राप्ति में सरकार के साथ-साथ सार्वजनिक धर्मार्थ न्यास (Public Charitable Trusts) भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला सशक्तिकरण, कौशल विकास, पर्यावरण संरक्षण और सामाजिक न्याय जैसे क्षेत्रों में कार्य करते हुए ये संस्थाएँ समावेशी विकास को गति प्रदान करती हैं।

सार्वजनिक धर्मार्थ न्यास गैर-लाभकारी संस्थाएँ हैं, जो निजी लाभ के बजाय जनकल्याण के उद्देश्य से स्थापित की जाती हैं। ये समाज और राज्य के बीच एक प्रभावी सेतु का कार्य करते हुए उन समुदायों तक पहुँचती हैं, जहाँ सरकारी योजनाओं की पहुँच सीमित रह जाती है। इसलिए इन्हें सामाजिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण माध्यम के रूप में देखा जाता है।

शिक्षा के क्षेत्र में अनेक न्यास विद्यालयों, छात्रवृत्तियों और पुस्तकालयों के माध्यम से वंचित वर्गों को अवसर प्रदान करते हैं। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सामाजिक और आर्थिक उन्नति का आधार है, जो असमानताओं को कम करने और जीवन स्तर में सुधार लाने में सहायक होती है।

स्वास्थ्य क्षेत्र में भी इनका योगदान उल्लेखनीय है। अनेक धर्मार्थ न्यास निःशुल्क या सस्ती स्वास्थ्य सेवाएँ, चिकित्सा शिविर और मोबाइल क्लीनिक संचालित करते हैं। विशेष रूप से मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य, नेत्र रोग और कैंसर जैसी चुनौतियों के समाधान में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण है। बेहतर स्वास्थ्य सेवाएँ न केवल जीवन की गुणवत्ता बढ़ाती हैं, बल्कि मानव संसाधन और राष्ट्रीय उत्पादकता को भी सुदृढ़ करती हैं।

महिला सशक्तिकरण के क्षेत्र में सार्वजनिक धर्मार्थ न्यास महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। कौशल प्रशिक्षण, स्वरोजगार, स्वयं सहायता समूहों और वित्तीय साक्षरता कार्यक्रमों के माध्यम से वे महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता और सामाजिक भागीदारी को बढ़ावा देते हैं। समावेशी विकास तभी संभव है जब महिलाएँ विकास प्रक्रिया में समान भागीदार बनें।

इसके साथ ही, ये संस्थाएँ समाज के कमजोर और हाशिए पर स्थित वर्गों—जैसे अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, दिव्यांगजन, वृद्धजन और बेघर लोगों—के लिए भी महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान करती हैं। विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं और सहायता कार्यक्रमों के माध्यम से वे न केवल आवश्यक संसाधन उपलब्ध कराती हैं, बल्कि सम्मान और गरिमा की भावना को भी सुदृढ़ करती हैं। इस प्रकार सार्वजनिक धर्मार्थ न्यास सामाजिक न्याय और समावेशी विकास को मजबूत करने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास के क्षेत्र में भी सार्वजनिक धर्मार्थ न्यास महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। जल संरक्षण, वृक्षारोपण, जैव विविधता संरक्षण और स्वच्छता अभियानों के माध्यम से वे पर्यावरणीय संतुलन को सुदृढ़ बनाने का प्रयास करते हैं। जलवायु

परिवर्तन जैसी वैश्विक चुनौतियों के दौर में ऐसे प्रयास सतत और दीर्घकालिक विकास के लिए अत्यंत आवश्यक हैं।

आपदा और संकट की परिस्थितियों में भी इन संस्थाओं की भूमिका उल्लेखनीय रही है। बाढ़, भूकंप, चक्रवात तथा महामारी के दौरान अनेक धर्मार्थ न्यासों ने राहत, पुनर्वास और आवश्यक सेवाएँ उपलब्ध कराकर प्रभावित समुदायों की सहायता की है। कोविड-19 महामारी के समय भोजन, दवाइयों और अन्य आवश्यक संसाधनों की उपलब्धता में उनका योगदान विशेष रूप से महत्वपूर्ण रहा।

इसके अतिरिक्त, धर्मार्थ न्यास लोकतांत्रिक भागीदारी और सामाजिक पूँजी के निर्माण को भी सशक्त बनाते हैं। वे लोगों को उनके अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक करते हुए सामुदायिक सहभागिता को बढ़ावा देते हैं। इससे नागरिकों और शासन के बीच विश्वास मजबूत होता है तथा सामाजिक सहयोग और उत्तरदायित्व की भावना विकसित होती है। इस प्रकार ये संस्थाएँ समावेशी और सहभागी लोकतंत्र को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

सार्वजनिक धर्मार्थ न्यासों की प्रभावशीलता के लिए पारदर्शिता और जवाबदेही अत्यंत आवश्यक हैं। वित्तीय अनियमितताओं, संसाधनों के दुरुपयोग और प्रशासनिक कमजोरियों के आरोप उनकी विश्वसनीयता को प्रभावित कर सकते हैं। इसलिए नियमित लेखा-परीक्षण, प्रभावी निगरानी और पारदर्शी संचालन व्यवस्था सुनिश्चित करना आवश्यक है। इस दिशा में नियामक ढाँचे और सामाजिक लेखा-परीक्षण महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

साथ ही, धर्मार्थ न्यासों और सरकारी संस्थाओं के बीच बेहतर समन्वय की आवश्यकता है। सरकार, निजी क्षेत्र और सामाजिक संगठनों की साझेदारी संसाधनों के अधिक प्रभावी उपयोग और विकास कार्यक्रमों के व्यापक क्रियान्वयन को संभव बना सकती है। यह त्रिपक्षीय सहयोग समावेशी विकास को नई गति प्रदान कर सकता है।

डिजिटल युग ने धर्मार्थ न्यासों के लिए नए अवसर भी खोले हैं। तकनीक की सहायता से वे सेवाओं की पहुँच बढ़ा सकते हैं, लाभार्थियों की बेहतर पहचान कर सकते हैं और कार्यप्रणाली में अधिक पारदर्शिता ला सकते हैं। हालाँकि, डिजिटल विभाजन जैसी चुनौतियों का समाधान भी आवश्यक है। प्रभावी तकनीकी उपयोग से इन संस्थाओं की सामाजिक भूमिका और अधिक सशक्त एवं प्रभावशाली बन सकती है।

वर्तमान समय में बढ़ती आर्थिक असमानताओं, सामाजिक चुनौतियों और पर्यावरणीय संकटों के बीच सार्वजनिक धर्मार्थ न्यासों का महत्व और अधिक बढ़ गया है। ये संस्थाएँ केवल सहायता प्रदान नहीं करतीं, बल्कि समाज में सहानुभूति, सहयोग और सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना को भी सुदृढ़ करती हैं। इनके माध्यम से नागरिक समाज अधिक सक्रिय बनता है और विकास प्रक्रिया अधिक मानवीय तथा सहभागी स्वरूप ग्रहण करती है।

अंततः, सार्वजनिक धर्मार्थ न्यास भारत के समावेशी विकास के महत्वपूर्ण स्तंभ हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला सशक्तिकरण, सामाजिक न्याय और पर्यावरण संरक्षण जैसे क्षेत्रों में उनका योगदान विकास के लाभों को अंतिम व्यक्ति तक पहुँचाने में सहायक है। पारदर्शिता, जनभागीदारी और प्रभावी सहयोग के माध्यम से उनकी भूमिका और सशक्त बन सकती है। जब सरकार, समाज और धर्मार्थ संस्थाएँ मिलकर कार्य करती हैं, तभी विकास वास्तविक और समावेशी परिवर्तन का रूप लेता है।

'हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद' का खाता

'द बार्क एम्प्लॉई को-ऑप क्रेडिट सोसाइटी लिमिटेड' में खोला गया है।
कोई भी राशि 'द बार्क एम्प्लॉई को-ऑप क्रेडिट सोसाइटी लिमिटेड' के निम्नलिखित 'स्टेट बैंक ऑफ़ इंडिया' के खाते में जमा की जानी है:
खाता संख्या: 10536132149 (हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद-13262)
IFS कोड: SBIN0001268
ब्रांच: 'स्टेट बैंक ऑफ़ इंडिया', भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र (BARC) ब्रांच, ट्रांबे, मुंबई-400085
हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद खाते में धनराशि जमा करने के लिए अकाउंट नंबर के साथ '(हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद-13262)' लिखना अनिवार्य है।
धनराशि जमा करने के बाद कृपया रशीद की प्रतिलिपि निम्न ईमेल पर भेजें।
hvsp.sachiv@gmail.com

बोतलबंद पानी का भारत: सार्वजनिक जल प्रशासन की गहरी विफलता

डॉ. सत्यवान सौरभ

कवि, स्वतंत्र पत्रकार एवं स्तंभकार, आकाशवाणी एवं टीवी पेनालिस्ट,
333, परी वाटिका, कौशल्या भवन, बड़वा (सिवानी) भिवानी, हरियाणा

भारत में बोतलबंद पानी पर बढ़ती निर्भरता केवल उपभोक्ता व्यवहार में आए बदलाव की कहानी नहीं है, बल्कि यह सार्वजनिक जल प्रशासन में व्याप्त गहरी और बहुस्तरीय प्रणालीगत समस्याओं का स्पष्ट संकेत भी है। कभी नल का पानी नागरिकों के लिए एक बुनियादी अधिकार और राज्य की जिम्मेदारी माना जाता था, आज वही अविश्वास, असुरक्षा और असमानता का प्रतीक बनता जा रहा है। शहरों से लेकर कस्बों और ग्रामीण क्षेत्रों तक, लोग तेजी से बोतलबंद पानी पर निर्भर होते जा रहे हैं। यह प्रवृत्ति न केवल आर्थिक बोझ बढ़ाती है, बल्कि पर्यावरणीय संकट, सामाजिक असमानता और शासन व्यवस्था की विश्वसनीयता पर भी गंभीर प्रश्न खड़े करती है।

जल संकट का वास्तविक स्वरूप

आधुनिक भारत में जल संकट को अक्सर वर्षा की कमी, जलवायु परिवर्तन या जनसंख्या वृद्धि से जोड़ा जाता है। ये सभी कारक महत्वपूर्ण हैं, लेकिन बोतलबंद पानी की लोकप्रियता का मूल कारण इससे कहीं अधिक गहरा है। असली समस्या सार्वजनिक जल आपूर्ति प्रणालियों में घटता विश्वास है।

नलों से आने वाले पानी की गुणवत्ता पर संदेह, अनियमित आपूर्ति और पारदर्शिता की कमी ने नागरिकों को वैकल्पिक स्रोतों की ओर धकेल दिया है। जब राज्य अपनी बुनियादी जिम्मेदारी निभाने में कमजोर पड़ता है, तब बाजार उस रिक्त स्थान को भर देता है—अक्सर मुनाफे की शर्तों पर।

शहरी भारत : सुविधा और असुरक्षा का विरोधाभास

शहरी भारत में बोतलबंद पानी का उपयोग अब लगभग जीवनशैली का हिस्सा बन चुका है। कार्यालयों, विद्यालयों, अस्पतालों और सरकारी संस्थानों तक में बड़े जार और बोतलें आम दृश्य हैं। यह स्थिति विडंबनापूर्ण है, क्योंकि इन्हीं शहरों में विकसित जल अवसंरचना का दावा किया जाता है। यदि इतनी सुविधाओं के बावजूद नागरिक सुरक्षित नल का पानी नहीं पी सकते, तो यह प्रशासनिक और तकनीकी विफलता का संकेत है। पाइपलाइनों की खराब स्थिति, पेयजल और सीवेज लाइनों का मिश्रण, तथा नियमित गुणवत्ता परीक्षण की कमी—ये समस्याएँ वर्षों से मौजूद हैं, लेकिन उनका समाधान अब भी आंशिक ही रहा है।

ग्रामीण भारत : असमानता का दूसरा चेहरा

ग्रामीण क्षेत्रों में स्थिति भिन्न होते हुए भी उतनी ही गंभीर है। वहां बोतलबंद पानी का उपयोग अपेक्षाकृत कम है, लेकिन निजी कंपनियों की बढ़ती पहुंच के साथ यह प्रवृत्ति धीरे-धीरे बढ़ रही है।

कई क्षेत्रों में भौमजल में फ्लोराइड, आर्सेनिक या आयरन की अधिकता के कारण स्थानीय जल स्रोत असुरक्षित हो गए हैं। सामुदायिक नल और हैंडपंप अक्सर खराब या अनुपयोगी स्थिति में रहते हैं। ऐसे में आर्थिक रूप से सक्षम लोग बोतलबंद पानी का सहारा लेते हैं, जबकि गरीब वर्ग दूषित पानी पीने को मजबूर रहता है। यह स्थिति जल संसाधनों के क्षेत्र में गहरी असमानता को जन्म देती है।

बोतलबंद पानी उद्योग और नियमन की चुनौती

बोतलबंद पानी उद्योग का विस्तार कई महत्वपूर्ण प्रश्न उठाता है। यह उद्योग "शुद्धता" और "सुरक्षा" का दावा करता है, लेकिन इसके नियमन में गंभीर कमियां दिखाई देती हैं। कई बार बाजार में उपलब्ध उत्पाद भी गुणवत्ता मानकों पर खरे नहीं उतरते।

इसके बावजूद उपभोक्ताओं में यह धारणा बनी रहती है कि बोतलबंद पानी अधिक सुरक्षित है। यह स्थिति सार्वजनिक जल संस्थानों की साख पर प्रश्नचिह्न लगाती है। यदि राज्य-नियंत्रित जल आपूर्ति पर भरोसा कमजोर हो, तो यह लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के लिए भी चिंता का विषय है।

पर्यावरणीय प्रभाव

पर्यावरण की दृष्टि से बोतलबंद पानी पर बढ़ती निर्भरता अत्यंत गंभीर समस्या है। प्लास्टिक कचरे की मात्रा तेजी से बढ़ रही है और पुनर्चक्रण की दर सीमित है। अधिकांश प्लास्टिक अंततः नदियों, झीलों और समुद्रों तक पहुँचकर पारिस्थितिक तंत्र को प्रभावित करता है। इसके अलावा, बोतलबंद पानी के उत्पादन में जल और ऊर्जा दोनों का अत्यधिक उपयोग होता है। जिस संसाधन की कमी को लेकर चिंता जताई जाती है, उसी संसाधन का उपयोग करके एक वैकल्पिक उत्पाद तैयार किया जाता है—यह एक गहरा विरोधाभास है।

प्रशासनिक और नीतिगत चुनौतियाँ

जल प्रशासन केवल तकनीकी मुद्दा नहीं है, बल्कि यह संस्थागत और राजनीतिक चुनौती भी है। कई विभाग संसाधनों की कमी, मानव संसाधन की अनुपलब्धता और समन्वय की समस्याओं से जूझते हैं। जल आपूर्ति जैसी बुनियादी सेवा अक्सर राजनीतिक प्राथमिकता में पीछे रह जाती है। बड़े-बड़े परियोजनाओं पर ध्यान केंद्रित होता है, जबकि दैनिक जल आपूर्ति की गुणवत्ता और स्थिरता जैसे मुद्दे उपेक्षित रह जाते हैं।

निजीकरण और सामाजिक असमानता

सार्वजनिक जल व्यवस्था के कमजोर होने पर निजीकरण को समाधान के रूप में देखा जाता है। कुछ मामलों में यह दक्षता बढ़ाता है, लेकिन यह भी सत्य है कि इसका लाभ मुख्यतः उन्हीं लोगों तक सीमित रहता है जो भुगतान कर सकते हैं। पानी जैसे मूलभूत संसाधन का बाजार आधारित वितरण सामाजिक न्याय के सिद्धांतों के विपरीत है। बोतलबंद पानी इसी प्रवृत्ति का उदाहरण है, जहां स्वच्छ जल एक अधिकार नहीं बल्कि उपभोक्ता वस्तु बन जाता है।

सामाजिक स्वीकृति और बढ़ता जोखिम

सबसे चिंताजनक पहलू यह है कि बोतलबंद पानी पर निर्भरता धीरे-धीरे सामान्य मान ली गई है। यह समस्या के समाधान के बजाय एक आदत बन रही है। इससे सार्वजनिक दबाव कम होता है और सुधार की मांग कमजोर पड़ती है। जब नागरिक स्वयं वैकल्पिक व्यवस्था अपना लेते हैं, तो राज्य पर जवाबदेही का दबाव घट जाता है। यह स्थिति भविष्य में बड़े जल संकट का कारण बन सकती है।

आगे का मार्ग

आवश्यकता इस बात की है कि जल को पुनः एक सार्वजनिक भलाई के रूप में स्थापित किया जाए। इसके लिए सबसे पहले नल के पानी की गुणवत्ता, नियमितता और पारदर्शिता सुनिश्चित करनी होगी। जल परीक्षण के परिणामों को सार्वजनिक करना और शिकायत निवारण प्रणाली को प्रभावी बनाना आवश्यक है।

जल अवसंरचना में निवेश—जैसे पाइपलाइन सुधार, सीवेज प्रबंधन और जल शोधन संयंत्रों का आधुनिकीकरण—को प्राथमिकता देनी होगी।

इसके साथ ही जन-जागरूकता भी महत्वपूर्ण है। नागरिकों को यह समझाना होगा कि बोतलबंद पानी दीर्घकालिक समाधान नहीं है, बल्कि एक अस्थायी और संसाधन-गहन विकल्प है। स्कूलों, स्थानीय निकायों और सामाजिक संगठनों की भूमिका इस दिशा में निर्णायक हो सकती है।

निष्कर्ष

बोतलबंद पानी पर बढ़ती निर्भरता एक चेतावनी है—यह संकेत है कि सार्वजनिक जल प्रशासन में गहरी संरचनात्मक कमियां मौजूद हैं। यह केवल उपभोक्ता विकल्प का प्रश्न नहीं, बल्कि शासन, समानता और पर्यावरणीय स्थिरता का प्रश्न है।

यदि जल व्यवस्था को मजबूत नहीं किया गया, तो पानी जैसी मूलभूत आवश्यकता भी असमानता और संकट का कारण बन सकती है। समय की मांग है कि राज्य, समाज और नागरिक मिलकर इस प्रवृत्ति पर पुनर्विचार करें और जल को पुनः विश्वास, समानता और सार्वजनिक जिम्मेदारी के दायरे में लाएँ। तभी एक सुरक्षित और टिकाऊ भविष्य संभव हो सकेगा।

एक देश, एक पाठ्यक्रम: संघीयता का संकट या शिक्षा क्रांति?

डॉ. सत्यवान सौरभ

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 के अंतर्गत प्रस्तावित "एक देश, एक पाठ्यक्रम" का विचार देशभर में व्यापक बहस का विषय बना हुआ है। अप्रैल 2026 तक स्थिति यह है कि तमिलनाडु, केरल और पश्चिम बंगाल जैसे राज्य इसे संघीय ढांचे और अपनी शैक्षिक स्वायत्तता पर संभावित हस्तक्षेप

मानते हुए इसका विरोध कर रहे हैं, जबकि केंद्र सरकार इसे शिक्षा में गुणवत्ता, समानता और न्यूनतम मानकों की दिशा में एक महत्वपूर्ण सुधारात्मक कदम के रूप में प्रस्तुत करती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने भारतीय शिक्षा प्रणाली में संरचनात्मक परिवर्तन का एक व्यापक खाका प्रस्तुत किया है। लगभग तीन दशकों बाद आई इस नीति ने 1986 की व्यवस्था को प्रतिस्थापित करते हुए 5+3+3+4 की नई संरचना प्रस्तावित की है। इसके अंतर्गत प्रारंभिक, प्राथमिक, उच्च प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा को अधिक लचीला और चरणबद्ध बनाया गया है। मातृभाषा में शिक्षा, बहुभाषिकता, व्यावसायिक प्रशिक्षण और डिजिटल साक्षरता को भी इसके केंद्र में रखा गया है।

"एक देश, एक पाठ्यक्रम" का आधार राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा है, जिसका उद्देश्य पूरे देश में एक न्यूनतम शैक्षिक मानक स्थापित करना है। नीति में राज्यों को लगभग 30 प्रतिशत तक लचीलापन भी प्रदान किया गया है, ताकि वे अपनी क्षेत्रीय और सांस्कृतिक आवश्यकताओं के अनुरूप संशोधन कर सकें। हालांकि, आलोचकों का तर्क है कि यह लचीलापन व्यवहार में सीमित हो सकता है और पाठ्यक्रम का वास्तविक स्वरूप केंद्रीकरण की ओर झुक सकता है।

संविधान के अनुसार शिक्षा समवर्ती सूची का विषय है, जिसमें केंद्र और राज्य दोनों की भूमिका निर्धारित है। ऐसे में कुछ राज्यों का आरोप है कि वित्तीय अनुदान और योजनाओं के माध्यम से नीति-स्वीकृति का अप्रत्यक्ष दबाव बनाया जा रहा है। तमिलनाडु जैसे राज्यों ने इस संदर्भ में वित्तीय आवंटन में देरी या कटौती को भी मुद्दा बनाया है।

इस बहस का एक महत्वपूर्ण पक्ष भाषाई और सांस्कृतिक विविधता है। कुछ राज्यों को आशंका है कि समान पाठ्यक्रम से क्षेत्रीय इतिहास, साहित्य और भाषाई पहचान प्रभावित हो सकती है। वहीं, केंद्र सरकार का कहना है कि त्रि-भाषा सूत्र में किसी भाषा को अनिवार्य नहीं किया गया है और राज्यों को पर्याप्त लचीलापन प्रदान किया गया है।

समर्थकों का तर्क है कि शिक्षा की गुणवत्ता में मौजूद असमानताओं को दूर करने के लिए एक न्यूनतम राष्ट्रीय मानक आवश्यक है। साथ ही, कौशल-आधारित शिक्षा, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डेटा साइंस और डिजिटल तकनीकों को पाठ्यक्रम से जोड़कर विद्यार्थियों को भविष्य की अर्थव्यवस्था के लिए तैयार किया जा सकता है।

दूसरी ओर, आलोचकों का मानना है कि समान पाठ्यक्रम और केंद्रीकृत परीक्षाएँ प्रतिस्पर्धा, निजीकरण और कोचिंग संस्कृति को बढ़ावा दे सकती हैं, जिससे संसाधन-संपन्न और वंचित विद्यार्थियों के बीच शैक्षिक असमानता और गहरी हो सकती है।

भारत में शिक्षा सुधार हमेशा बहस और असहमति के साथ आगे बढ़े हैं—मैकाले प्रणाली से लेकर कोठारी आयोग और बाद की नीतियों तक हर बदलाव का समर्थन और विरोध दोनों हुआ है। फिर भी यह स्पष्ट है कि सुधार के बिना शिक्षा व्यवस्था को आधुनिक आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं बनाया जा सकता।

अंतरराष्ट्रीय उदाहरण मिश्रित संकेत देते हैं—फिनलैंड जैसी प्रणालियाँ समानता और गुणवत्ता के लिए केंद्रीकृत मानकों पर जोर देती हैं, जबकि अमेरिका में विकेंद्रीकरण अधिक है, पर क्षेत्रीय असमानताएँ भी अधिक दिखाई देती हैं। इसलिए भारत जैसे विविध देश के लिए किसी एक मॉडल को अपनाने के बजाय संतुलित दृष्टिकोण आवश्यक है।

भारत को वैश्विक प्रतिस्पर्धा में आगे बढ़ाने के लिए एक मजबूत, लचीली और समावेशी शिक्षा प्रणाली आवश्यक है। इसके लिए केंद्र और राज्यों के बीच सहयोग, संवाद और आपसी विश्वास जरूरी है, क्योंकि किसी भी टकराव का सबसे अधिक प्रभाव अंततः छात्रों पर ही पड़ता है।

"एक देश, एक पाठ्यक्रम" को केवल एक नीतिगत पहल नहीं, बल्कि शिक्षा में न्यूनतम समानता सुनिश्चित करने के व्यापक दृष्टिकोण के रूप में देखा जाना चाहिए। इसकी सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि इसे कितनी संवेदनशीलता और लोकतांत्रिक सहमति के साथ लागू किया जाता है।

भारत जैसे बहुलतावादी देश में शिक्षा का कोई भी मॉडल तभी सफल हो सकता है जब वह राष्ट्रीय लक्ष्यों और क्षेत्रीय विविधताओं के बीच संतुलन बनाए। इसे टकराव के बजाय सहयोग के माध्यम से आगे बढ़ाना आवश्यक है, तभी यह प्रक्रिया वास्तविक शिक्षा क्रांति का रूप ले सकती है।

शहरों में पैदल चलने का अधिकार या संघर्ष?

डॉ. सत्यवान सौरभ

भारत के शहर तेजी से बदल रहे हैं। चौड़ी सड़कें, ऊँचे फ्लाईओवर, एक्सप्रेस-वे, मेट्रो नेटवर्क और स्मार्ट सिटी परियोजनाएँ आधुनिक विकास के प्रतीक मानी जा रही हैं। लेकिन इस चमकदार विकास के बीच एक बुनियादी प्रश्न अनुत्तरित है—क्या हमारे शहर इंसानों के लिए बने हैं या केवल वाहनों के लिए? क्या हर नागरिक को सुरक्षित, सम्मानजनक और सुविधाजनक ढंग से पैदल चलने का अधिकार वास्तव में उपलब्ध है?

'राइट टू वॉक' (Right to Walk) केवल परिवहन का मुद्दा नहीं, बल्कि स्थानिक न्याय (Spatial Justice), सामाजिक समानता और मानवीय गरिमा से जुड़ा प्रश्न है। यदि कोई नागरिक सड़क पर सुरक्षित रूप से पैदल नहीं चल सकता, तो यह महज यातायात की समस्या नहीं, बल्कि उसके नागरिक अधिकारों और सार्वजनिक स्थानों पर समान पहुँच के सीमित होने का संकेत है।

भारत में करोड़ों लोग आज भी अपनी दैनिक यात्राओं का बड़ा हिस्सा पैदल तय करते हैं। बच्चे, बुजुर्ग, महिलाएँ, दिव्यांगजन, मजदूर, छोटे दुकानदार और सार्वजनिक परिवहन का उपयोग करने वाले लोग किसी न किसी चरण में पैदल चलते हैं। फिर भी शहरी नियोजन में पैदल यात्रियों को सबसे कम प्राथमिकता मिलती है। फुटपाथ या तो नहीं हैं, या अतिक्रमण से घिरे हैं, अथवा इतने जर्जर हैं कि लोग सड़क पर चलने को मजबूर होते हैं। यही कारण है कि सड़क दुर्घटनाओं में पैदल यात्रियों की संख्या चिंताजनक रूप से अधिक है।

विडंबना यह है कि जिनके पास निजी वाहन नहीं हैं, वे ही सबसे अधिक जोखिम उठाते हैं। कारों के लिए चौड़ी सड़कें हैं, लेकिन पैदल चलने वालों के लिए सुरक्षित फुटपाथ नहीं। यह केवल आर्थिक असमानता नहीं, बल्कि स्थानिक अन्याय और असमान शहरी नियोजन का स्पष्ट उदाहरण है।

स्थानिक न्याय का अर्थ है कि शहर के सार्वजनिक संसाधनों, स्थानों और सुविधाओं पर सभी नागरिकों का समान अधिकार हो। यदि सार्वजनिक स्थानों का अधिकांश हिस्सा वाहनों के लिए आरक्षित हो और पैदल यात्रियों, साइकिल चालकों तथा दिव्यांगजनों के लिए पर्याप्त व्यवस्था न हो, तो यह सार्वजनिक स्थानों के असमान वितरण और स्थानिक अन्याय को दर्शाता है।

भारतीय शहरों की अधिकांश सड़कें वाहन-केंद्रित सोच के साथ विकसित हुई हैं, जहाँ यातायात प्रबंधन का प्रमुख लक्ष्य वाहनों की गति बढ़ाना माना जाता है। जबकि सड़क का मूल उद्देश्य लोगों को सुरक्षित और सुगम आवागमन उपलब्ध कराना होना चाहिए। यही कारण है कि कहीं फुटपाथ अचानक समाप्त हो जाते हैं, कहीं बिजली के खंभे, ट्रांसफार्मर और ठेले रास्ता रोकते हैं, तो कहीं अवैध पार्किंग ने पैदल चलने की पूरी जगह घेर रखी होती है।

महिलाओं के लिए सुरक्षित पैदल मार्ग केवल सुविधा नहीं, बल्कि स्वतंत्रता और सम्मान का प्रश्न है। अंधेरी, सुनसान या जर्जर सड़कों से गुजरना उनकी आवाजाही को सीमित करता है। इसी तरह बुजुर्गों के लिए ऊँचे फुटपाथ, बिना रैंप वाली क्रॉसिंग और तेज यातायात बड़ी बाधाएँ हैं, जबकि दिव्यांगजन कई बार सार्वजनिक स्थानों का उपयोग ही नहीं कर पाते।

इसीलिए संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) में समावेशी, सुरक्षित और सुलभ शहरों पर विशेष जोर दिया गया है। कोई शहर तभी वास्तव में समावेशी कहलाएगा, जब हर नागरिक—चाहे उसकी आय, आयु, लिंग या शारीरिक क्षमता कुछ भी हो—समान सम्मान और सुरक्षा के साथ सार्वजनिक स्थानों का उपयोग कर सके। विडंबना है कि आज भी शहरी विकास को अक्सर वाहनों की गति से आँका जाता है, जबकि किसी विकसित शहर की असली पहचान यह होनी चाहिए कि वहाँ पैदल चलना कितना सुरक्षित, सहज और आरामदायक है।

विश्व के अनेक देशों ने 'वॉकेबल सिटी' की अवधारणा को अपनाया है। उन्होंने समझा है कि अत्यधिक वाहन-निर्भरता प्रदूषण, ऊर्जा संकट, मानसिक तनाव, सड़क दुर्घटनाओं और सामाजिक अलगाव को बढ़ाती है। इसके विपरीत, पैदल चलने योग्य शहर स्वास्थ्य, पर्यावरण, स्थानीय अर्थव्यवस्था और सामाजिक संवाद को बढ़ावा देते हैं।

पैदल चलने से स्थानीय बाजारों और छोटे व्यवसायों को लाभ मिलता है, सामुदायिक संबंध मजबूत होते

हैं और शहर अधिक जीवंत बनते हैं। नियमित पैदल चलना मोटापा, मधुमेह, उच्च रक्तचाप और हृदय रोग जैसी जीवनशैली संबंधी बीमारियों के जोखिम को भी कम करता है। यदि शहर पैदल चलने को प्रोत्साहित करें, तो नागरिकों का स्वास्थ्य बेहतर होने के साथ सार्वजनिक स्वास्थ्य पर होने वाला खर्च भी कम किया जा सकता है।

पर्यावरणीय दृष्टि से भी 'राइट टू वॉक' अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारत के बड़े शहर वायु प्रदूषण, कार्बन उत्सर्जन और ट्रैफिक जाम से जूझ रहे हैं। छोटी दूरी की यात्राओं में यदि लोग पैदल चलें, तो ईंधन की खपत और प्रदूषण कम होंगे तथा जलवायु परिवर्तन से निपटने में भी मदद मिलेगी।

स्मार्ट सिटी केवल डिजिटल तकनीक और निगरानी प्रणालियों से नहीं बनती। वास्तविक स्मार्ट सिटी वह है, जहाँ बच्चा सुरक्षित स्कूल जा सके, बुजुर्ग निडर होकर पार्क पहुँच सके, महिलाएँ आत्मविश्वास से चल सकें और दिव्यांगजन बिना बाधा सार्वजनिक स्थानों का उपयोग कर सकें।

'राइट टू वॉक' सड़क सुरक्षा से भी गहराई से जुड़ा है। तेज रफ्तार, अवैध पार्किंग, अतिक्रमण, अव्यवस्थित यातायात और सुरक्षित पैदल पारपथों की कमी पैदल यात्रियों के लिए गंभीर खतरा हैं। सुरक्षित फुटपाथ, उचित क्रॉसिंग और पैदल यात्रियों को प्राथमिकता देने वाली व्यवस्था आवश्यक है।

शहरों में अक्सर फुटओवर ब्रिज और सबवे बनाए जाते हैं, लेकिन उनकी उपयोगिता, दूरी और पहुँच का पर्याप्त ध्यान नहीं रखा जाता। बुजुर्ग, महिलाएँ और दिव्यांगजन कई बार उनका उपयोग नहीं कर पाते और मजबूरन सड़क पार करते हैं। केवल ढाँचा खड़ा करना पर्याप्त नहीं, उसे मानव-केंद्रित और सभी के लिए सुलभ बनाना आवश्यक है।

'राइट टू वॉक' सामाजिक न्याय से भी जुड़ा है। आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग सार्वजनिक परिवहन और पैदल यात्रा पर अधिक निर्भर रहता है। यदि शहर पैदल यात्रियों के लिए सुरक्षित नहीं होंगे, तो सबसे अधिक नुकसान इन्हीं वर्गों को होगा। इस तरह वाहन-केंद्रित शहरी ढाँचा अनजाने में सामाजिक असमानता को और गहरा करता है।

आवश्यक है कि सड़क नियोजन में पैदल यात्रियों को प्राथमिकता दी जाए। फुटपाथ पर्याप्त चौड़े, समतल, निरंतर और बाधा-मुक्त हों तथा प्रमुख चौराहों पर सुरक्षित ज़ेब्रा क्रॉसिंग, ट्रैफिक सिग्नल, रैंप, टैक्टाइल पाथ और दिव्यांग-अनुकूल सुविधाएँ अनिवार्य हों। अवैध पार्किंग और अतिक्रमण पर भी प्रभावी नियंत्रण जरूरी है।

प्रत्येक सड़क परियोजना के साथ 'पैदल अधिप्रभाव आकलन' (Pedestrian Impact Assessment) जैसी व्यवस्था अपनाई जानी चाहिए, ताकि सड़कें केवल वाहनों के लिए नहीं, बल्कि नागरिकों के लिए भी सुरक्षित और उपयोगी बनें। साथ ही, 'कम्प्लीट स्ट्रीट्स' (Complete Streets) की अवधारणा को बढ़ावा देना चाहिए, जिसमें पैदल यात्रियों, साइकिल चालकों, सार्वजनिक परिवहन और मोटर वाहनों के लिए संतुलित एवं सुरक्षित स्थान सुनिश्चित हो।

विद्यालयों, बाजारों, अस्पतालों और सार्वजनिक संस्थानों के आसपास विशेष 'पैदल सुरक्षा क्षेत्र' विकसित किए जाने चाहिए, जहाँ वाहनों की गति सीमित हो और पैदल यात्रियों को प्राथमिकता मिले। बच्चों के लिए सुरक्षित स्कूल मार्ग, महिलाओं के लिए पर्याप्त प्रकाश व्यवस्था और बुजुर्गों के लिए बैठने की सुविधा जैसे छोटे कदम भी शहरों को अधिक सुरक्षित और मानवीय बना सकते हैं।

इसके साथ नागरिकों के व्यवहार में भी बदलाव जरूरी है। फुटपाथ पर वाहन खड़े करना, ज़ेब्रा क्रॉसिंग पर गाड़ी रोकना, पैदल यात्रियों को रास्ता न देना और तेज गति से वाहन चलाना केवल यातायात नियमों का उल्लंघन नहीं, बल्कि दूसरे नागरिकों के अधिकारों की अनदेखी है। सड़क एक साझा सार्वजनिक स्थान है, जहाँ हर व्यक्ति को सुरक्षित और समान आवागमन का अधिकार है।

अंततः 'राइट टू वॉक' कोई विलासिता नहीं, बल्कि जीवन, समानता, गरिमा, सुरक्षा, स्वास्थ्य और पर्यावरण से जुड़ा मूलभूत नागरिक अधिकार है। यदि शहर केवल कारों के लिए विकसित होंगे, तो वे आर्थिक रूप से आधुनिक दिख सकते हैं, लेकिन सामाजिक रूप से असमान और मानवीय दृष्टि से अधूरे रहेंगे। वास्तव में विकसित शहर वही है, जहाँ हर नागरिक सुरक्षित, स्वतंत्र और सम्मान के साथ चल सके।

एक सभ्य और संवेदनशील शहर की पहचान उसकी चौड़ी सड़कों या ऊँची इमारतों से नहीं, बल्कि इस बात से होती है कि वहाँ सबसे कमजोर नागरिक कितनी सुरक्षा, सहजता और सम्मान से पैदल चल सकता है। इसलिए अब समय है कि शहरी विकास वाहन-केंद्रित सोच से मानव-केंद्रित दृष्टिकोण की ओर बढ़े। जब हर नागरिक बिना भय, बाधा और भेदभाव के चल सकेगा, तभी सार्वजनिक स्थान वास्तव में सबके होंगे और 'राइट टू वॉक' महज नारा नहीं, बल्कि जीवंत वास्तविकता बनेगा।

अग्नि-जाल में बदलते शहरी भवन

डॉ. सत्यवान सौरभ

भारत आज विश्व के सबसे तेज़ी से शहरीकरण करने वाले देशों में शामिल है। आर्थिक विकास, औद्योगीकरण, सेवा क्षेत्र के विस्तार और ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर पलायन ने भारतीय शहरों का स्वरूप तेजी से बदला है। महानगरों से लेकर छोटे शहरों तक बहुमंजिला इमारतें, व्यावसायिक परिसर, कोचिंग संस्थान, होटल, अस्पताल और मिश्रित-उपयोग (Mixed-Use) भवन विकास के प्रतीक बन गए हैं। लेकिन इस विकास के पीछे एक गंभीर चिंता भी छिपी है—शहरी नियोजन की अनदेखी, सुरक्षा मानकों की उपेक्षा और प्रशासनिक शिथिलता। परिणामस्वरूप, अनेक भवन आर्थिक प्रगति के केंद्र होने के साथ संभावित 'अग्नि-जाल' भी बनते जा रहे हैं।

हाल के वर्षों में देश के विभिन्न हिस्सों में हुई अग्नि-दुर्घटनाओं ने इस संकट की गंभीरता उजागर की है। कोचिंग संस्थानों, होटलों, अस्पतालों, व्यावसायिक परिसरों और बाजारों में लगी आग ने अनेक परिवारों को असमय शोक में डुबो दिया। इन घटनाओं में बार-बार समान कमियाँ सामने आती हैं—अनधिकृत उपयोग, अग्नि-सुरक्षा उपकरणों का अभाव, अवरुद्ध आपातकालीन निकास, संकरी सड़कें, अवैध पार्किंग और नियमों की अनदेखी। इससे स्पष्ट है कि समस्या किसी एक भवन या शहर की नहीं, बल्कि हमारे शहरी विकास और नियमन की व्यापक चुनौती है।

मिश्रित-उपयोग वाले भवनों की संख्या लगातार बढ़ रही है, जहाँ एक ही इमारत में दुकानें, कार्यालय, कोचिंग संस्थान और आवास संचालित होते हैं। आर्थिक दृष्टि से यह व्यवस्था सुविधाजनक हो सकती है, लेकिन सुरक्षा की दृष्टि से गंभीर जोखिम पैदा करती है। ज्वलनशील सामग्री, विद्युत उपकरण, गैस सिलेंडर, अधिक लोगों की मौजूदगी और सीमित निकास मार्ग आग को भयावह बना सकते हैं। विशेष रूप से जब किसी आवासीय भवन का उपयोग बिना आवश्यक संरचनात्मक और अग्नि-सुरक्षा बदलावों के व्यावसायिक गतिविधियों के लिए किया जाता है, तो जोखिम कई गुना बढ़ जाता है।

अनियोजित शहरीकरण इस समस्या की प्रमुख जड़ों में से एक है। भारत के अनेक शहर बिना दीर्घकालिक नियोजन के फैलते गए। आबादी बढ़ती गई, लेकिन सड़कें और बुनियादी सुविधाएँ उसी अनुपात में नहीं बढ़ीं। भवन ऊँचे होते गए, पर अग्निशमन सेवाओं की क्षमता अपेक्षित गति से विकसित नहीं हुई। घने बाजारों और पुराने इलाकों में कई बार अग्निशमन वाहन पहुँच ही नहीं पाते। बिजली के तारों का जाल, अवैध पार्किंग और अतिक्रमण आग पर काबू पाने में बाधा बनते हैं। ऐसी परिस्थितियों में छोटी-सी आग भी कुछ ही मिनटों में बड़ी त्रासदी में बदल सकती है।

इस संकट का एक अन्य कारण नीतिगत विरोधाभास और कमजोर नियमन है। एक ओर 'ईज ऑफ डूइंग बिजनेस' के तहत व्यापारिक प्रक्रियाओं को सरल बनाया जा रहा है, वहीं दूसरी ओर सुरक्षा मानकों के प्रभावी अनुपालन पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता। कई स्थानों पर कुछ श्रेणी के भवनों को अनिवार्य अग्नि-अनापत्ति प्रमाण-पत्र (Fire NOC) से छूट या सरल प्रक्रिया का लाभ मिलता है, जिससे नियमित अग्नि-सुरक्षा निरीक्षण कमजोर पड़ सकता है। इसके अलावा, भवन को जिस उद्देश्य से अनुमति मिलती है, समय के साथ उसका उपयोग बदल जाता है, लेकिन इस बदलाव की निगरानी और प्रवर्तन के लिए प्रभावी व्यवस्था अक्सर अपर्याप्त रहती है।

प्रशासनिक समन्वय का अभाव भी स्थिति को जटिल बनाता है। भवन निर्माण की अनुमति नगर निकाय, भूमि उपयोग विकास प्राधिकरण, व्यापार लाइसेंस संबंधित विभाग और अग्नि-सुरक्षा अग्निशमन विभाग के अधीन होती है। इनके बीच समुचित समन्वय और सूचना-साझाकरण न होने से नियमों का प्रभावी पालन नहीं हो पाता। भवन निर्माण के बाद किए गए अवैध परिवर्तन भी कई बार वर्षों तक निगरानी से बाहर रहते हैं।

भ्रष्टाचार और जवाबदेही का अभाव इस समस्या को और गंभीर बनाते हैं। यदि निरीक्षण केवल कागजों तक सीमित रहें और बिना वास्तविक जाँच के प्रमाण-पत्र जारी हों, तो सुरक्षा नियम महज औपचारिकता बन जाते हैं। कई दुर्घटनाओं के बाद सामने आया कि अग्निशामक यंत्रों की समय पर जाँच नहीं हुई, स्प्रिंकलर काम नहीं कर रहे थे या आपातकालीन निकास बंद थे। यह केवल तकनीकी नहीं, बल्कि प्रशासनिक और नैतिक विफलता भी है।

नागरिक जागरूकता की कमी भी चिंता का विषय है। लोग भवन खरीदते या किराए पर लेते समय अग्नि-सुरक्षा व्यवस्था की जाँच नहीं करते, जबकि कई प्रतिष्ठान लागत बचाने के लिए सुरक्षा उपायों की उपेक्षा करते हैं। नियमित मॉक ड्रिल, आपदा-प्रबंधन प्रशिक्षण और आपातकालीन निकासी अभ्यास को भी अक्सर नजरअंदाज किया जाता है। इसके विपरीत, विकसित देशों में 'फायर सेफ्टी कल्चर' को विद्यालय स्तर से ही बढ़ावा दिया जाता है।

भारत में आपदा प्रबंधन व्यवस्था मजबूत हुई है, लेकिन शहरी आग जैसी आपदाओं की रोकथाम और जोखिम न्यूनीकरण पर अभी भी अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। राहत और बचाव के साथ रोकथाम में निवेश से अनेक त्रासदियों को टाला और पुनर्वास की लागत घटाई जा सकती है।

अब केवल दंडात्मक कार्रवाई नहीं, बल्कि व्यापक संरचनात्मक सुधार जरूरी हैं। शहरी नियोजन को वैज्ञानिक और दूरदर्शी बनाया जाए तथा भूमि उपयोग, जनसंख्या घनत्व, सड़क चौड़ाई, जलस्रोत, अग्निशमन सुविधाओं और आपातकालीन मार्गों का नियमित पुनर्मूल्यांकन हो। मिश्रित-उपयोग वाले क्षेत्रों के लिए स्पष्ट सुरक्षा मानक तय कर भवन स्वीकृति इन्हीं के अनुरूप दी जाए।

दूसरा, राष्ट्रीय भवन संहिता और अग्नि-सुरक्षा मानकों का देशभर में कठोर और समान अनुपालन सुनिश्चित किया जाए। सुरक्षा मानक केवल भवन की ऊँचाई पर नहीं, बल्कि लोगों की संख्या, गतिविधि की प्रकृति और अग्नि-जोखिम के आधार पर तय हों। सभी सार्वजनिक और मिश्रित-उपयोग वाले भवनों में स्वचालित स्प्रिंकलर, धुआँ संवेदक, अग्नि-अलार्म, आपातकालीन प्रकाश और स्पष्ट निकास मार्ग अनिवार्य किए जाएँ।

तीसरा, भवन स्वीकृति, व्यापार लाइसेंस, Fire NOC और सुरक्षा निरीक्षण को एकीकृत डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म से जोड़ा जाए। भवन का अनधिकृत उपयोग या सुरक्षा प्रमाण-पत्र की अवधि समाप्त होने पर संबंधित विभागों को स्वतः सूचना मिले। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और भू-स्थानिक तकनीक के माध्यम से उच्च जोखिम वाले क्षेत्रों की पहचान और निगरानी भी की जा सकती है।

चौथा, अग्निशमन सेवाओं का आधुनिकीकरण आवश्यक है। आधुनिक उपकरण, ऊँची इमारतों के लिए हाइड्रोलिक प्लेटफॉर्म, पर्याप्त जलस्रोत, प्रशिक्षित कर्मी और त्वरित प्रतिक्रिया प्रणाली विकसित की जाए। छोटे और मध्यम शहरों में भी जनसंख्या तथा भवन घनत्व के अनुरूप अग्निशमन ढाँचा मजबूत किया जाना चाहिए।

पाँचवाँ, नागरिक सहभागिता को अग्नि-सुरक्षा नीति का अभिन्न हिस्सा बनाया जाए। विद्यालयों, महाविद्यालयों, कोचिंग संस्थानों, बाजारों, अस्पतालों और आवासीय परिसरों में नियमित अग्नि-सुरक्षा प्रशिक्षण और मॉक ड्रिल अनिवार्य हों। स्वच्छ भारत अभियान की तरह राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक अग्नि-सुरक्षा जागरूकता अभियान चलाकर नागरिकों को भी सुरक्षा व्यवस्था का सक्रिय भागीदार बनाया जाना चाहिए।

अंततः, शासन व्यवस्था में जवाबदेही सुनिश्चित करना आवश्यक है। नियमों के उल्लंघन या निरीक्षण में लापरवाही के लिए भवन मालिकों के साथ संबंधित अधिकारियों की भी जिम्मेदारी तय हो। पारदर्शिता, नियमित सामाजिक लेखा-परीक्षण और स्वतंत्र सुरक्षा ऑडिट प्रभावी कदम हो सकते हैं।

भारत के शहर करोड़ों लोगों के जीवन और भविष्य का आधार हैं। इसलिए शहरी विकास में भवनों की ऊँचाई और व्यावसायिक लाभ से अधिक सुरक्षा और मानव जीवन को प्राथमिकता मिलनी चाहिए। वास्तविक स्मार्ट सिटी वही है, जहाँ नागरिक सुरक्षित महसूस करें और विकास के साथ सुरक्षा भी सुनिश्चित हो। दूरदर्शी नियोजन, कठोर नियमन, आधुनिक तकनीक, पारदर्शी प्रशासन और नागरिक सहभागिता से ही विकास की चमक के पीछे छिपे 'अग्नि-जाल' को समाप्त कर सुरक्षित और मानवीय शहर बनाए जा सकते हैं।

ऊर्जा सुरक्षा का नया अध्याय: डाइमिथाइल ईथर

डॉ. रामानुज पाठक

सतना, म.प्र.

इक्कीसवीं शताब्दी की सबसे बड़ी चुनौतियों में ऊर्जा सुरक्षा, जलवायु परिवर्तन और सतत विकास प्रमुख हैं। आधुनिक सभ्यता का समस्त ढाँचा ऊर्जा पर आधारित है। उद्योगों की मशीनों से लेकर परिवहन व्यवस्था तक, कृषि उत्पादन से लेकर घरेलू जीवन तक, प्रत्येक क्षेत्र ऊर्जा की उपलब्धता और उसकी लागत से प्रभावित होता है। यही कारण है कि आज ऊर्जा केवल आर्थिक विषय नहीं रह गई है, बल्कि राष्ट्रीय सुरक्षा, कूटनीति, पर्यावरण और सामाजिक स्थिरता का भी प्रश्न बन चुकी है।

भारत विश्व का तीसरा सबसे बड़ा ऊर्जा उपभोक्ता देश है, जबकि अपनी ऊर्जा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे बड़े पैमाने पर कच्चे तेल, प्राकृतिक गैस तथा द्रवीकृत पेट्रोलियम गैस का आयात करना पड़ता है। पेट्रोलियम नियोजन एवं विश्लेषण प्रकोष्ठ के आँकड़ों के अनुसार देश की द्रवीकृत पेट्रोलियम गैस आवश्यकता का 60 प्रतिशत से अधिक भाग आयात के माध्यम से पूरा किया जाता है।

पश्चिम एशिया में उत्पन्न भू-राजनीतिक तनाव, वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला में व्यवधान तथा अंतरराष्ट्रीय बाजार में ऊर्जा मूल्यों की अस्थिरता भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालती है। रूस-यूक्रेन संघर्ष और पश्चिम एशिया में समय-समय पर उत्पन्न संकटों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि ऊर्जा आयात पर अत्यधिक निर्भरता किसी भी राष्ट्र की आर्थिक और सामरिक स्थिरता के लिए जोखिमपूर्ण हो सकती है। ऐसी परिस्थितियों में ऊर्जा आत्मनिर्भरता केवल विकास का लक्ष्य नहीं, बल्कि राष्ट्रीय आवश्यकता है।

इसी संदर्भ में डाइमिथाइल ईथर (डीएमई) भारत की ऊर्जा सुरक्षा के लिए एक महत्वपूर्ण तकनीकी विकल्प के रूप में उभर रहा है। डाइमिथाइल ईथर एक स्वच्छ, उच्च दक्षता वाला तथा बहुउद्देशीय ईंधन है, जिसे देश में उपलब्ध विविध संसाधनों से तैयार किया जा सकता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके उत्पादन के लिए केवल प्राकृतिक गैस पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं होती। कोयला, कृषि अवशेष, जैव-पिंड, नगरों का जैविक कचरा तथा औद्योगिक इकाइयों से प्राप्त कार्बन डाइऑक्साइड जैसे संसाधनों का उपयोग भी इसके निर्माण में किया जा सकता है।

इस प्रकार डीएमई केवल एक ईंधन नहीं, बल्कि अपशिष्ट को संसाधन में बदलने वाली चक्रीय अर्थव्यवस्था की अवधारणा का व्यावहारिक उदाहरण है। यही कारण है कि इसे बहुस्रोत-आधारित ईंधन कहा जा रहा है, अर्थात ऐसा ईंधन जिसे अनेक प्रकार के संसाधनों से उत्पादित किया जा सके। भारत में डीएमई पर व्यवस्थित वैज्ञानिक कार्य का प्रमुख केंद्र पुणे स्थित सीएसआईआर-राष्ट्रीय रसायन प्रयोगशाला रही है। वर्ष 2020 में इस संस्थान ने देश का पहला प्रायोगिक डीएमई संयंत्र स्थापित किया, जिसकी उत्पादन क्षमता लगभग 20 से 24 किलोग्राम प्रतिदिन थी। इसी परियोजना के अंतर्गत डीएमई-द्रवीकृत पेट्रोलियम गैस मिश्रित ईंधन सिलेंडरों तथा विशेष बर्नर प्रणाली का सफल परीक्षण भी किया गया।

इसके बाद इस तकनीक को प्रयोगशाला स्तर से औद्योगिक स्तर तक ले जाने के प्रयास प्रारम्भ हुए। महाराष्ट्र के सोलापुर में स्थापित देश का पहला बड़े पैमाने का डीएमई उत्पादन संयंत्र इस दिशा में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि माना जा रहा है, जिसकी वार्षिक उत्पादन क्षमता लगभग एक लाख टन है। यह उपलब्धि इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि अब भारत केवल अनुसंधान स्तर पर नहीं, बल्कि औद्योगिक स्तर पर भी डीएमई उत्पादन की दिशा में आगे बढ़ चुका है। ऊर्जा सुरक्षा की दृष्टि से इस तकनीक का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है क्योंकि भारत विश्व के सबसे बड़े द्रवीकृत पेट्रोलियम गैस उपभोक्ता देशों में से एक है। उज्ज्वला योजना तथा स्वच्छ ईंधन के प्रसार के कारण देश में रसोई गैस उपभोक्ताओं की संख्या 33 करोड़ से अधिक हो चुकी है। वर्ष 2024-25 में देश की कुल द्रवीकृत पेट्रोलियम गैस खपत लगभग 3 करोड़ टन के आसपास रही। यदि इस

विशाल मांग का अधिकांश भाग आयात से पूरा किया जाता है, तो अंतरराष्ट्रीय बाजार की अस्थिरता सीधे भारतीय उपभोक्ताओं और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को प्रभावित करती है।

विशेषज्ञों का मानना है कि यदि द्रवीकृत पेट्रोलियम गैस (LPG) में चरणबद्ध रूप से डीएमई मिश्रण को बढ़ावा दिया जाए तो प्रतिवर्ष लाखों टन आयातित गैस का स्थानापन्न तैयार किया जा सकता है, जिससे विदेशी मुद्रा की उल्लेखनीय बचत संभव होगी। डाइमिथाइल ईथर का उत्पादन सामान्यतः मीथेन, कोयला अथवा जैव-पिंड से प्राप्त संश्लेषित गैस के माध्यम से किया जाता है। इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम कार्बन मोनोऑक्साइड और हाइड्रोजन युक्त संश्लेषित गैस तैयार की जाती है। इसके बाद विशेष उत्प्रेरकों की सहायता से इसे मेथनॉल में परिवर्तित किया जाता है तथा अंततः मेथनॉल के निर्जलीकरण द्वारा डाइमिथाइल ईथर प्राप्त होता है। यह बहु-चरणीय प्रक्रिया विभिन्न प्रकार के कार्बन स्रोतों के उपयोग की अनुमति देती है, जिससे संसाधन-लचीलापन और ऊर्जा सुरक्षा दोनों सुनिश्चित होते हैं।

भविष्य में हरित हाइड्रोजन तथा कार्बन ग्रहण एवं संग्रहण प्रौद्योगिकियों के विकास के साथ डीएमई का उत्पादन और अधिक पर्यावरण-अनुकूल बनाया जा सकेगा। डीएमई की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक इसकी द्रवीकृत पेट्रोलियम गैस (LPG) के साथ मिश्रण क्षमता है। भारत में करोड़ों परिवार रसोई गैस का उपयोग करते हैं। किसी नए ईंधन को अपनाने में सबसे बड़ी बाधा नई अवसंरचना की आवश्यकता होती है, किंतु डीएमई को सीमित अनुपात में द्रवीकृत पेट्रोलियम गैस के साथ मिश्रित कर वर्तमान वितरण व्यवस्था और अधिकांश उपकरणों में उपयोग किया जा सकता है। इससे ऊर्जा संक्रमण की लागत कम होती है और नई तकनीक को व्यापक स्तर पर अपनाने का मार्ग प्रशस्त होता है। यही कारण है कि डीएमई को ऊर्जा सुरक्षा और ऊर्जा संक्रमण के बीच एक महत्वपूर्ण सेतु माना जा रहा है।

भारत में अक्सर डीएमई की तुलना एथेनॉल मिश्रण

कार्यक्रम से की जाती है, किंतु अनेक दृष्टियों से डीएमई अधिक व्यापक संभावनाएँ प्रस्तुत करता है। एथेनॉल मुख्यतः गन्ने के शीरे तथा खाद्यान्न आधारित स्रोतों से तैयार किया जाता है, जिससे भूमि, जल और कृषि संसाधनों पर अतिरिक्त दबाव पड़ सकता है। इसके विपरीत डीएमई का उत्पादन कृषि अवशेषों, जैव-पिंड, कोयला, नगर अपशिष्ट और कार्बन डाइऑक्साइड जैसे विविध स्रोतों से किया जा सकता है।

एथेनॉल का उपयोग मुख्यतः पेट्रोल मिश्रण तक सीमित है, जबकि डीएमई घरेलू रसोई गैस, औद्योगिक ईंधन, विद्युत उत्पादन, भारी परिवहन तथा रासायनिक उद्योगों में भी उपयोगी हो सकता है। इस प्रकार डीएमई ऊर्जा क्षेत्र में कहीं अधिक व्यापक उपयोगिता और रणनीतिक महत्व रखता है। पर्यावरणीय दृष्टि से भी डीएमई अत्यंत महत्वपूर्ण है। पारंपरिक जीवाश्म ईंधनों के दहन से बड़ी मात्रा में कार्बन डाइऑक्साइड, सल्फर ऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड तथा सूक्ष्म कण वायुमंडल में उत्सर्जित होते हैं। इसके विपरीत डीएमई का दहन अपेक्षाकृत अधिक स्वच्छ होता है तथा इससे कालिख और सूक्ष्म कणों का उत्सर्जन अत्यंत कम होता है। यही कारण है कि इसे स्वच्छ दहन ईंधनों की श्रेणी में रखा जाता है। यदि इसका उत्पादन कृषि अवशेषों अथवा औद्योगिक कार्बन डाइऑक्साइड के पुनर्चक्रण द्वारा किया जाए तो इसका कार्बन पदचिह्न और भी कम हो सकता है।

इस प्रकार डीएमई ऊर्जा सुरक्षा और पर्यावरण संरक्षण दोनों उद्देश्यों को एक साथ साधने की क्षमता रखता है। भारत के लिए डीएमई का एक और महत्वपूर्ण पक्ष कृषि क्षेत्र से जुड़ा हुआ है। देश में प्रतिवर्ष करोड़ों टन कृषि अवशेष उत्पन्न होते हैं, जिनका एक बड़ा भाग खेतों में जला दिया जाता है। इससे वायु प्रदूषण बढ़ता है, मिट्टी की गुणवत्ता प्रभावित होती है और मूल्यवान जैव संसाधन नष्ट हो जाते हैं। यदि इन अवशेषों का उपयोग डीएमई उत्पादन में किया जाए तो किसानों को अतिरिक्त आय प्राप्त होगी, ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़ेंगे तथा पराली जलाने जैसी समस्याओं में कमी आएगी। इससे ऊर्जा उत्पादन और ग्रामीण विकास के बीच एक नया संबंध स्थापित हो सकता है। यदि कृषि प्रधान क्षेत्रों में डीएमई आधारित इकाइयाँ स्थापित की जाती हैं तो स्थानीय स्तर पर ऊर्जा उत्पादन के साथ-साथ हजारों प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रोजगार भी सृजित हो सकते हैं। वर्तमान में भारत में

डीएमई उत्पादन अभी प्रारम्भिक अवस्था में है, किन्तु इसकी संभावनाएँ अत्यंत व्यापक हैं। पुणे स्थित प्रायोगिक संयंत्र से आरम्भ हुई यह यात्रा अब औद्योगिक स्तर तक पहुँच चुकी है।

सार्वजनिक क्षेत्र की ऊर्जा कंपनियाँ तथा वैज्ञानिक संस्थान बड़े पैमाने पर उत्पादन, वितरण तथा उपयोग की व्यवहार्यता पर कार्य कर रहे हैं। भविष्य की कार्ययोजना का लक्ष्य केवल डीएमई उत्पादन बढ़ाना नहीं, बल्कि इसे द्रवीकृत पेट्रोलियम गैस मिश्रण, औद्योगिक तापीय प्रणालियों, परिवहन क्षेत्र तथा हरित रासायनिक उद्योगों के साथ एकीकृत करना भी है। साथ ही, कोयला गैसीकरण मिशन, हरित हाइड्रोजन मिशन तथा अपशिष्ट-से-ऊर्जा कार्यक्रमों के साथ इसका समन्वय भारत की ऊर्जा रणनीति को नई दिशा दे सकता है।

यद्यपि वर्तमान में भारत मेथनॉल का आयात करता है, किन्तु कोयला गैसीकरण, जैव-पिंड आधारित परिशोधन संयंत्रों, नगर अपशिष्ट प्रबंधन तथा हरित हाइड्रोजन आधारित मेथनॉल उत्पादन के विस्तार के साथ डीएमई के लिए आवश्यक कच्चे माल की घरेलू उपलब्धता सुनिश्चित की जा सकती है। यह न केवल ऊर्जा क्षेत्र में आत्मनिर्भरता को बढ़ाएगा, बल्कि स्थानीय उद्योगों, अनुसंधान संस्थानों और वैज्ञानिक नवाचार को भी नई गति प्रदान करेगा।

वास्तव में डाइमिथाइल ईथर केवल एक वैकल्पिक ईंधन नहीं, बल्कि भारत की ऊर्जा संप्रभुता का एक संभावित आधार स्तंभ है। यह ऐसी तकनीक है जो ऊर्जा आयात निर्भरता को कम कर सकती है, कृषि और औद्योगिक अपशिष्टों को उपयोगी संसाधन में बदल सकती है, ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त बना सकती है और पर्यावरणीय लक्ष्यों की प्राप्ति में योगदान दे सकती है।

ऐसे समय में जब विश्व ऊर्जा अनिश्चितताओं और जलवायु संकट से जूझ रहा है, डीएमई भारत को एक अधिक सुरक्षित, स्वच्छ और आत्मनिर्भर ऊर्जा भविष्य की दिशा में आगे बढ़ाने की क्षमता रखता है। यदि नीति, उद्योग और अनुसंधान के स्तर पर इसे पर्याप्त समर्थन प्राप्त होता है, तो डाइमिथाइल ईथर केवल एक नया ईंधन नहीं रहेगा, बल्कि आत्मनिर्भर भारत की ऊर्जा क्रांति का आधार बनकर ऊर्जा सुरक्षा का एक नया अध्याय लिखेगा।

हाइड्रोजन के रंग और ऊर्जा भविष्य की नई वैज्ञानिक क्रांति

डॉ. रामानुज पाठक

मानव सभ्यता आज बढ़ती ऊर्जा माँग और पर्यावरणीय संकट की दोहरी चुनौती का सामना कर रही है। औद्योगिकीकरण, शहरीकरण और तकनीकी विस्तार ने ऊर्जा खपत को अभूतपूर्व स्तर तक पहुँचा दिया है, जबकि जीवाश्म ईंधनों पर निर्भरता ने जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग और प्रदूषण जैसी समस्याओं को गंभीर बना दिया है। ऐसे परिदृश्य में हाइड्रोजन ऊर्जा एक स्वच्छ और टिकाऊ विकल्प के रूप में उभर रही है। यह केवल एक वैकल्पिक ईंधन नहीं, बल्कि भविष्य की ऊर्जा व्यवस्था, औद्योगिक विकास और पर्यावरणीय संतुलन को आकार देने वाली महत्वपूर्ण शक्ति बनती जा रही है। इसी कारण विश्वभर में "हाइड्रोजन अर्थव्यवस्था" की अवधारणा को तेजी से बढ़ावा दिया जा रहा है।

हाइड्रोजन ब्रह्मांड का सबसे हल्का और सर्वाधिक प्रचुर तत्व है, जो जल तथा अनेक कार्बनिक यौगिकों में पाया जाता है। ईंधन के रूप में इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके उपयोग से मुख्यतः जल बनता है और कार्बन उत्सर्जन अत्यंत कम होता है। हालांकि, हाइड्रोजन स्वतंत्र रूप में बहुत कम उपलब्ध होती है, इसलिए इसे विभिन्न तकनीकों द्वारा उत्पादन करना पड़ता है। उत्पादन प्रक्रिया और उससे जुड़े कार्बन उत्सर्जन के आधार पर वैज्ञानिकों ने हाइड्रोजन को विभिन्न "रंगों" में वर्गीकृत किया है, जो उसके पर्यावरणीय प्रभाव और ऊर्जा स्रोत का संकेत देते हैं।

ग्रीन हाइड्रोजन को वर्तमान में सबसे स्वच्छ और टिकाऊ हाइड्रोजन माना जाता है। इसका उत्पादन जल के विद्युत अपघटन द्वारा किया जाता है, जिसमें सौर, पवन या जलविद्युत जैसी नवीकरणीय ऊर्जा का उपयोग होता है। इस प्रक्रिया में कार्बन उत्सर्जन लगभग शून्य रहता है, इसलिए इसे "भविष्य का हरित ईंधन" कहा जाता है। भारत सहित अनेक देश ग्रीन हाइड्रोजन मिशनों के माध्यम से उद्योग, परिवहन और ऊर्जा क्षेत्र में इसके उपयोग को बढ़ावा दे रहे हैं। इस्पात, उर्वरक, विमानन और भारी परिवहन जैसे क्षेत्रों में इसकी विशेष संभावनाएँ हैं। उत्पादन लागत

में कमी आने पर यह वैश्विक ऊर्जा व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकता है।

ब्लू हाइड्रोजन का उत्पादन मुख्यतः प्राकृतिक गैस से किया जाता है। इस प्रक्रिया में उत्पन्न कार्बन डाइऑक्साइड को कार्बन कैप्चर एंड स्टोरेज (CCS) तकनीक के माध्यम से वातावरण में जाने से रोकने का प्रयास किया जाता है। इसी कारण इसे ग्रे हाइड्रोजन की तुलना में अधिक स्वच्छ माना जाता है। यह एक संक्रमणकालीन तकनीक है, जो जीवाश्म ईंधनों पर निर्भर रहते हुए भी उत्सर्जन को कम करने का प्रयास करती है। हालांकि इसकी लागत, दीर्घकालिक सुरक्षा और कार्बन कैप्चर की प्रभावशीलता को लेकर अभी भी शोध जारी है।

ग्रे हाइड्रोजन विश्व में सबसे अधिक उत्पादित हाइड्रोजन है। इसका निर्माण प्राकृतिक गैस से किया जाता है, लेकिन प्रक्रिया में उत्पन्न कार्बन डाइऑक्साइड को वातावरण में उत्सर्जित होने दिया जाता है। इसलिए यह बड़ी मात्रा में ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन करती है। यद्यपि इसकी उत्पादन लागत अपेक्षाकृत कम है और इसका उपयोग उर्वरक उद्योग तथा पेट्रोलियम रिफाइनरियों में व्यापक रूप से होता है, फिर भी पर्यावरणीय दृष्टि से इसे टिकाऊ विकल्प नहीं माना जाता। जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों के बीच इसके स्थान पर स्वच्छ विकल्पों को अपनाने की आवश्यकता बढ़ती जा रही है।

ब्राउन हाइड्रोजन कोयले के गैसीकरण से प्राप्त होती है और अत्यधिक कार्बन उत्सर्जन के कारण इसे हाइड्रोजन का सबसे प्रदूषणकारी रूप माना जाता है। जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों के चलते वैश्विक ऊर्जा नीतियाँ इससे दूरी बनाने और स्वच्छ विकल्पों को अपनाने पर जोर दे रही हैं।

व्हाइट हाइड्रोजन प्राकृतिक रूप से पृथ्वी की सतह या भूमिगत भंडारों में पाई जाने वाली हाइड्रोजन को संदर्भित करती है। हाल के वर्षों में इसके संभावित स्रोतों की खोज ने वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित किया है। यदि इसके बड़े भंडार आर्थिक रूप से उपयोगी सिद्ध होते हैं, तो यह ऊर्जा क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन ला सकती है। वर्तमान में इसके दोहन और व्यावसायिक उपयोग की संभावनाओं पर शोध जारी है।

येलो, पिंक और रेड हाइड्रोजन मुख्यतः परमाणु ऊर्जा आधारित उत्पादन से जुड़ी श्रेणियाँ हैं। इनमें परमाणु ऊर्जा से प्राप्त विद्युत या उच्च तापीय प्रक्रियाओं का उपयोग हाइड्रोजन उत्पादन के लिए किया जाता है। कम प्रत्यक्ष कार्बन उत्सर्जन के कारण इन्हें अपेक्षाकृत स्वच्छ विकल्प माना जाता है, हालांकि रेडियोधर्मी अपशिष्ट, सुरक्षा और लागत से जुड़े प्रश्न अभी भी चर्चा का विषय हैं।

हाइड्रोजन ऊर्जा का सबसे महत्वपूर्ण उपयोग ईंधन सेल तकनीक में है, जहाँ हाइड्रोजन और ऑक्सीजन की अभिक्रिया से सीधे विद्युत ऊर्जा उत्पन्न होती है और प्रदूषण अत्यंत कम रहता है। इसी कारण हाइड्रोजन चालित वाहन, ट्रेनें, जहाज और विमान भविष्य की स्वच्छ परिवहन व्यवस्था के प्रमुख विकल्प माने जा रहे हैं। जापान, जर्मनी, दक्षिण कोरिया और भारत सहित कई देश इस क्षेत्र में तेजी से निवेश कर रहे हैं। भारत ने राष्ट्रीय हरित हाइड्रोजन मिशन के तहत 2030 तक वैश्विक हाइड्रोजन केंद्र बनने का लक्ष्य रखा है।

हालाँकि, हाइड्रोजन ऊर्जा के सामने कुछ महत्वपूर्ण चुनौतियाँ भी हैं। इसका भंडारण और परिवहन जटिल तथा महंगा है, क्योंकि यह अत्यंत हल्की और ज्वलनशील गैस है। साथ ही, उत्पादन लागत अभी भी अपेक्षाकृत अधिक है। इसलिए वैज्ञानिक इसे अधिक सस्ता, सुरक्षित और ऊर्जा-कुशल बनाने के लिए निरंतर अनुसंधान कर रहे हैं।

हाइड्रोजन के विभिन्न रंग केवल वैज्ञानिक वर्गीकरण नहीं, बल्कि मानव सभ्यता की ऊर्जा यात्रा के अलग-अलग चरणों के प्रतीक हैं। ग्रे और ब्राउन हाइड्रोजन पारंपरिक, प्रदूषणकारी ऊर्जा व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करती हैं, ब्लू हाइड्रोजन संक्रमण का मार्ग दिखाती है, जबकि ग्रीन हाइड्रोजन स्वच्छ और टिकाऊ भविष्य की आशा प्रस्तुत करती है। आने वाले वर्षों में हाइड्रोजन ऊर्जा वैश्विक अर्थव्यवस्था, राजनीति और पर्यावरणीय नीतियों को नई दिशा दे सकती है। यदि विज्ञान, नीति और अंतरराष्ट्रीय सहयोग साथ मिलकर आगे बढ़ें, तो हाइड्रोजन स्वच्छ ऊर्जा क्रांति का आधार बन सकती है।

कम खारा होता महासागर: जलवायु संकट का संकेत ?

डॉ. रामानुज पाठक

सिडनी से आई एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक चेतावनी ने वैश्विक पर्यावरण समुदाय का ध्यान आकर्षित किया है। दक्षिणी हिंद महासागर का वह क्षेत्र, जो कभी पृथ्वी के सबसे खारे समुद्री क्षेत्रों में गिना जाता था, पिछले छह दशकों में लगभग 30% तक कम खारा हो गया है। यह परिवर्तन केवल समुद्री जल की संरचना में बदलाव नहीं, बल्कि वैश्विक जलवायु प्रणाली में हो रहे गहरे परिवर्तनों का संकेत है। Nature Climate Change में प्रकाशित अध्ययन के अनुसार, बदलती हवाएँ और समुद्री धाराएँ दूरस्थ क्षेत्रों से कम खारा जल इस क्षेत्र तक पहुँचा रही हैं, जिससे इसकी लवणता में उल्लेखनीय गिरावट दर्ज की गई है।

उपग्रह आँकड़ों, आर्गो फ्लोट्स और ऐतिहासिक समुद्री अभिलेखों के विश्लेषण से स्पष्ट हुआ है कि दक्षिणी हिंद महासागर की लवणता में गिरावट कोई आकस्मिक घटना नहीं, बल्कि दीर्घकालिक प्रवृत्ति का हिस्सा है। वैज्ञानिक समुद्री लवणता को पृथ्वी की "जलवायु डायरी" मानते हैं, क्योंकि यह वर्षा, वाष्पीकरण, हिमनदों के पिघलने और समुद्री धाराओं में होने वाले परिवर्तनों का संकेत देती है। इस क्षेत्र में खारापन कम होना बढ़ती वर्षा या कम लवणता वाले जल के प्रवाह का द्योतक है। यह स्थिति इसलिए अधिक चिंताजनक है क्योंकि दक्षिणी हिंद महासागर वैश्विक महासागरीय परिसंचरण का एक महत्वपूर्ण केंद्र है, और यहाँ होने वाले परिवर्तन एशियाई मानसून, ऑस्ट्रेलियाई वर्षा तथा अफ्रीकी तटीय मौसम प्रणालियों को भी प्रभावित कर सकते हैं।

समुद्री लवणता पृथ्वी की जलवायु प्रणाली का एक महत्वपूर्ण घटक है, क्योंकि यह समुद्री जल के घनत्व और विभिन्न परतों के बीच जल-परिसंचरण को नियंत्रित करती है। जब खारापन घटता है, तो सतही जल हल्का होकर गहरी, ठंडी और पोषक तत्वों से समृद्ध परतों से अलग हो जाता है। इससे समुद्र की परतों का मिश्रण कमजोर पड़ता है और नाइट्रोजन व फॉस्फोरस जैसे पोषक तत्व सतह तक नहीं पहुँच पाते। परिणाम स्वरूप फाइटोप्लैंकटन की वृद्धि प्रभावित होती है, जिससे समुद्री खाद्य श्रृंखला, मत्स्य संसाधन और तटीय समुदायों की आजीविका पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

यह परिवर्तन केवल पारिस्थितिकी तक सीमित नहीं है। अधिक गर्म और स्थिर सतही जल समुद्र के तापीय विस्तार को बढ़ाता है, जिससे समुद्र-स्तर वृद्धि की समस्या गंभीर हो सकती है। साथ ही, परतों के मिश्रण में कमी समुद्री कार्बन पंप प्रणाली को कमजोर कर सकती है, जिससे कार्बन डाइऑक्साइड का अवशोषण घटेगा और जलवायु परिवर्तन की गति और तेज हो सकती है। इस प्रकार समुद्री लवणता में गिरावट वैश्विक जलवायु और समुद्री पारिस्थितिकी दोनों के लिए गंभीर चेतावनी है।

वैज्ञानिकों के अनुसार दक्षिणी हिंद महासागर की लवणता में दर्ज लगभग 30% गिरावट सामान्य उतार-चढ़ाव नहीं, बल्कि एक दीर्घकालिक जलवायु प्रवृत्ति का संकेत है। अनुमान है कि इस क्षेत्र में प्रतिवर्ष पहुँचने वाले अतिरिक्त मीठे जल की मात्रा इतनी विशाल है कि उससे पूरे अमेरिका को सैकड़ों वर्षों तक पेयजल उपलब्ध कराया जा सकता है। यह परिवर्तन दर्शाता है कि ग्लोबल वॉर्मिंग केवल तापमान ही नहीं बढ़ा रही, बल्कि महासागरों के नमक संतुलन को भी प्रभावित कर रही है।

बढ़ते तापमान के कारण वायुमंडलीय परिसंचरण, हवाओं और समुद्री धाराओं के स्वरूप में परिवर्तन हो रहा है। जहाँ पहले इस क्षेत्र में अधिक वाष्पीकरण और कम वर्षा के कारण जल अत्यधिक खारा रहता था, वहीं अब बदलती हवाएँ अन्य क्षेत्रों से कम लवणता वाला जल यहाँ पहुँचा रही हैं। परिणामस्वरूप समुद्री संतुलन में उल्लेखनीय बदलाव देखने को मिल रहा है।

समुद्र पृथ्वी के तापीय संतुलन का प्रमुख नियंत्रक है। वैश्विक थर्मोहेलाइन परिसंचरण (महासागरीय कन्वेयर बेल्ट) तापमान और लवणता के अंतर पर आधारित होता है तथा पृथ्वी की जलवायु को संतुलित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यदि लवणता में कमी से यह परिसंचरण धीमा पड़ता है, तो मौसम प्रणालियाँ प्रभावित हो सकती हैं, समुद्री हीटवेव बढ़ सकती हैं और तापमान-संवेदनशील कोरल रीफ तथा समुद्री जैव विविधता को गंभीर क्षति पहुँच सकती है।

इसके अलावा, समुद्री परतों के मिश्रण में कमी से गहरे जल में ऑक्सीजन की कमी (हाइपोक्सिया) बढ़ सकती है, जो समुद्री जीवों के लिए घातक है। साथ ही, गर्म सतही जल कार्बन डाइऑक्साइड कम अवशोषित करता है, जिससे वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा बढ़ सकती है। इस प्रकार समुद्री लवणता में परिवर्तन एक ऐसे दुष्चक्र को जन्म दे सकता है, जो जलवायु परिवर्तन को और अधिक तीव्र बना दे।

महासागर पृथ्वी की अतिरिक्त ऊष्मा का लगभग 90% अवशोषित करते हैं, इसलिए उनकी भौतिक और रासायनिक संरचना में होने वाले परिवर्तन वैश्विक जलवायु को प्रभावित करते हैं। दक्षिणी हिंद महासागर की घटती लवणता हिमनदों के पिघलने, वर्षा चक्र में बदलाव और परिवर्तित पवन प्रणालियों का संयुक्त परिणाम हो सकती है। यह दर्शाता है कि जलवायु प्रणाली गहराई से परस्पर जुड़ी हुई है; एक क्षेत्र में हुआ परिवर्तन मानसून, कृषि, जल संसाधनों और खाद्य सुरक्षा तक को प्रभावित कर सकता है।

यह केवल समुद्री विज्ञान का विषय नहीं, बल्कि मानव जीवन और अर्थव्यवस्था से जुड़ा प्रश्न है। समुद्री पारिस्थितिकी में बदलाव से मत्स्य संसाधन, तटीय समुदायों की आजीविका और खाद्य सुरक्षा प्रभावित हो सकती है। यह स्थिति संकेत देती है कि जलवायु परिवर्तन केवल तापमान वृद्धि तक सीमित नहीं है, बल्कि समुद्री धाराओं, वर्षा चक्रों और महासागरीय संतुलन को भी बदल रहा है।

दक्षिणी हिंद महासागर का कम खारा होना एक गंभीर चेतावनी है कि पृथ्वी का जलवायु संतुलन सूक्ष्म स्तर पर भी बदल रहा है। यदि ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी, महासागरों की बेहतर निगरानी और वैश्विक सहयोग को प्राथमिकता नहीं दी गई, तो इसके प्रभाव गंभीर हो सकते हैं। यह समय विज्ञान की चेतावनियों को गंभीरता से लेकर सतत और जिम्मेदार कदम उठाने का है।

कृतिम मेधा (AI) का उपयोग

वर्तमान समय में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) के तीव्र विस्तार और बढ़ते उपयोग के दौर में विज्ञान, प्रौद्योगिकी तथा चिकित्सा जैसे विषयों पर जनलेखों, शोध-पत्रों, व्याख्यानों और प्रस्तुतियों को विभिन्न AI मंचों की सहायता से तैयार करने की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही है। यद्यपि AI एक उपयोगी सहायक साधन है, किंतु इसके अनियंत्रित और अंधाधुंध उपयोग से गंभीर बौद्धिक चुनौतियाँ उत्पन्न हो रही हैं।

देखने में आ रहा है कि अनेक लेख और प्रस्तुतियाँ आकर्षक शीर्षकों तथा प्रभावशाली भाषा के साथ प्रस्तुत तो की जाती हैं, किंतु उनमें विषय की गहराई, प्रमाणिक वैज्ञानिक संदर्भ, मूल स्रोतों का उल्लेख तथा विश्लेषणात्मक दृष्टि का अभाव रहता है। परिणाम स्वरूप सामग्री सतही, सामान्यीकृत और कई बार तथ्यगत त्रुटियों से युक्त हो जाती है। विज्ञान लेखन न तो सरल कार्य है और न ही केवल सूचना-संकलन का माध्यम। इसके लिए विषय की गहन समझ, निरंतर बौद्धिक मंथन, प्रमाणित स्रोतों का अध्ययन, आलोचनात्मक विश्लेषण तथा तार्किक प्रस्तुति आवश्यक है। दुर्भाग्यवश "सोचो कम, फटाफट तैयार करो" जैसी प्रवृत्ति वैज्ञानिक लेखन और चिंतन की गुणवत्ता को प्रभावित कर रही है।

वास्तविकता यह है कि AI हमारे लिए एक सहायक उपकरण है, न कि अंतिम स्रोत, प्रमाण या समाधान। AI स्वयं वैज्ञानिकों और प्रौद्योगिकीविदों की बौद्धिक साधना का परिणाम है; इसलिए इसे गुरु या निर्णायक प्रामाणिक स्रोत के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। वैज्ञानिक दृष्टिकोण का आधार सदैव तथ्य, तर्क, प्रयोग, प्रमाण और संदर्भ ही रहेंगे।

मेरा विनम्र सुझाव है कि राष्ट्रीय स्तर की प्रतिष्ठित "वैज्ञानिक" पत्रिका में प्रकाशन हेतु लेखों और सामग्रियों के लिए AI के उत्तरदायी एवं नैतिक उपयोग संबंधी एक स्पष्ट मार्गदर्शिका तैयार करने पर विचार किया जाए। साथ ही, वैज्ञानिक लेखन में मौलिक चिंतन, संदर्भों की अनिवार्यता, तथ्य-पुष्टि तथा AI-सहायता प्राप्त सामग्री के उचित प्रकटीकरण बिंदुओं को भी इसमें सम्मिलित किया जा सकता है। ऐसी पहल न केवल पत्रिका की वैज्ञानिक विश्वसनीयता को और सुदृढ़ करेगी, बल्कि युवा शोधार्थियों और विज्ञान लेखकों को भी गुणवत्तापूर्ण एवं उत्तरदायी लेखन के लिए प्रेरित करेगी। सादर।

एस. एम. प्रसाद, पूर्व संयुक्त निदेशक,
विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद, उत्तर प्रदेश

विज्ञान समाचार

संकलन एवं प्रस्तुति: डॉ. प्रदीप कुमार मुख़र्जी

43, देशबंधु सोसाइटी, 15, पटपड़गंज, दिल्ली - 110092

(डॉ. मुख़र्जी दिल्ली यूनिवर्सिटी में भौतिकी के प्रोफेसर रहे हैं तथा एक वरिष्ठ विज्ञान संचारक हैं)

बुज़ुर्गों को अधिक प्रभावित कर रहा तेज़ बदलता मौसम

मौसम में तेज़ी से हो रहे चरम बदलावों, जैसे अत्यधिक गर्मी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि तथा हाड़ कंपा देने वाली ठंड, का सबसे अधिक प्रभाव बुज़ुर्गों पर पड़ता है। यह तथ्य गैर-सरकारी संगठन (एनजीओ) हेल्पएज इंडिया द्वारा दस राज्यों के 2,224 बुज़ुर्गों पर किए गए एक सर्वेक्षण में सामने आया है। सर्वेक्षण में शामिल राज्य हैं—आंध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, कर्नाटक, केरलम, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, ओडिशा, तमिलनाडु और उत्तराखंड।

सर्वेक्षण के अनुसार, 78 प्रतिशत बुज़ुर्गों ने पिछले तीन वर्षों में कम-से-कम एक चरम मौसमी घटना का सामना किया। इनमें 45 प्रतिशत लू, 27 प्रतिशत अतिवृष्टि और 20 प्रतिशत सूखे से प्रभावित हुए।

तेज़ बदलता मौसम बुज़ुर्गों को करता है अधिक प्रभावित

सर्वेक्षण में शामिल बुज़ुर्गों में 23 प्रतिशत अकेले रहते थे, जबकि 28 प्रतिशत की आयु 80 वर्ष या उससे अधिक थी। इसके अलावा, 12 प्रतिशत स्मृति एवं मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं, 32 प्रतिशत चलने-फिरने में कठिनाई और 24 प्रतिशत दृष्टि संबंधी समस्याओं से पीड़ित थे।

आर्थिक रूप से भी अनेक बुज़ुर्ग असुरक्षित पाए गए। 52 प्रतिशत बुज़ुर्ग उपचार और दवाइयों का खर्च वहन न कर पाने के कारण मुख्यतः सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं पर निर्भर थे।

अनेक बुज़ुर्ग पारिवारिक उपेक्षा के भी शिकार हैं। ऐसे में सरकार को उनकी देखभाल, स्वास्थ्य सुरक्षा और सामाजिक सहायता के लिए अधिक प्रभावी बुज़ुर्ग-हितैषी योजनाएँ लागू करनी चाहिए।

ख़राब जीवनशैली युवाओं की शारीरिक फिटनेस और हृदय की कार्यक्षमता को कर रही है प्रभावित

हृदय के स्वास्थ्य का आकलन करने के लिए ईसीजी और इकोकार्डियोग्राफी (ईको) की जाती है। यदि हृदय की धमनियों में रुकावट का संदेह हो, तो एंजियोग्राफी द्वारा उसकी जाँच की जाती है। इन सभी जाँचों की रिपोर्ट सामान्य होने पर शारीरिक फिटनेस और हृदय की कार्यक्षमता का मूल्यांकन ट्रेडमिल टेस्ट (टीएमटी) से किया जाता है।

ट्रेडमिल टेस्ट के लिए उपकरण

कानपुर स्थित एलपीएस इंस्टीट्यूट ऑफ कार्डियोलॉजी के एक अध्ययन में पाया गया कि हृदय संबंधी प्रमुख जाँचें सामान्य होने के बावजूद 45 वर्ष तक के लगभग 45 प्रतिशत युवा ट्रेडमिल टेस्ट (TMT) में अपेक्षित शारीरिक क्षमता हासिल नहीं कर सके। विशेषज्ञों के अनुसार, इसका संबंध मुख्यतः निष्क्रिय जीवनशैली, व्यायाम की कमी, अनियमित दिनचर्या और असंतुलित आहार से हो सकता है। इसलिए सामान्य हृदय जाँच के साथ

नियमित शारीरिक गतिविधि और स्वस्थ जीवनशैली भी आवश्यक है।

इंस्टीट्यूट ऑफ कार्डियोलॉजी ने छह महीनों में 4,200 लोगों के स्वास्थ्य परीक्षण के आँकड़ों का विश्लेषण किया। अध्ययन में मुख्यतः 25 से 45 वर्ष आयु वर्ग के ऐसे लोग शामिल थे, जो सीने में भारीपन, तेज़ धड़कन, सांस फूलना, बेचैनी और उच्च रक्तचाप (बीपी) जैसी शिकायतों के साथ चिकित्सकों के पास पहुँचे थे।

प्राथमिक जाँच में अधिकांश लोगों की ईसीजी, ईको और एंजियोग्राफी रिपोर्ट सामान्य पाई गई। इसके बाद उनकी शारीरिक फिटनेस और हृदय की कार्यक्षमता के आकलन के लिए ट्रेडमिल टेस्ट (टीएमटी) कराया गया। विशेषज्ञों के अनुसार, सामान्य फिटनेस वाला व्यक्ति टीएमटी में 8–12 मिनट तक व्यायाम करने में सक्षम होना चाहिए, जबकि अध्ययन में शामिल 45 प्रतिशत युवा ट्रेडमिल पर 2–5 मिनट भी नहीं टिक पाए।

हृदय रोग विशेषज्ञों के अनुसार, टीएमटी में अपेक्षित प्रदर्शन न कर पाने का प्रमुख कारण अक्सर हृदय रोग नहीं, बल्कि निष्क्रिय जीवनशैली, व्यायाम की कमी, असंतुलित आहार और बढ़ता मानसिक तनाव है। नियमित शारीरिक गतिविधि, संतुलित आहार और सक्रिय जीवनशैली अपनाकर शारीरिक फिटनेस बेहतर की जा सकती है तथा भविष्य में हृदय रोगों के जोखिम को कम किया जा सकता है।

विशेषज्ञों के अनुसार, हृदय और शारीरिक फिटनेस बनाए रखने के लिए नियमित व्यायाम, संतुलित आहार, स्वस्थ वजन और कमर की परिधि पर नियंत्रण, 7–8 घंटे की पर्याप्त नींद तथा धूम्रपान और अत्यधिक मदिरापान से बचना आवश्यक है। प्रतिदिन 30–45 मिनट तेज़ चाल से चलना या सप्ताह में कम-से-कम पाँच दिन नियमित शारीरिक गतिविधि करना हृदय स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है। तनाव को नियंत्रित रखना भी स्वस्थ जीवनशैली का महत्वपूर्ण हिस्सा है।

स्वदेशी तकनीक से कम लागत में बनेगा पीने योग्य समुद्री जल

समुद्री जल का विलवणीकरण (डिसेलिनेशन) एक जटिल और महंगी प्रक्रिया है। भारतीय तटरक्षक बल तथा अन्य समुद्री जहाजों पर पेयजल उपलब्ध कराने के लिए अब तक जर्मनी से आयातित महंगी मेम्ब्रेन (झिल्ली) का उपयोग किया जाता रहा है। एक डिसेलिनेशन मॉड्यूल की लागत लगभग दो लाख रुपये होती है। अब रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डीआरडीओ) की कानपुर स्थित डीएमएसआरडीई (Defence Materials and Stores Research & Development Establishment) ने स्वदेशी मेम्ब्रेन तकनीक विकसित करने की दिशा में महत्वपूर्ण पहल की है, जिससे कम लागत पर समुद्री जल को मीठे जल में परिवर्तित करना संभव हो सकेगा।

समुद्री जल को पेयजल में बदलने के लिए टीएमएसआरडीई, कानपुर द्वारा विकसित मेम्ब्रेन (चित्र साभार: टीएमएसआरडीई, कानपुर)

डीएमएसआरडीई ने हाल ही में चेन्नई स्थित नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ ओशन टेक्नोलॉजी (एनआईओटी) के साथ उच्च-दाब नैनोरंध्री बहुस्तरीय बहुलकी (पॉलिमेरिक) मेम्ब्रेन तकनीक पर संयुक्त अनुसंधान के लिए एक समझौता ज्ञापन (एमओयू) पर हस्ताक्षर किए हैं। इसका उद्देश्य समुद्री जल के विलवणीकरण को अधिक प्रभावी, किफायती और स्वदेशी बनाना है।

उल्लेखनीय है कि डीएमएसआरडीई द्वारा विकसित यह तकनीक भारतीय तटरक्षक बल के एक जहाज पर सफलतापूर्वक परीक्षणित हो चुकी है। वर्ष 2025 में वैज्ञानिकों ने मात्र आठ महीनों में ऐसी नैनोरंध्री बहुलकी मेम्ब्रेन विकसित की, जो समुद्री जल के टोटल डिसॉल्व्ड सॉलिड्स (TDS) को 32,000 पीपीएम से घटाकर 329–350 पीपीएम तक ला सकती है तथा 99 प्रतिशत तक नमक हटाने में सक्षम है।

यह स्वदेशी मेम्ब्रेन प्रतिदिन लगभग 20 टन समुद्री

जल को पेयजल में परिवर्तित कर सकती है और लगभग 500 घंटे तक लगातार कार्य करने में सक्षम है। कम लागत वाली यह तकनीक भविष्य में भारत को बड़े पैमाने पर समुद्री जल को पेयजल में बदलने की दिशा में आत्मनिर्भर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

तटीय क्षेत्रों में बढ़ती पेयजल आवश्यकता को देखते हुए यह स्वदेशी तकनीक जल सुरक्षा के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है। डीएमएसआरडीई और एनआईओटी का यह अनुसंधान सहयोग पेयजल संकट के समाधान, जल सुरक्षा को सुदृढ़ करने तथा 'आत्मनिर्भर भारत' के लक्ष्य को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

औसत भारतीय जनसंख्या में विटामिन-डी की कमी चिंताजनक

भारत में पर्याप्त धूप के बावजूद 70–90% लोगों में विटामिन-D की कमी पाई जाती है। यह हड्डियों और मांसपेशियों की मजबूती, रोग प्रतिरोधक क्षमता तथा मानसिक स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण है। सूर्य की UV-B किरणों के संपर्क में त्वचा विटामिन-D बनाती है, जबकि मछली, अंडे की जर्दी और फोर्टिफाइड दूध इसके प्रमुख आहार स्रोत हैं।

जर्नल ऑफ फैमिली मेडिसिन एंड प्राइमरी केयर में प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार, भारत में विभिन्न आयु, लिंग और क्षेत्रों के 70–90% लोगों में विटामिन-D का स्तर सामान्य से कम पाया गया।

सूर्य किरणों की मौजूदगी में हमारा शरीर विटामिन-डी का निर्माण करता है

विशेषज्ञों के अनुसार, विटामिन-D की कमी का प्रमुख कारण आधुनिक जीवनशैली है। घर या कार्यालय में अधिक समय बिताने, वर्क फ्रॉम होम और वातानुकूलित वातावरण के कारण सूर्य के संपर्क में कमी आई है। केवल धूप की उपलब्धता पर्याप्त नहीं; विटामिन-D का निर्माण धूप में बिताए समय, दिन के समय और त्वचा के खुले हिस्से पर भी निर्भर करता है।

अंडे की जर्दी, वसायुक्त मछली, मशरूम और फोर्टिफाइड दूध से भी विटामिन-D मिलता है, लेकिन कई लोगों के लिए यह पर्याप्त नहीं होता। आवश्यकता होने पर चिकित्सकीय सलाह से विटामिन-D सप्लीमेंट लिया जा सकता है।

रोग निवारण के लिए दी जाने वाली दवाएं दिमाग पर कर रहीं असर

बिना चिकित्सकीय सलाह दवा लेना स्वास्थ्य के लिए जोखिमपूर्ण हो सकता है। दर्दनिवारक और एंटीबायोटिक के अनावश्यक सेवन से एंटीमाइक्रोबियल रेजिस्टेंस बढ़ने तथा किडनी और लिवर पर प्रतिकूल प्रभाव का खतरा रहता है। बीएचयू के आईएमएस के शोधकर्ताओं के अध्ययन के अनुसार, कुछ दवाओं के दुष्प्रभाव, विशेषकर बुज़ुर्गों में, डिलीरियम जैसी गंभीर स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं, जिसमें अचानक भ्रम, बेचैनी और मानसिक अस्थिरता शामिल हैं।

रोग निवारण के लिए दी जाने वालो दवाएं असर कर रहीं बुज़ुर्गों के दिमाग को भी

कुछ दवाएँ और स्वास्थ्य स्थितियाँ शरीर में सोडियम असंतुलन पैदा कर सकती हैं, जिससे विशेषकर बुज़ुर्गों में डिलीरियम (अचानक भ्रम, बेचैनी और मानसिक अस्थिरता) का जोखिम बढ़ सकता है। इसका खतरा व्यक्ति की आयु, बीमारी और शारीरिक स्थिति पर निर्भर करता है। विशेषज्ञों की सलाह है कि बिना चिकित्सकीय परामर्श दवा शुरू या बंद न करें, डॉक्टर को सभी दवाओं की जानकारी दें और समय-समय पर किडनी की कार्यक्षमता तथा सोडियम स्तर की जाँच कराते रहें।

विज्ञान पुस्तकें/ विज्ञान सम्मान

वरिष्ठ पत्रकार एवं लेखक योगेश कुमार गोयल की शोधपरक पुस्तक 'सागर से अंतरिक्ष तक: भारत की रक्षा क्रांति' का लोकार्पण 28 जून को नई दिल्ली में आयोजित समारोह में किया गया।

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद एवं वैज्ञानिक परिवार की तरफ से योगेश कुमार गोयल को हार्दिक बधाइयां एवं मंगल कामनाएं।

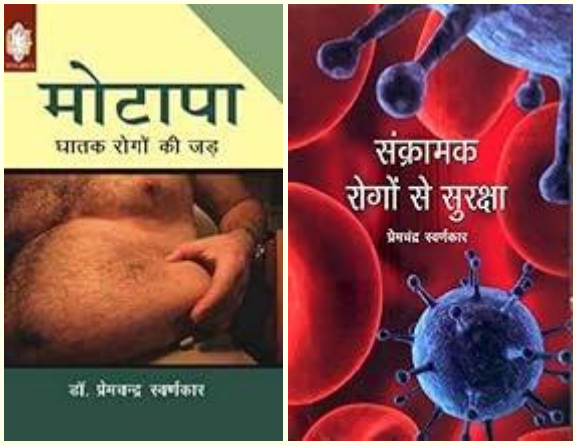

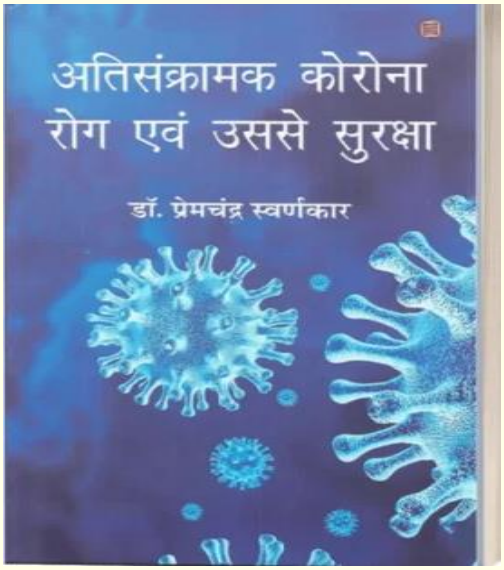

मान्यवर, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत से प्रकाशित मेरी उक्त दोनों पुस्तकों के 7 संस्करण/आवृतियाँ आ चुकी हैं और चिकित्सा विज्ञान पर सरल हिंदी में लिखित ये दोनों पुस्तके सर्वशिक्षा अभियान, उत्तर प्रदेश एवं मध्यप्रदेश तथा पंचायत राज उ.प्र. एवं नेशनल डिजिटल लाइब्रेरी के लिए स्वीकृत हुई हैं।

- डॉ. प्रेमचंद्र स्वर्णकार

पुस्तकें प्रकाशन के लिए हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद एवं वैज्ञानिक परिवार की तरफ से डॉ. प्रेमचंद्र स्वर्णकार को हार्दिक बधाइयां एवं मंगल कामनाएं।

विपश्यना साधना
सत्य नारायण गोयन्का जी द्वारा निर्देशित

10 दिवसीय विपश्यना साधना शिविर

विपश्यना भारत की प्राचीनतम ध्यान-साधना विधि है। यह भगवान बुद्ध की शिक्षा का सार है। इसके अनुसार चित और शरीर पर घटित होने वाली परिवर्तनशील घटनाओ को साक्षीभाव से देखना होता है। इससे चित निर्मल होने लगता है। विपश्यना साधना आत्म-दर्शन की साधना है, स्वदर्शन की साधना है, सत्यदर्शन की साधना है। विपश्यना पूर्णतया वैज्ञानिक, सहज, सरल संप्रदाय-विहीन, अपनी ही अनुभूतियो से अपने दुर्गुणो को मिटाने वाली, सुखी जीवन जीने की अद्वितीय कला है।

इस विधि का किसी संप्रदाय से कुछ लेना देना नही है। इसका अभ्यास हर कोई कर सकता है, भले ही वह किसी जाति, धर्म, संप्रदाय या राष्ट्र का हो ।

आचार-व्यवहार में परिवर्तन लाने, मानसिक तनाव से मुक्ति पाने और अपने कर्तव्यो और दायित्वो का निर्वाह करते हुए करूणा, समता, सत्यनिष्ठा तथा चरित्र-निर्माण सरीखे सदगुणो को बढाने के लिए यह विधि अत्यंत कारगर पाई गई है।

10 दिवसीय शिविर अपने अंतर्मन की गहराइयो तक जाकर ग्रंथि-विमोचन की कला सीखने का एक दुर्लभ अवसर है। जहां साधको के लिय निशुल्क निवास तथा भोजनादि की स्थाई व्यवस्था रहती है। विपश्यना शिविरो का सारा खर्च कृतज्ञ साधको के ऐच्छिक दान पर निर्भर होता है।

आवेदन व जानकारी के लिए :- www.dhamma.org www.vridhamma.org

विज्ञान कविता

डॉ० विष्णु शास्त्री 'सरल'

सिद्धायन, भैरवाँ, चम्पावत

विज्ञान दोहे

दैनिक जीवन में सहज, रचा-बसा विज्ञान।
किए इसी ने व्यक्ति के, काम सभी आसान।।

होते हैं विज्ञान से, पल में सारे काम।
लेकिन हो पाता नहीं, शारीरिक व्यायाम।।

जीवन-शैली व्यक्ति की, बदल रही आयाम।
भाग-दौड़ चाहे अधिक, किन्तु नहीं विश्राम।।

मानवीय श्रम का स्वत:, होता जाता ह्रास।
आए दिन चिंतित श्रमिक, घेर रहा संत्रास।।

बना चुका विज्ञान है, अब अपनी पहचान।
तकनीकें बढ़ने लगीं , होते अनुसंधान।।

जल-थल-नभ सर्वत्र ही, विद्यमान विज्ञान।
किन्तु प्रकृति पर जा रहा, नहीं किसी का ध्यान।।

अविरल ही क्षतिग्रस्त है, नैसर्गिक सम्पत्ति।
रूप बदलकर सामने, दिखती है आपत्ति।।

दूषित है पर्यावरण, धरती पर हर ओर।
सदा सुबह से शाम तक, वाहन करते शोर।।

वृक्ष कटे, पर्वत पटे, नहीं कहीं सुख-छाँव।
कंकरीट के बन गए, नगर और सब गाँव।।

नहीं तनिक भी रह गई, हवा कहीं पर शुद्ध।
आँख मूँदकर चल रहे, हर पल लोग प्रबुद्ध।।

पीने योग्य न जल कहीं, नदियाँ हैं बीमार।
अत: धरा पर मिल रहा, रोगों को आधार।।

धरती ऊसर हो गई, हुआ उदास किसान।
बढ़ा रहा निश्चिन्त ही, कदम ज्ञान-विज्ञान।।

दशा-दिशा ओजोन की, सता रही अविराम।
सोच-सोचकर और भी, आगे का परिणाम।।

मौसम भी लगता नहीं, अब ऋतु के अनुसार।
समाधान मिलता नहीं, कितना करें विचार।।

कृत्रिमता में वृद्धि है, प्राकृतिक सब लुप्त।
क्यों मानव की चेतना, होती जाती सुप्त।।

यद्यपि जीवन-पथ सुगम, बना रहा विज्ञान।
किन्तु प्रकृति को भी मिले, स्नेह, मान-सम्मान।।

प्रकृति-प्रगति का रह सके, सदा उचित अनुपात।
बिगड़ न पाए संतुलन, यत्न करें दिन-रात।।

पीछे रह पाए नहीं, प्रगति करे विज्ञान।
लेकिन अपने मूल से, नहीं हट सके ध्यान।।

पग-पग पर विज्ञान का, योगदान भरपूर।
निश्चित है अब तो कठिन, उससे जाना दूर।।

जनसंख्या की देश में, दशा बहुत विकराल।
पता नहीं कितनी कहाँ, बढ़ती है हर साल।।

फैलाता है स्वार्थ ही, सकल धरा पर जाल।
शिथिल पड़े संबंध हैं, बदतर लगता हाल।।

एक ओर तो बन रहा, सारा जग परिवार।
और दूसरी ओर क्या, निज घर से ही हार।।

आगे खड़ी चुनौतियाँ, खोजें हल हर हाल।
घबराना होगा नहीं, देख समय की चाल।।

अजित जैन जलज

न्यू सिविल लाईन, टीकमगढ़, म.प्र.

अपनी कहानी

पृथ्वी का जब जन्म हुआ, तो वह बिल्कुल सुनसान थी,
जीव जाति का नाम नहीं था, जिससे वह हैरान थी।
आया समय एक दिन ऐसा, जीवन के कुछ अणु बन गये।
'वायरस' जैसे जीव बने, 'जीवाणु' जी भी आ गये।।

बिना प्राणवायु के देखो, जीवन ये आरंभ हुआ,
धीरे धीरे जीवाणु ने, भोजन का निर्माण किया।
कुछ जीवाणु ऐसे आये थे, प्रकाश अपनाने को,
सी-ओ-टू प्रकाश से मिलकर, ऑक्सीजन उपजाने को।।

हुई क्रांति ऑक्सीजन की, फिर सब कुछ देखो बदल गया,
प्राण वायु जब हुई धरा पर, जीव जगत तब सचल हुआ।
एक ओर तो 'घास पात', 'पेड़ों' का आविर्भाव हुआ,
अदृश्य 'अमीबा' से हम तक का जीवन पथ तैयार हुआ।।

अंग बने फिर तंत्र बने, फिर 'बिना रीढ का जंतु' बना,

विकसित होते होते तो 'रीढदार इक जंतु' जना।
सभी जंतु पानी में ही थे, उनमें से पनपी 'मछली',
मत्स्य वर्ग से बनी उभयचर जाति जो धरती पर उछली।।

धरती पर जो रेंगा करते, ऐसे 'रेप्टाइल' आये,
रेंग रेंग कर उड़ना सीखा, 'पक्षी' उड़ उड़ कर गाये।
पक्षी वर्ग को फिर विकास ने ला जमीन पर खड़ा किया,
'चौपाये' फिर बने बना 'स्तनधारी' का रुप नया।।

चिंपांजी गौरिल्ला बंदर स्तनधारी, जंतु अनेक,
हुआ विकास 'बंदरों' से बना 'आदिमानव' था नेक।
अरबों वर्षों के विकास का था सुन्दर परिणाम मनुष्य,
खुशहाल धरा का मालिक, बना बुद्धि वाला ये मनुष्य।।

हम लोगों ने राज्य प्राप्त कर, धरती को बर्बाद किया
मिट्टी पानी हवा वनस्पति सब का सत्यानाश किया।
संभल जाय हम जरा आज भी पृथ्वी के उत्थान में,
वरना लौटेगी पृथ्वी तो फिर अपने सुनसान में।

डॉ. मीरा सिंह 'मीरा'

राजगढ़ डुमराँव, बक्सर, बिहार

वृक्ष लगाओ

वृक्ष काटकर मानव खुद ही लाया है बर्बादी।
सूखे ताल-तलैया सारे, सूखी नदियाँ सारी।।

वृक्ष-विहीन धरा पर बोलो, बादल कैसे छाएँ?
चुराकर जल बूँदे अनमोल कैसे पानी लाएँ?।

बूँद-बूँद को तरस रही है प्यासी धरती माता।
चिड़ियाँ और परिंदों की भी कौन प्यास बुझाता?

धरती मात हमारी है, माँ को नहीं सताओ।
करो श्रृंगार धरती-माँ की, आओ वृक्ष लगाओ।।

आओ बादल

सुन ओ गोरे काले बादल छिपे कहाँ मतवाले बादल।
आकुल दुनिया ढूँढ रही है, अब तो उड़ते आओ बादल।।

सूरज बाबा ताप बढ़ाए, गर्मी रानी हमें सताती।
बिजली की आदत न पूछो पल भर कहीं नहीं टिक पाती।।
छिपे कहाँ कुछ तो बतलाओ छतरी तुम बन जाओ बादल

कब तक बैठे घर में छिपकर, गरम-गरम है घर का बिस्तर।
इस गर्मी में जीना मुश्किल, सूखे ताल तलैया पोखर।

कुछ बूँदें झटपट बरसाओ रहता कुछ दिलवाओ बादल

दूर धरा से क्यों हो बादल, बोलो कुछ तो बोलो बादल।
आओ खूब झमाझम बरसो बंद तिजोरी खोलो बादल।।
प्यासी धरती तड़प रही है, माँ की प्यास बुझाओ बादल

डॉ. रामानुज पाठक

सतना, म.प्र.

तत्व-गीत: सृष्टि के तीस प्रहरी

हाइड्रोजन से आरंभ हुई, सृष्टि की प्रथम पुकार,
ब्रह्मांड के विस्तृत आँगन में, इसका अनुपम विस्तार।
ईंधन बनकर रॉकेट उड़ाए, अमोनिया का दे उपहार,
वनस्पति तेलों के शोधन में, इसका अद्भुत व्यवहार।

हीलियम नभ में हँसता उड़ता, गुब्बारों का विश्वास,
एमआरआई की शीतलता में, इसका अमूल्य प्रकाश।
निष्क्रिय होकर वेल्डिंग साधे, विज्ञान का मित्र महान,
मौन रहकर भी करता रहता, मानवता का कल्याण।

लिथियम ऊर्जा का प्रहरी है, बैटरियों की जान,
मोबाइल, वाहन, कंप्यूटर सब, इससे पाते प्राण।
औषधि बनकर मन को सँभाले, जीवन में दे संतुलन,
काँच और सिरेमिक में भर दे, नवाचारों का स्पंदन।

बेरिलियम हल्का पर दृढ़ ऐसा, अंतरिक्ष का अभिमान,
नाभिकीय शोधों में देता, वैज्ञानिकों को सम्मान।
एक्स-रे की खिड़की बनकर, रोगों का रहस्य बताए,
ज्ञान-विज्ञान की राहों में, नवदीप सदा जलाए।

बोरॉन से पायरेक्स चमके, प्रयोगशाला मुस्काए,
डिटर्जेंट और उर्वरकों में, उपयोगी रूप दिखाए।
छोटा सा यह तत्व मगर, योगदान बड़ा महान,
मानव जीवन के हर कोने में, इसका अद्भुत स्थान।

कार्बन सृष्टि का आधार है, जीवन का प्रथम सूत्र,
कोयले, गैसों और हीरे में, इसके विविध स्वरूप।
ग्रेफाइट बनकर लिखता ज्ञान, हीरा बनकर दे सम्मान,
धरती के प्रत्येक प्राणी में, इसका बसा विधान।

नाइट्रोजन खेतों की हरियाली, अन्नदाता की शान,
यूरिया और अमोनिया बनकर, देता फसलों को मान।
खाद्य पदार्थों की रक्षा कर, ताजगी को बचाता है,
नाइट्रिक अम्ल का रूप धरकर, उद्योगों को चलाता है।

ऑक्सीजन जीवन की धड़कन, श्वासों का संगीत,
इसके बिना सूना जग सारा, नीरस हर एक प्रीत।
अस्पतालों में जीवनदाता, संकट में संजीवनी बनती,
धातुओं की कटाई-वेल्डिंग में, अग्निशक्ति भी यह देती।

फ्लोरीन दंतों की रक्षा करती, मुस्कानों में रंग भरती,
टेफ्लॉन के पात्रों में आकर, सुविधा की राह सँवरती।
शीतलक गैसों में भी इसका, उपयोग निराला होता,
विज्ञान और स्वास्थ्य जगत में, महत्व अनूठा होता।

नियॉन दीपों की भाषा बनकर, नगर-नगर मुस्काता,
विज्ञापन के रंगमंच पर, उजियारा फैलाता।
चमकते संकेतकों में इसका, रूप मनोहर दिखता,
अंधकार को दूर भगाकर, प्रकाश-पथ पर लिखता।

सोडियम भोजन का स्वाद बढ़ाए, साधे जीवन संतुलन
सड़क किनारे पीले दीपक बन, रातों को आलोकित।
मैग्नीशियम ज्वाला बन चमके, आतिशबाजी में रंगभरे
विमानों की हल्की धातु बनकर,आकाशों में पंखपसारे।

एलुमिनियम हर घर में दिखता, बर्तन, तार, विमान बने,
हल्केपन और मजबूती का, अद्भुत संदेश हमें दे।
सिलिकॉन ने डिजिटल युग का, स्वर्णिम अध्याय रचा,
चिप, कंप्यूटर, सौर पैनल में, भविष्य का द्वार रचा।

फॉस्फोरस खेतों की उर्वरता, जीवन का पोषण करता,
माचिस की छोटी तीली में भी, ऊर्जा का संचार भरता।
सल्फर औद्योगिक जगत में, सल्फ्यूरिक अम्ल बन बहता,
रबर को देता दृढ़ता, विकास का पहिया नित आगे बढ़ता।

क्लोरीन जल को शुद्ध बनाती, रोगों से रक्षा करती,
स्वच्छता और स्वास्थ्य जगत में, छाप अमिट है रखती।
आर्गन बल्बों में मुस्काता, वेल्डिंग में मौन सहायक,
निष्क्रिय होकर भी विज्ञान का, बन जाता है संरक्षक।

पोटैशियम फसलों की शक्ति, मानव शरीर का मित्र,
कैल्शियम हड्डियों की दृढ़ता, स्वास्थ्य का अनुपम चित्र।
सीमेंट और प्लास्टर में भी, निर्माणों का आधार,
इन दोनों के बिना अधूरा, जीवन का संसार।

स्कैंडियम से तीव्र प्रकाश, अंतरिक्ष पथ आलोकित हो,
टाइटेनियम की दृढ़ता से, मानव का साहस पोषित हो।
वैनेडियम इस्पात सँवारकर, शक्ति का नया मानक गढ़े,
क्रोमियम चमक और सुरक्षा दे, धातु का गौरव बढ़े।

मैंगनीज़ उद्योगों की गति है, बैटरियों की शक्ति अपार,
लौह धरा का कर्मयोगी है, सभ्यता का आधार।
कोबाल्ट ऊर्जा का रक्षक बन, बैटरियों में जान भरे,
निकेल मिश्रधातुओं में आकर, तकनीक के स्वप्न सँवारे।

ताँबा विद्युत का वाहक बन, घर-घर ऊर्जा पहुँचाता,
तारों, मोटरों और सिक्कों में, उपयोगी रूप निभाता।
जस्ता लोहे को जंग से बचाए, सुरक्षा का कवच बन जाए,
औषधियों, बैटरियों, मिश्रधातुओं में अपना महत्व दिखाए।

ये तीस तत्व केवल पदार्थ नहीं, प्रगति के सशक्त आधार।
इनसे ही विज्ञान विकसित, इनसे ही साकार विचार।
धरती, जीवन, उद्योग, ऊर्जा—सब इन पर निर्भर होते,
प्रकृति के इन मौन सिपाहियों से, मानव के स्वप्न संवरते।

तत्व-तत्व में छिपा हुआ है, सृष्टि का अद्भुत ज्ञान,
इनकी महिमा गाता रहता, विज्ञान और मानव ससम्मान।
जो इनको समझे, वह समझे, प्रकृति का गूढ़ विधान,
इन तीस प्रहरी तत्वों को, शत-शत मेरा प्रणाम।

कुसुम अग्रवाल

महावीर नगर, कांकरोली (राजसमंद)-313324

यूरेका! फिर वो चिल्लाया

ग्रीस देश की बात बताऊँ, ज्ञान जहाँ बहता था गाऊँ।
ज्ञानी था इक नाम निराला, आर्किमिडीज़ था वो मतवाला।
राजा ने इक दिन बुलवाया मुकुट उसे था एक दिखाया।
बोले- कैसे यह पता करोगे? शुद्ध स्वर्ण या नहीं कहोगे?
स्वर्णकार ने खोट मिलाया? तोल भी नहीं ठीक बताया।
सोच-सोचकर हारा ज्ञानी हुई अजब उसको हैरानी।
जो ना सुलझे गूढ़ पहेली कहलाऊँगा गंगू तेली।
जब नहाने टब में बैठा पूरा भरा देखकर ऐंठा।
पानी जब बाहर को छलका, नियम एक था उसमें झलका।
जितना जल तन बाहर लाए, उतना उसका भार बताए!"
"यूरेका" फिर वो चिल्लाया बिना वस्त्र ही बाहर आया।
पूरी नगरी शोर मचाया जान गया मैं यह समझाया।
एक नया सिद्धांत बना जब आर्किमिडिज़ नाम पड़ा तब।

अक्षर बोले ता ता ता

पहले पुस्तक हाथ से बनती, लिखने में ही उम्र निकलती।
वर्ष एक में एक बनाते, निर्धन तो पढ़ भी ना पाते।
सुनना ही था एक सहारा, जैसा जिसने सोच विचारा।
ज्ञान लिखा था दीवारों में, किले-कंदरा मीनारों में।
गुटेनबर्ग जर्मन का वासी चंचल मन पर था अभिलाषी।
मुहरें देखीं लकड़ी वाली, अक्षर छापे स्याही काली।
देख समझ इक यंत्र बनाया, वाइन प्रेस से रूप सजाया।
लोहे के अक्षर भी ढाले, उन्हें जोड़ पंक्ति में डाले।
स्याही में उन्हें डुबाकर, काग़ज़ पर रख दिया दबाकर।
दबने पर छप गये अक्षर, लगता कोई गया है लिखकर।
धीरे-धीरे पुस्तक छापी बनीं किताबें, उनकी कॉपी।
लोगों तक पहुँचा हर मंथन घर-घर में अब होता चिंतन।
जब टीचर जी हमें पढ़ाते, पुस्तक से ही ज्ञान सिखाते।
'कुसुम' कहे ये खोज है न्यारी, गुटेनबर्ग ने बात संवारी।

आकाश को देखा पास से

नीदरलैंड के चश्मा घर का हांस लिपर्से चालक।
छेड़ रहा था सभी वस्तुएँ उसका नटखट बालक।
कभी काँच को हाथ लगाता कभी फ्रेम को मोड़े।
दो हाथों में कांच उठाए इधर-उधर वो दौड़े।
खेल-खेल में दो लेंसों को जोड़ा, आँख लगाया।
हुआ अचम्भित, जब गिरजाघर निकट बहुत ही आया।
"ओ पापा! ये कैसा जादू? मुझ को डर है लगता।
बहुत दूर है गिरजाघर पर पास मुझे है लगता।
हांस ने जब लैंसों को देखा, ख़ास बहुत ही पाया।
लेंस कोण, झुकाव को मापा अद्भुत यंत्र बनाया।
बन गई फिर दूरबीन निराली, खोज हुई थी भारी।
राजा, नाविक, सब ने माँगी, ख़ुश थी दुनिया सारी।
गैलीलियो ने सँवारा, लेंस लंबाई बदल, नभ खूब निहारा।
तारे, चाँद, ग्रहों के बारे सबको को खूब बताया।
एक नटखट बालक के कारण संभव ये हो पाया।

डॉ. प्रदीप कुमार मुख़र्जी

देशबंधु सोसाइटी, पटपड़गंज दिल्ली

करें कुछ ऐसा हम

धरती की कड़ाही में मार रहा है उबाल
जलवायु परिवर्तन नाम का शोरवा
ऊपर से सितम यह कि कई सालों में
एक बार आने वाले अल नीनो का भी
लग गया है अब तड़का इस शोरवे में
है इस बार का अल नीनो कुछ खास
दिया जा रहा है जिसे नाम सुपर अल नीनो का
इससे होगी बारिश कम खेतों में उपज भी होगी कम
मुख्य रूप से मानव कारगुज़ारियों के चलते हुआ यह सब
इसलिए ऐसी करतूतों से आना चाहिए अब हमें बाज़
करना कुछ चाहिए ऐसा, पहना सकें हम प्रकृति को ताज।

इको व्यग्रता

जलवायु परावर्तन के कारण जहां बढ़ रही हैं
वैश्विक रूप से नाना प्रकार की समस्याएं
वहीं देखने को मिल रही कुछ मनोवैज्ञानिक समस्याएं भी
युवा पीढ़ी के आई है सामने नई चुनौती स्वास्थ्य की
दिया जा रहा है जिसे नाम 'इको व्यग्रता'
यानी इको एंग्जायटी का अपने भविष्य को लेकर
सता रही है चिंता युवा पीढ़ी को कि रहने लायक
रहेगी भी या नहीं यह पृथ्वी उनके जीवन-काल में
जी रही है युवा पीढ़ी अपनी इसी घबराहट में
है एक और पहलू यह जलवायु परिवर्तन का
बन रहा है जो दुश्मन युवा तन-मन का।

कोई ठोस कदम उठाना पड़ेगा हमें

कहिए इसे जलवायु परिवर्तन का कहर या असर उसका
कि पिछले कुछ वर्षों से ही देखने को मिल रहा हमें
कि शरद और ग्रीष्म ऋतू के बीच की मनोहारी वसंत ऋतू
हो गई है अब लगभग समाप्त-सी
नतीजतन खिल रहे हैं अब पहले की तुलना में
कम तादाद में फूल जिससे न मिल पाने के कारण पराग
हो रहा है पैदा घोर संकट मधुमक्खियों के अस्तित्व पर
होकर रुष्ट मधुमक्खियां बन रही हैं अत्यंत आक्रामक भी
स्थिति नहीं है पक्ष में हमारे इस पर गहन सोच-विचार कर
कोई ठोस कदम उठाना पड़ेगा हमें।

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद
संस्थापित-1968

मनोगत

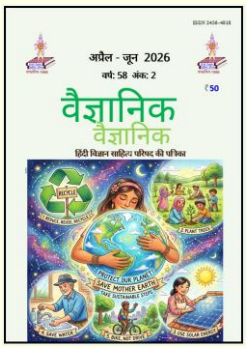

आदरणीय सुंदर अंक के लिए हार्दिक बधाई देता हूं आप बहुत अच्छा काम कर रहे हैं
डॉ. राकेश 'चक्र',
शिवपुरी, मुरादाबाद

आदरणीय महोदय,
वैज्ञानिक पत्रिका का अप्रैल–जून 2026 अंक प्राप्त हुआ। पत्रिका के प्रकाशन हेतु आप एवं सम्पादकीय मंडल बधाई के पात्र हैं। अंक अत्यंत उपयोगी, ज्ञानवर्धक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करने वाला है। पत्रिका को संबंधित अध्यापकों, विद्यार्थियों एवं अन्य इच्छुक पाठकों के साथ साझा किया जाएगा। विज्ञान के प्रचार-प्रसार हेतु आपके निरंतर प्रयास सराहनीय हैं। उज्ज्वल भविष्य के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ। सादर।
डॉ. अतुल कुमार अग्रवाल

'वैज्ञानिक' पत्रिका का अंक देख-पढ़कर सुखद अनुभूति हुई। ज्ञानवर्धक, रोचक, पुनः-पुन: पठनीय तथा विशेष रूप से संग्रहणीय, सर्वोपयोगी बेहतरीन सामग्री से युक्त इस अति विशिष्ट पत्रिका की हर बार प्रतीक्षा रहती है। पत्रिका की जितनी भी सराहना की जाए, कम ही होगी। पत्रिका की अंतर्वस्तु के शब्द-शब्द में सम्पादकीय कौशल परिलक्षित होता है।
प्रस्तुत अंक में समाविष्ट समस्त आलेख मनोरंजक व जानकारीपूर्ण हैं। काव्यपक्ष भी अच्छा है। पत्रिका से जुड़े आप सभी सुयोग्य लोगों का श्रम, समर्पण और निष्ठा प्रभावी तथा अनुकरणीय है। सम्पादक मंडल को बहुत-बहुत बधाई।
स्नेह-भाव बना रहेगा इसी आशा और विश्वास के साथ पत्रिका के प्रोज्ज्वल भविष्य संबंधी सुमंगल कामनाएँ। सादर
डॉ० विष्णु शास्त्री 'सरल'
सिद्धायन, भैरवाँ, चम्पावत

उत्कृष्ट अंक के लिए हार्दिक बधाई।
डॉ. दीपक कोहली

आदरणीय डॉ. कुलवंत सिंह, मुख्य संपादक,
'वैज्ञानिक' पत्रिका का अप्रैल–जून 2026 अंक प्राप्त हुआ। हिंदी में विज्ञान संचार और वैज्ञानिक चेतना के प्रसार हेतु आपके नेतृत्व में 'वैज्ञानिक' पत्रिका जो महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है, वह अत्यंत सराहनीय एवं प्रेरणादायी है। विज्ञान विषयक गंभीर और उपयोगी सामग्री को सरल, प्रामाणिक तथा जनसुलभ रूप में प्रस्तुत करने का आपका सतत प्रयास हिंदी विज्ञान साहित्य की अमूल्य सेवा है। पत्रिका को अपने सहयोगियों, शिक्षकों, विद्यार्थियों तथा मित्रों के बीच साझा करने का प्रयास अवश्य करूँगा।
हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद तथा 'वैज्ञानिक' पत्रिका की निरंतर उन्नति एवं व्यापक प्रसार के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ। सादर,
डॉ. शैलेश शुक्ला, वैश्विक समूह संपादक

बहुत जानकारीपूर्ण पत्रिका। धन्यवाद। सादर
पी.के. कौशिक
साइंटिस्ट-F, DRDO-आगरा

डॉ. कुलवंत सिंह जी बहुत सुंदर अंक।
पूरी टीम और नए लेखकों को बधाई।
रमेश रस्तोगी

वैज्ञानिक पत्रिका के अनवरत और समय पर प्रकाशन करने के लिए हार्दिक अभिनन्दन।
जगदीश चंद्र व्यास
केंद्रीय विहार, सेक्टर 11, खारघर, नवी मुंबई

आदरणीय कुलवंत जी
अंक देखा, पठनीय सामग्री से भरपूर। आगे भी इसी तरह की स्तरीय पत्रिका निकलती रहें। मेरी शुभकामनाएँ। सादर
कविता विकास

पठनीय सामग्री से भरपूर। मेरी शुभकामनाएँ।
जीतसिंह चौहान

प्रिय कुलवंत जी,
आपका ईमेल और 'वैज्ञानिक पत्रिका' का अप्रैल-जून 2026 का अंक पाकर खुशी हुई। मैं 1980 से, यानी पिछले 45 सालों से इस पत्रिका का पाठक रहा हूँ। मैंने इसकी सकारात्मक प्रगति और गुणवत्ता में सुधार को देखा है।
विश्व पर्यावरण दिवस पर इसका कवर पेज देखकर मुझे बहुत खुशी हुई। हर तस्वीर हमें एक सीख देती है और धरती माता को बचाने के लिए प्रेरित करती है। पर्यावरण समझौतों पर लेख पढ़कर भी अच्छा लगा। चीनी (Sugar) पर लिखे लेख सहित कई अन्य लेख भी मेरे लिए दिलचस्प थे। आपकी टीम और सभी योगदानकर्ताओं को बधाई। मुझे गर्व है कि सारी जानकारी हमारी राजभाषा हिंदी में उपलब्ध है। शुभकामनाएं।
प्रो. आर. सोमवंशी, वेटरनरी पैथोलॉजिस्ट,
मानद सचिव, डॉ. सी.एम. सिंह एंडोमेंट ट्रस्ट,
पूर्व ICAR-एमेरिटस वैज्ञानिक

महोदय,
मैंने आज नए सिरे से कामिल बुल्के को देखा तो पाया कि उसमें भी मेटाबॉलिज्म के लिए उपापचय ही लिखा है। शब्दावली आयोग के शब्द संग्रह में तो मेटाबॉलिज्म के लिए उपापचय है ही। लेकिन एआई ने मेटाबॉलिज्म के लिए चयापचय का गलत प्रयोग किया है और विज्ञान लेखक हैं कि इसी का अंधाधुंध पालन कर रहे हैं। इसी प्रकार इकोलॉजिकल सिस्टम के लिए मानक और सही शब्दावली पारिस्थितिक तंत्र है, न कि पारिस्थितिकी तंत्र। पारिस्थितिक इकोलॉजिकल के लिए आता है जबकि पारिस्थितिकी इकोलॉजी के लिए।
आपसे अनुरोध है कि "वैज्ञानिक" पत्रिका को हर दृष्टि से एक मानक और उत्कृष्ट पत्रिका बनाने के लिए और चीजों के साथ-साथ मानक और सटीक शब्दावली पर पूरा-पूरा ध्यान दें। आप "आविष्कार" पत्रिका के पुराने अंक देखिए। उनमें मानक और सही शब्दावली का प्रयोग हुआ है। बताने में कोई हर्ज नहीं हे कि "आविष्कार" के तत्कालीन संपादक श्री आर.के. अन्थवाल मानक और सटीक शब्दावली के लिए मेरे साथ बहुत सार्थक विमर्श किया करते थे। मुले जी की भी एक सबसे बड़ी खूबी यह थी कि वह हमेशा मानक और सही शब्दावली का ही प्रयोग करते थे। मैंने उनके लेखन से बहुत कुछ सीखा है। सादर,
डॉ. प्रदीप कुमार मुखर्जी

माननीय कुलवंत जी,
वैज्ञानिक का नवीन अंक अप्रैल- जून 2026 प्राप्त हुआ। हमेशा की तरह इस अंक का कलेवर अच्छा और आलेख विचारोत्तेजक हैं। साधुवाद।
कृपया दिनांक 16.5.26 को आपको भेजे गए मेरे लेख *जीवन के उद्देश्य का वैज्ञानिक विश्लेषण* पर आपकी प्रतिक्रिया नए विषय के लेखन में प्रखरता प्रदान करेगी। प्रतीक्षा में। सादर।
डॉ. अतुल गर्ग

आदरणीय डॉ. कुलवंत सिंह जी, सादर नमस्कार।

भारत के अनेक वैज्ञानिकों, विज्ञान-जिज्ञासुओं, शोधार्थियों तथा विज्ञान-पाठकों के व्यापक समुदाय को नए-नए वैज्ञानिक विषयों और समसामयिक मुद्दों पर चिंतन, अनुसंधान और ज्ञान-विस्तार के लिए प्रेरित करने में आपकी भूमिका अत्यंत सराहनीय है। विशेष रूप से हमारे 130 सदस्यीय विशिष्ट वैज्ञानिक समूह, 500 से अधिक युवा शोधार्थियों, नवाचारकर्ताओं एवं विज्ञान-प्रेमियों को "वैज्ञानिक" पत्रिका के माध्यम से निरंतर मार्गदर्शन और प्रेरणा प्रदान करने हेतु आपका हार्दिक आभार।

राष्ट्रीय स्तर की "वैज्ञानिक" पत्रिका का उच्च गुणवत्ता के साथ नियमित, समयबद्ध प्रकाशन एवं वितरण वास्तव में प्रशंसनीय है। इसके लिए आप तथा सम्पूर्ण संपादक एवं प्रकाशक मंडल बधाई के पात्र हैं। हम आपके उत्तम स्वास्थ्य, दीर्घायु और सतत सक्रियता की प्रार्थना करते हैं, ताकि विज्ञान के प्रसार का यह महत्वपूर्ण अभियान निरंतर आगे बढ़ता रहे।

राष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रिय "वैज्ञानिक" पत्रिका के वर्तमान अंक का आवरण-पृष्ठ अत्यंत आकर्षक एवं प्रभावशाली है। वस्तुतः पत्रिका के प्रत्येक अंक की प्रस्तुतियाँ नवीन चिंतन, गहन विश्लेषण और उत्कृष्ट लेखन के लिए प्रेरित करती हैं। यह पत्रिका विज्ञान संचार और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है।

आप तथा सम्पूर्ण संपादक एवं प्रकाशक मंडल को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ। सादर,
एस. एम. प्रसाद
पूर्व संयुक्त निदेशक, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, उ.प्र.

धन्यवाद आदरणीय डॉ. साहब।
एक और उत्कृष्ट अंक, हार्दिक बधाई।
सादर। आपका शुभेच्छु,
डॉ. कृष्णा नन्द पाण्डेय

सेवा में, संपादक महोदय पत्रिका – सादर नमस्कार।

"वैज्ञानिक" पत्रिका के अप्रैल–जून 2026 अंक का अध्ययन करके मुझे अत्यंत प्रसन्नता एवं संतोष की अनुभूति हुई। यह अंक विज्ञान के विविध आयामों को सरल, रोचक, तथ्यपरक एवं जन-सुलभ भाषा में प्रस्तुत करने का उत्कृष्ट प्रयास है। प्रत्येक लेख न केवल ज्ञानवर्धक है, बल्कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने की प्रेरणा भी देता है। संपादकीय में पर्यावरण संरक्षण से संबंधित अंतरराष्ट्रीय समझौतों का अत्यंत संतुलित एवं सारगर्भित विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। रियो सम्मेलन, क्योटो प्रोटोकॉल, मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल, पेरिस समझौता तथा जैव विविधता संरक्षण जैसे महत्वपूर्ण विषयों को सहज भाषा में समझाकर पाठकों में वैश्विक पर्यावरणीय उत्तरदायित्व की भावना जागृत करने का सफल प्रयास किया गया है।

"डार्क मैटर नहीं रहा अब पहले जितना रहस्यमय" लेख ने ब्रह्मांड विज्ञान की जटिल अवधारणा को अत्यंत रोचक शैली में प्रस्तुत किया। नवीन वैज्ञानिक खोजों को सामान्य पाठकों तक पहुँचाने का यह उत्कृष्ट उदाहरण है। "आत्मनिर्भरता से वैश्विक वर्चस्व तक: 2047 का भारत" लेख भारत के भविष्य, नवाचार, कौशल विकास, आत्मनिर्भरता, स्वास्थ्य, पर्यावरण संरक्षण तथा वैश्विक नेतृत्व की संभावनाओं पर प्रेरणादायक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। यह लेख युवाओं में राष्ट्र निर्माण की सकारात्मक भावना विकसित करने वाला है। "भूकंप और पुल : सुरक्षा की नई परिभाषा" लेख आधुनिक इंजीनियरिंग, आपदा प्रबंधन तथा वैज्ञानिक अनुसंधान के महत्व को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार "चीनी: चिंता...", "पेड़ों की छाल में छिपा...", "हाथियों की विरासत", "किशोर मन पर..." तथा "एआई: ज्ञान अब..." जैसे लेख अपने-अपने विषयों पर वैज्ञानिक तथ्यों, सामाजिक सरोकारों और नवीन शोधों का सुंदर समन्वय प्रस्तुत करते हैं।

चार विज्ञान लघुकथाएँ विज्ञान को साहित्य के माध्यम से जनसामान्य तक पहुँचाने का सराहनीय प्रयास हैं। "भारत वसुधैव कुटुम्बकम", "वर्मीफिल्ट्रेशन", "अरावली की जैवविविधता", "दैनिक जीवन में विज्ञान", "पेड़ से सीखिए", "मधुर संगीत का विज्ञान", "चिप्स निर्माण में भारत", "समुद्र की गहराइयों में..." तथा "प्रदूषण के प्रकार" जैसे लेख विज्ञान के विविध पक्षों को अत्यंत सरल एवं रोचक शैली में प्रस्तुत करते हैं।

पत्रिका के नियमित स्तंभ—विज्ञान समाचार, विज्ञान पुस्तकें एवं विज्ञान सम्मान, विज्ञान कविताएँ तथा मनोगत—इस अंक को और अधिक समृद्ध एवं संतुलित बनाते हैं। विज्ञान समाचारों से नवीन वैज्ञानिक उपलब्धियों की जानकारी मिलती है, विज्ञान कविताएँ विज्ञान और साहित्य का सुंदर संगम प्रस्तुत करती हैं तथा मनोगत स्तंभ पाठकों और पत्रिका के मध्य आत्मीय संवाद स्थापित करता है।

मैं विशेष रूप से यह उल्लेख करना चाहता हूँ कि दृष्टिबाधित होने के बावजूद मैं इस पत्रिका का अध्ययन कर पा रहा हूँ। यह भी विज्ञान और आधुनिक तकनीक का एक अद्भुत चमत्कार है, जिसने ज्ञान प्राप्ति की सीमाओं को समाप्त कर दिया है। इसके लिए मैं विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में कार्यरत सभी वैज्ञानिकों, तकनीकी विशेषज्ञों तथा आपकी संपादकीय टीम को हृदय से साधुवाद देता हूँ।

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र तथा हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद द्वारा वैज्ञानिक विषयों के जन-जागरण, वैज्ञानिक चेतना के प्रसार तथा हिंदी में उच्चस्तरीय विज्ञान साहित्य उपलब्ध कराने का यह सतत प्रयास वास्तव में अत्यंत प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है। ऐसी पत्रिका समाज में वैज्ञानिक सोच विकसित करने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

इस संदर्भ में मेरे कुछ विनम्र सुझाव हैं— 1. पत्रिका को जन-जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से इसकी मुद्रित (हार्ड कॉपी) प्रतियाँ देश के सभी सार्वजनिक पुस्तकालयों में निःशुल्क उपलब्ध कराई जाएँ। 2. सभी विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं शैक्षणिक संस्थानों में भी इसका निःशुल्क वितरण किया जाए, जिससे विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हो सके। 3. पत्रिका का यूनिकोड ई-टेक्स्ट सभी ब्रेल प्रेसों को निःशुल्क उपलब्ध कराया जाए ताकि वे इसे सहजता से ब्रेल लिपि में प्रकाशित कर दृष्टिबाधित पाठकों तक पहुँचा सकें। इसके लिए केवल ई-टेक्स्ट उपलब्ध कराना ही पर्याप्त होगा। 4. यदि प्रत्येक अंक का सुलभ (Accessible) डिजिटल संस्करण तथा ऑडियो संस्करण भी उपलब्ध कराया जाए, तो दृष्टिबाधित एवं अन्य दिव्यांग पाठकों के लिए यह अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगा।

अंत में, इस उत्कृष्ट एवं ज्ञानवर्धक अंक के लिए संपूर्ण संपादकीय मंडल, सभी लेखकों तथा प्रकाशन से जुड़े प्रत्येक सदस्य को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ। पत्रिका के आगामी अंक की मैं उत्कंठा पूर्वक प्रतीक्षा करूँगा।

भवदीय, **अर्पित जैन**

वरिष्ठ प्रबंधक (राजभाषा), यूनियन बैंक ऑफ इंडिया

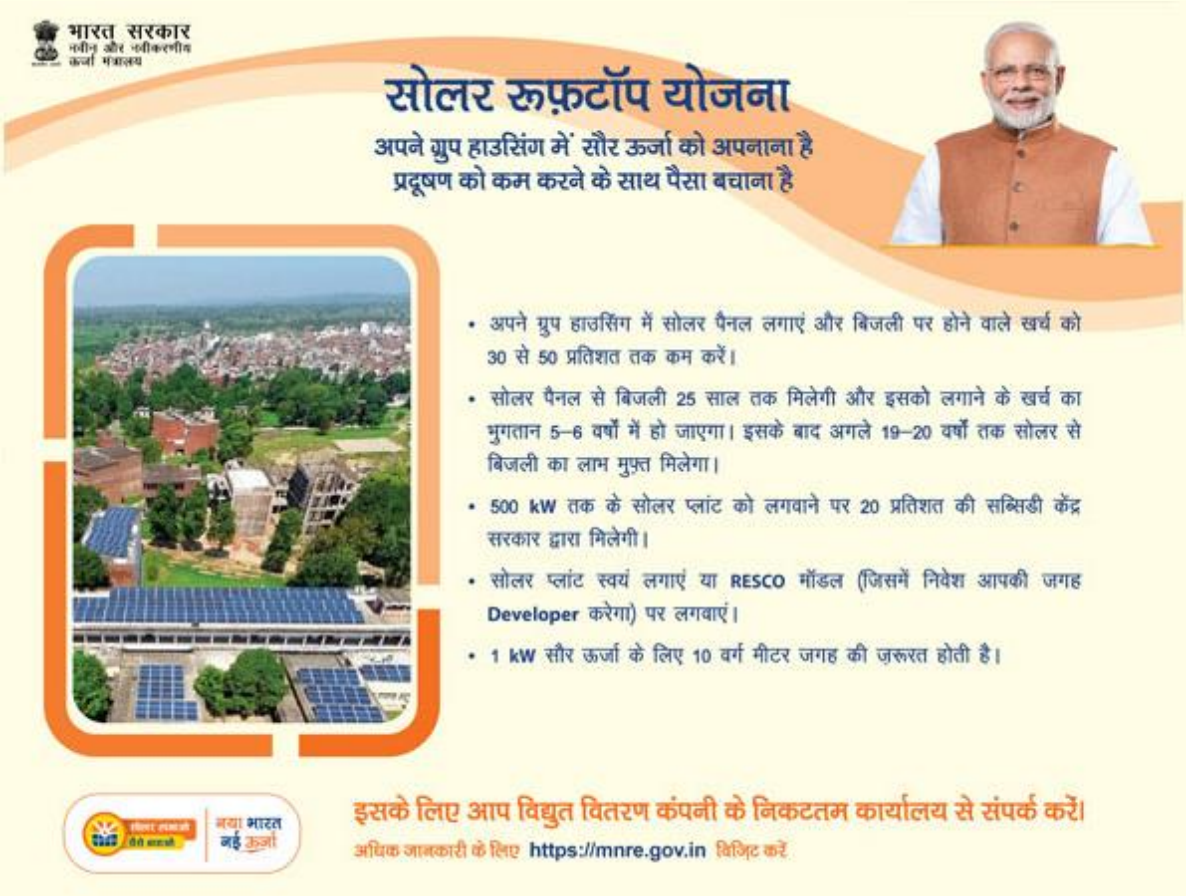
भारत सरकार
नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय
सोलर रूफ़टॉप योजना
अपने ग्रुप हाउसिंग में सौर ऊर्जा को अपनाना है
प्रदूषण को कम करने के साथ पैसा बचाना है
• अपने ग्रुप हाउसिंग में सोलर पैनल लगाएं और बिजली पर होने वाले खर्च को 30 से 50 प्रतिशत तक कम करें।
• सोलर पैनल से बिजली 25 साल तक मिलेगी और इसको लगाने के खर्च का भुगतान 5–6 वर्षों में हो जाएगा। इसके बाद अगले 19–20 वर्षों तक सोलर से बिजली का लाभ मुफ़्त मिलेगा।
• 500 kW तक के सोलर प्लांट को लगवाने पर 20 प्रतिशत की सब्सिडी केंद्र सरकार द्वारा मिलेगी।
• सोलर प्लांट स्वयं लगाएं या RESCO मॉडल (जिसमें निवेश आपकी जगह Developer करेगा) पर लगवाएं।
• 1 kW सौर ऊर्जा के लिए 10 वर्ग मीटर जगह की ज़रूरत होती है।
नया भारत नई ऊर्जा
इसके लिए आप विद्युत वितरण कंपनी के निकटतम कार्यालय से संपर्क करें।
अधिक जानकारी के लिए https://mnre.gov.in विज़िट करें

H2 राष्ट्रीय ग्रीन हाइड्रोजन मिशन
HYDROGEN H2

वैज्ञानिक (त्रैमासिक) RNI No. 18862/70

दिल्ली, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश
शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों व कॉलेजों के लिए स्वीकृत

*'वैज्ञानिक' में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है. *वैज्ञानिक में प्रकाशित सामग्री के सर्वाधिकार हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के पास सुरक्षित हैं. *'वैज्ञानिक' एवं 'हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद' से संबंधित सभी विवादों का निर्णय मुंबई न्यायालय में ही होगा. *'वैज्ञानिक' में प्रकाशित सामग्री का आप बिना अनुमति उपयोग कर सकते हैं, परन्तु इस बात का उल्लेख करें कि अमुक सामग्री वैज्ञानिक से साभार ली गई है. (चित्र विकिमीडिया से साभार.)

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, 2601, विंग-3, लोढ़ा अमारा, कोलशेट रोड, ठाणे-400607 के लिए डॉ. कुलवंत सिंह द्वारा संपादित एवं प्रकाशित. मुख्य व्यवस्थापक: श्री संजय कुमार जैन. मुद्रण: ऑनलाइन.